ऐतिहासिक उपन्यास
और
ऐतिहासिक रोमांस

[प्रेमचंद पूर्व]

ऐतिहासिक उपन्यास
और
ऐतिहासिक रोमांस

[प्रेमचन्द पूर्व]

[पंजाब यूनिवर्सिटी की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० गुरदीपसिंह खुल्लर

रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज

ATIHASIK UPNYAS AUR ATIHASIK ROMANCE

PRINTED IN INDIA

Published by P. Jain for Research Publications in Social Sciences, Daryaganj, Delhi—6.
Printed at Hema Printers, Jaipur.

स्वर्गीय श्री कुन्दनलाल जी खुल्लर

को

श्रद्धा सहित समर्पित

अनुक्रमणिका

भूमिका

आधुनिक युग में 'इतिहास' केवल तथ्य संकलन का अनुक्रमांकित विवरण नहीं है। वह इतिहास का दर्शन भी है। इसी तरह इतिहास लेखन केवल निजी शैली नहीं है बल्कि कलारूप एवं तथ्यरूप में ढल कर इतिहासकारों तथा कलाकारों का भी प्रतिपाद्य हुआ है।

इतिहास के कलारूप प्रतिपादन में कलाकार (विशेषतः उपन्यासकार) के युग, उसके जीवन दर्शन और उसकी जीवन दृष्टि के संयोग से जो ऐतिहासिक कला कृति प्रणीत होती है वह समग्र रूप से अप्रामाणिक होकर भी एक महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय साँस्कृतिक दस्तावेज़ हो जाती है। विभिन्न पद्धतियों के आधार पर इतिहास केंद्रित उपन्यास भी प्रायः ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस में बँट जाता है, यद्यपि इन दो रूपों के बीच एक कठोर रेखा खींचना असंगत है।

इस शोध-विषय को चुनते समय हमारे सम्मुख एक तो ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस के आरंभिक स्वरूपों तथा स्थितियों के अनुशीलन की चुनौती प्रस्तुत हुई, दूसरे उन स्वरूपों को आधुनिक इतिहास-दर्शनों (Philosophies of History) तथा इतिहास लेखन प्रकारों (Historiographies) के संदर्भ में पुनर्मूल्यांकित करने का न्यौता भी मिला। इन दोनों के लिए प्रेमचन्द पूर्व युग की ऐतिहासिक संरचना ही एक समृद्ध रचना-संसार प्रस्तुत कर सकती है। अतएव हमने प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों और ऐतिहासिक रोमांसों में इतिहास दर्शन तथा इतिहास लेखन के सदर्भों को प्रस्तुत करना ही अपना ध्येय बनाया। फलस्वरूप यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ।

प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थों की उपलब्धियाँ—किन्तु प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास एव ऐतिहासिक रोमांसों पर कुछ प्रकाशित एवं अप्रकाशित समीक्षात्मक पुस्तकें भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें इस विषय का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सका है क्योंकि लेखकों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह नहीं रहा। उदाहरणतः डॉ० गोपालराय के शोध-प्रबन्ध में विवेच्य इतिहास कथा पुस्तकों की रचना प्रक्रिया पर केवल पाठकों की रुचि के प्रभाव को ही मुख्य स्थान दिया गया है। इसी प्रकार डॉ० गोविन्द जी ने अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध **'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग'** में केवल ऐतिहासिक दृष्टि तथा उपन्यासों में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को ही सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है।

डॉ० कैलाश प्रकाश का शोध प्रबन्ध **'प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी-उपन्यास'** इस विषय से सम्बन्धित प्रथम कृति है। डॉ० कैलाश प्रकाश ने अपने शोध प्रबन्ध में विवेच्य कृतियों का अध्ययन 'ऐतिहासिक उपन्यास' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। किशोरीलाल गोस्वामी की कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने विवेच्य कालखण्ड के मथुराप्रसाद शर्मा के 'नूरजहाँ बेगम', जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान', ब्रजनन्दन सहाय के 'लालचीन' तथा मिश्र बन्धुओं के 'वीरमणि' उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे केवल तेरह उपन्यासों को ही चुनती है, जबकि इस कालखण्ड में लगभग पाँच दर्जन ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की रचना की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० कैलाश प्रकाश विषय का अध्ययन केवल उदाहरण के रूप में ही कर पाई है। यद्यपि उन्होंने विषय का अध्ययन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं आलोचनात्मक पद्धति से किया है, परन्तु वे इस कालखण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की समग्र इतिहास-चेतना को नहीं पकड़ पाई है। इसके साथ ही वे पण्डित बलदेव प्रसाद मिश्र के 'पानीपत', जयन्ती प्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान' तथा गंगाप्रसाद गुप्त, बाबू लालजीसिंह, युगलकिशोर नारायण सिंह, अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह आदि की महत्त्वपूर्ण कृतियों को नही ले पाई है। इस प्रकार उनके अध्ययन का क्षेत्र पर्याप्त सीमा तक सीमित रहा है।

डॉ० कृष्णानाग ने **'किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन'** नामक अपने शोध-प्रबन्ध में गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों का "गोस्वामी जी के उपन्यासों का कथावस्तु की दृष्टि से शास्त्रीय अध्ययन" शीर्षक के अन्तर्गत किया है। उन्होंने गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों का अध्ययन वस्तुगत एवं रूपगत विवेचन के आधार पर किया है। गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों के कथानकों का अध्ययन करते समय डॉ० नाग ने उनके 'ऐतिहासिक रूप' अथवा ऐतिहासिक घटनाओं' का ब्यौरा प्रस्तुत किया है, परन्तु इन घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा उनके ऐतिहासिक स्रोतों की ओर कोई संकेत नही किया गया। साथ ही इससे विवेच्य काल खण्ड में प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की इतिहास-चेतना का समग्र रूप नहीं उभर पाया है। वास्तव में यह डॉ० कृष्णानाग का उद्देश्य भी नहीं था।

यद्यपि किशोरीलाल गोस्वामी विवेच्य काल खण्ड के कर्णधार मूर्धन्य एवं प्रतिनिधि उपन्यासकार है तथापि उनकी कृतियों का यह अध्ययन विवेच्य युग की इतिहास कथा पुस्तकों के सम्पूर्ण बिम्बों को आंशिक रूप में ही उभार पाया है। इस शोध-प्रबन्ध की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि लेखक के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं तथा जीवन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में इन उपन्यासों का साहित्यिक एवं दार्शनिक विवेचन है।

"हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग" नामक अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध के आरम्भिक अध्यायों में लेखक डॉ० गोविन्दजी ने इतिहास-दर्शन तथा इतिहास लेखन की अन्यान्य धारणाओं एवं मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में मानवीय अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण की ऐतिहासिक एवं साहित्यिक प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन किया है। यहाँ उपन्यास के अन्यान्य तत्वों एव घटकों का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि स्वयं में यह एक स्तुत्य प्रयास है तथापि लेखक ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता तथा ऐतिहासिक उपन्यास के नितान्त आधुनिक स्वरूप एवं मानदण्डों के आधार पर विवेच्य उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की आलोचना करने के कारण इस कालखण्ड के उपन्यासों के साथ ऐतिहासिक रूप से न्याय नहीं कर पाए।

डॉ० गोविन्द जी ने स्थान-स्थान पर विवेच्य उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों की कटु आलोचना की है, जो बहुधा निराधार है।

डॉ० गोविन्द जी संपादित **'ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप"** पुस्तक में मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों तथा आलोचकों के ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में अन्यान्य पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संग्रह किया गया है। यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सॉस्कृत्यायन, वृन्दावन लाल वर्मा सभी के निबन्धों को संगृहीत किया गया है। मूल लेखकों एवं समीक्षकों के ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में निबन्धो को एक ही स्थान पर एकत्रित एव प्रकाशित करना डॉ० गोविन्द जी की महत्त्वपूर्ण सफलता है।

वस्तुतः इन विद्वानों एवं विदूषियों ने प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों का अध्ययन प्रसंगवश ही किया है। यह उनका वास्तविक ध्येय भी नहीं था। उपर्युक्त मत के लिए मै क्षमा प्रार्थी हूँ। अस्तु।

अब प्रत्येक अध्याय के मूल प्रतिपाद्य तथा प्रमुख स्थापनाओं का क्रमिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करने की अनुमति चाहूँगा।

प्रथम अध्याय

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय को दो खण्डों में विभाजित किया गया है—

(i) तथ्यरूप इतिहास (ii) कलारूप इतिहास।

तथ्यरूप इतिहास के अन्तर्गत हमने आधुनिक इतिहास क्या है? मानवीय अतीत के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन एवं विचार करने की पद्धतियाँ तथा उन्नीसवी शताब्दी के अन्यान्य इतिहास दार्शनिकों यथा **जे० बी० बरी, क्रोचे, लांगलाइस** आदि की आधुनिक इतिहास के सम्बन्ध में धारणाओं तथा परिभाषाओं का वर्णन एवं विवेचन किया है।

निश्चयवाद अथवा स्वेच्छावादी इतिहास-सिद्धान्त का तथ्यरूप इतिहास लेखन की प्रक्रिया पर गहन प्रभाव पड़ता है। **मार्क्स, हीगल** तथा अन्यान्य दार्शनिकों के मतों

का अध्ययन करने के पश्चात् यह पाया गया है कि मानवीय अतीत में घटित होने वाली घटनाएँ ऐतिहासिक एजेंटों की क्रियाशीलता द्वारा ही मुख्यतः नियोजित होती है। यद्यपि शत-सहस्रों लोग भी इस प्रक्रिया में अपना योगदान देते है। यहाँ **मार्क्स** तथा **क्रोचे** के इतिहास दर्शनों का अध्ययन करते समय **लेनिन** तथा **कालिंगवुड** की इतिहास थ्योरी को भी ध्यान मे रखा गया है।

घटनाएँ एवं समस्याएँ तो तथ्यरूप इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप मे उभरती है। यहाँ स्वयं घटनाओं तथा घटित हुई घटनाओ के विवरण को इतिहास के रूप मे स्वीकार किया गया है।

व्यक्ति बनाम समूह तथा **जनता बनाम राष्ट्र** इतिहास लेखन की मुख्य समस्याएँ है। मानवीय अतीत के अध्ययन में काल के प्रवाह को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में क्या कुछ महान् राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक नेता ही एक नियोजक शक्ति के रूप मे उभरते है अथवा लाखों मनुष्य। यहाँ इस निर्णय पर पहुँचा गया है कि यद्यपि लाखों अनाम मनुष्यों ने इतिहास प्रवाह मे तथा मानवीयता के विकास मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था तथापि कुछ नेताओ अथवा महान् व्यक्तियों ने समूहों के पूरक के रूप में इतिहास की धारा को एक विशिष्ट एवं निश्चित दिशा प्रदान की। जनता एवं **राष्ट्र** के सम्बन्ध मे, मैं **कनिंघम** द्वारा सिख साम्राज्य को तथा **टॉड** द्वारा राजपूत रजवाड़ों को राष्ट्र कहे जाने के पक्ष में हूँ।

लिखित **दस्तावेज़**, **भौगोलिक** अध्ययन, अतीत की **राजनीति** आदि तथ्यरूप इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इनका वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया गया है। इतिहास को विज्ञान मानने वाले इतिहास दार्शनिक दस्तावेजों के साथ अत्यधिक महत्त्व जोडते है परन्तु हम **ई० एच० कार** के इस मत के पक्ष में है कि दस्तावेज केवल उसके लेखक तथा अभिलेखकर्त्ता के दृष्टिकोण को ही स्पष्ट करते है। **भौगोलिक स्थिति** एवं **अतीत की राजनीति** का भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से अध्ययन एवं विवेचन किया गया है। **भूगोल**, इतिहासकारो तथा ऐतिहासिक उपन्यासकारों को वह रगमंच प्रदान करता है जिस पर अतीत के पात्रों ने कार्य किए। अतीत की राजनीति के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि यद्यपि केवल राजनीति ही समस्त मानवीय अतीत का प्रतिनिधित्व नहीं कर मकती फिर भी हम **हीगल** के इस मत से सहमत है कि अतीत के केवल वही व्यक्ति हमारे ज्ञान में आते हैं जो राज्य का निर्माण करते है। अतीत की सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं की भी लगभग यही स्थिति है।

कलारूप इतिहास का अध्ययन भी (क) इतिहास के कई सामान्य रूप, (ख) उपन्यास तथा (ग) जीवनी शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। यह एक बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण विवाद है कि इतिहास को विज्ञान की एक शाखा माना जाए अथवा कला की। चूँकि कला मूलतः सौन्दर्यपरक होती है इसलिए इतिहास को भी इसी प्रकार का होना चाहिए। इस प्रकार इतिहासकार को कई ऐसे साहित्यिक

उपकरण उपलब्ध हो जाएँगे जिनसे वह अतीत के नीरस तथ्यों के संकलन के स्थान पर इतिहास को महान् पुरुषों के कार्यो के साथ-साथ अतीत के लाखों लोगों के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को भी प्रस्तुत कर पाएगा। **उपन्यास** भी इतिहास लेखन का एक कलारूप है। यहाँ इतिहास तथा उपन्यास की अन्यान्य-प्रवृत्तिमूलक समानताओ तथा भिन्नताओं का अध्ययन करते हुए उपन्यास का इतिहास के साथ निकट का सम्बन्ध होना प्रामाणित किया गया है। जीवनी के रूप में साहित्य एवं इतिहास का संगम कलारूप इतिहास-धारणा को अधिक प्रामाणिक बनाना है। **कालिगवुड जीवनी** को गैर-ऐतिहासिक ही नही प्रति-ऐतिहासिक मानते हैं। हमारा विचार है कि जीवनी निश्चित रूप से मानवीय अतीत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्षों का सफलतापूर्वक उद्घाटन करती है, जैसा कि **ट्रेविलियन** ने कहा था कि एक मनुष्य की जीवनी पथभ्रष्ट कर सकती है परन्तु बहुत से मनुष्यों को जीवनियाँ इतिहास से अधिक हैं।

कलारूप इतिहास के तीन मुख्य तत्त्व—(क) मानवीय प्रकृति (ख) महा पुरुषों की जीवनियाँ तथा (ग) शत-सहस्र सामान्य लोग है। **मानवीय प्रकृति**, मानवीय अतीत के अध्ययन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक होती है क्योकि **ए० एल० राउस** के मतानुसार इतिहास मे हमें सदैव मनुष्यों के साथ व्यवहार करना होता है और **इ० एच० कार** के अनुसार इतिहास की घटनाओं को मानवीय प्रकृति ने बहुत सीमा तक प्रभावित किया है। महान्-पुरुषों तथा शत-सहस्र लोगो के इतिहास-प्रवाह में योगदान के सम्बन्ध मे हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि वे एक ही प्रक्रिया के दो महत्त्वपूर्ण अगों के रूप में उभरते है, जिन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को प्रभावित एव नियोजित किया।

इतिहास बनाम साहित्यकला के सम्बन्ध में हम इस निर्णय पर पहुँचे है कि अतीत के मनुष्यों के विचार, उनकी भावनाएँ, भावावेग, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ विश्वास तथा जीवन के मौलिक सिद्धान्तों का अध्ययन केवल साहित्य एवं कला के उपकरणो की सहायता के साथ ही किया जा सकता है।

इतिहास और विज्ञान—यद्यपि बहुत से इतिहास-दार्शनिक उन्हें एक ही मानने के पक्ष मे है, कई प्रवृत्ति मूलक अन्तरों के कारण एक-दूसरे से भिन्न है। हमने इतिहास तथा विज्ञान की विपरीतता (Anti-thesis) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

इतिहास का रोजमर्रा के जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। **ए. एल. राउस** इस मत के पक्ष मे है। हमारा निष्कर्ष यह है कि इतिहास मनुष्य को अतीत का सुनिश्चित ज्ञान एवं भविष्य के सम्बन्ध मे बेहतर पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

कलारूप इतिहास की प्रक्रिया का अध्ययन (क) कार्य-कारण-श्रृंखला-घटना, प्लाट, (ख) समझने की प्रकिया, तथा (ग) लेखन की शर्तें, अभिव्यक्ति, शीर्पकों के अन्तर्गत किया गया है। **यहाँ ऐतिहासिक घटनाओं की कार्य परिणाम**

'शृंखला' का अध्ययन ऐतिहासिक घटनाओं तथा औपन्यासिक प्लाट के सन्दर्भ में किया गया है। हमारे मतानुसार मानवीय अतीत के अध्ययन तथा इतिहास को बुद्धिगम्य बनाने के लिए उसके लेखन की प्रक्रिया में कार्य-कारण शृंखला का एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित स्वरूप होना आवश्यक है। इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार द्वारा अपने **अध्ययन के युग को समझना** इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अतीत में मनुष्यों की अन्यान्य परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया के स्वरूप का अध्ययन भी इसी का एक पक्ष है। इतिहासकार अपनी खोज एवं अध्ययन के पश्चात् जो निष्कर्ष निकालता है उनकी **अभिव्यक्ति** के लिए उसे भाषा तथा साहित्य के कई उपकरणों का आश्रय लेना पड़ता है।

कला रूप इतिहास की उपलब्धियों के साथ-साथ यहाँ **कला रूप इतिहास की सीमाओं** की ओर भी संकेत किया गया है। यह अध्ययन (i) सत्य की सीमा (ii) जीवनी का एक पक्ष, (iii) कल्पना तथा (iv) अन्तर्दृष्टि शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। सामान्यतः मानवीय भावनाओं एवं भावावेगों में ऐतिहासिक तथ्य धूमिल पड़ जाते हैं। जीवनी स्वयं में मधुर एवं उपयोगी होने पर भी ज्ञान का एक सीमित स्रोत है। कल्पना का प्रयोग कई बार इतिहास के उद्देश्य को तिरोहित कर सकता है। अन्तर्दृष्टि का प्रयोग भी इतिहास की प्रक्रिया को सीमित कर सकता है।

इस प्रकार पहले अध्याय में इतिहास के दोनों रूपों—कलारूप तथा तथ्यरूप इतिहास दर्शन का अध्ययन किया गया है।

दूसरा अध्याय

इस अध्याय में (क) "इतिहास व्याख्या के रूप में ऐतिहासिक उपन्यास" तथा (ख) "इतिहास पुनर्रचना के रूप में ऐतिहासिक रोमांस" शीर्षकों के अन्तर्गत क्रमशः इतिहास और तथ्यात्मकता तथा इतिहास और अतिकल्पना के सम्मिलन का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासो तथा ऐतिहासिक रोमांसों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है।

(क) **इतिहास व्याख्या के कई पक्षों में**—(i) राजनैतिक पक्ष (ii) आर्थिक पक्ष (iii) सामाजिक पक्ष, (iv) धार्मिक पक्ष तथा (v) सांस्कृतिक पक्ष आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। **एस० टी० विडाफ की पुस्तक "एप्रोचिज टू हिस्ट्री"** में इतिहास लेखन के इन सभी पक्षों का अलग-अलग विविक्त अध्ययन किया गया है, हमने उसी के आधार पर मानवीय अतीत के इन पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही विवेच्य उपन्यासों में उपलब्ध इन पक्षों के स्वरूपों की ओर भी संकेत किया गया है।

जिस प्रकार इतिहासकार अपने तथ्यों एवं घटनाओं की व्याख्या करते हैं उसी प्रकार कई कलात्मक पद्धतियों से ऐतिहासिक उपन्यासकार भी ऐतिहासिक

सामग्री की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। विवेच्य उपन्यासकार **इतिहास की धार्मिक व्याख्या** के पक्ष में थे।

इतिहास लेखन की प्रक्रिया का अध्ययन हमने (i) सामान्यीकरण करने (ii) प्रवृत्तियां देखने (iii) नियम पाने (iv) निर्णय देने अथवा भविष्यवाणी करने तथा (v) लेखक के दृष्टिकोण आदि शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। हमारा विचार है कि इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रक्रिया में कई स्तरों पर सामान्यीकरण किए जा सकते हैं। लेखक स्थान एवं काल में बद्ध एक निश्चित काल खण्ड की प्रवृत्तियों को चित्रित कर सकते हैं। इसी प्रकार वे कुछ नियम पा कर निर्णय भी दे सकते हैं। यद्यपि निर्णय देना अथवा भविष्यवाणी करना इतिहासकार का कार्य नहीं है तथापि वे भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के प्रवाह के स्वरूप की ओर संकेत कर सकते हैं। इसी प्रकार लेखक इतिहास लेखन की प्रक्रिया में अतिशयोक्ति पूर्ण कल्पना तथा सत्य की तथ्यात्मकता को अपने उद्देश्य एवं रुचि के अनुरूप प्रयोग में ला सकता है। यहाँ हमने इतिहास तथा ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रक्रिया का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में घटनाएँ, पात्र, विचार, परिवेश एवं विवरणात्मक वातावरण तथा समस्याओं एवं परिस्थितियों के सम्बन्ध में अलग-अलग विश्लेषण किया है, जो इतिहास तथा ऐतिहासिक उपन्यास की बेहतर समझ के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा।

(ख) इतिहास और अतिकल्पना के मिलने **से इतिहास की पुनर्रचना** के रूप में ऐतिहासिक रोमांस उभर कर आते हैं यहाँ इतिहास और रोमांस के तत्वों के ऐतिहासिक रोमांस में समन्वित होने की प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक रोमांसों में **मानवीय प्रकृति और मानवीय स्वप्नों का प्रयोग** होता है। यहाँ किसी एक महापुरुष के स्थान पर सामान्य जनों के अतीत या किसी अज्ञात व्यक्ति के रहस्य रोमांच का वर्णन किया जाता है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में यह तत्व प्रचुर मात्रा में उभर कर आए हैं जिनके परिणाम स्वरूप ऐतिहासिक रोमांसों में ऐतिहासिक अतीत पृष्ठभूमि में चला जाता है तथा लोकातीत उभर कर आता है। ताल एवं प्लाट रहित इतिहास को रोमांस के तत्वों से मिलाने पर **कथा के प्लाट एवं पात्रों का कलेवर** प्राप्त होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में भारतीय मध्ययुगों का पुनर्निर्माण करने की प्रक्रिया में इतिहास तथा रोमांस के तत्वों का समन्वय कलात्मक ढंग से किया गया है।

ऐतिहासिक रोमांसों में सामान्यत: **अति कल्पना** के कार्यों का विवरण एवं चित्रण किया जाता है अति कल्पना के प्रयोग के कारण यहाँ **देश-काल के बन्धन ढीले** पड़ जाते हैं। अति कल्पना के प्रयोग द्वारा ऐतिहासिक वातावरण की उत्पत्ति की जाती है जिसके परिणामस्वरूप देश एवं काल की कठिनाई दूर होने के साथ-साथ ऐतिहासिक अतीत के रिक्त स्थान भरे जाते है। इस प्रकार हमारे विचार से

ऐतिहासिक रोमांसों में मानवीय अतीत का अति सजीव एवं सत्य पूर्ण, यह तथ्य पूर्ण नहीं भी हो सकता, चित्र उभारा जाता है।

यद्यपि इतिहास मूलतः तथ्याश्रित होता है, परन्तु **अतिकल्पना पर तथ्य और प्रामाणिकता के बंधन नहीं** होते जिसके फलस्वरूप मानवीय अतीत के मनुष्यों के भावावेग एवं आकांक्षाएँ अधिक स्वच्छन्दता पूर्ण तरीके से उभर कर आती हैं। ऐसा करते हुए यदि लेखक **मानवीय प्रकृति तथा तत्कालीन परम्पराओं** के अनुकूल पात्रों एवं घटनाओं को उभारे तो अतिकल्पना के माध्यम से वह एक बृहत्तर सत्य का प्रतिपादन कर सकता है। ऐतिहासिक रोमांसों में ऐतिहासिक निश्चयवाद के स्थान पर **स्वच्छन्द मानवीय इच्छा** क्रियाशील होती है। इस प्रकार यहां अति कल्पना के लिए अधिक स्थान रहता है।

ऐतिहासिक रोमांसों में **इतिहास की पुनर्रचना** की जाती है। जब भी मानवीय अतीत की पुनर्रचना की जाएगी तो वह स्पष्ट रूप से इतिहास के **अलिखित रूप के अधिक निकट** होगा। इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में मिथकों, निजंधरों, लोक कथाओं तथा लोक प्रथाओं का विपुल मात्रा में प्रयोग किया जाता है जो देश काल के कठोर अनुशासन से विमुख होता है। ऐतिहासिक रोमांसों में अन्यान्य प्रकार के विवरणों की बहुलता होती है। प्राचीन महलों, किलों, नगरों, गुफाओं, खण्डहरों तथा तिलिस्मी एवं ऐयारी के विवरणों के माध्यम से भी इतिहास की पुनर्रचना में सहायता मिलती है क्योंकि यह सब मानवीय अतीत के अंग थे।

ऐतिहासिक रोमांसों में **अति मानवीय, अति प्राकृतिक, अति लौकिक** तथा जादू टोना आदि मध्ययुगीन अंध-विश्वासों का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में **अति** उपसर्ग की प्रधानता होती है। इसका पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी प्रभाव पड़ता है। नायिकाएँ अति सुन्दर, नायक अत्यंत वीर एवं शौर्यता पूर्ण अथवा खलनायक अति दानवीय रूप में उभारा जाता है यहाँ असामान्य एवं अनपेक्षित प्रसंगों तथा संदर्भो द्वारा **चमत्कार एवं कुतूहल** की सृष्टि की जाती है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में यह गुण गोथिक एवं हीरोइक रोमासों में से आए हैं।

ऐतिहासिक रोमांस का प्रधान रूप कुछ बिन्दुओं पर आधारित होगा यदि इनके पात्र एवं घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं है तो इनका वातावरण ऐतिहासिक हो, यदि पात्र ऐतिहासिक न हों तो कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक होनी चाहिएँ। इसी प्रकार यदि घटनाएँ ऐतिहासिक न हों तो कुछ प्रमुख पात्र ऐतिहासिक होने चाहिएँ।

इस प्रकार हमने इस अध्याय में इतिहास का तथ्यात्मकता तथा अति कल्पना से सम्बन्ध दिखाते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया है।

तीसरा अध्याय

तीसरे अध्याय का (1) **ऐतिहासिक उपन्यास व ऐतिहासिक रोमांस की तुलना** व (2) **प्रेरणा स्रोत** के अध्ययन से सम्बन्ध है। यहां हमने इन दो साहित्यिक विधाओं

की तुलना की है तथा उनके प्रेरणा स्रोतों का अध्ययन किया है। सामान्यतः ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस को एक ही कोटि की साहित्यिक विधाएँ समझा जाता है।

इसलिए सैद्धांतिक आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की तुलना करते हुए उनकी समानताओं एवं असमानताओं का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस की तुलना इतिहास उपचार के दो कोणों के अध्ययन के माध्यम से की जा सकती है—**तथ्यात्मक ऐतिहासिकता** तथा **भावात्मक ऐतिहासिकता**। यहाँ हमने ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक रोमांसकार द्वारा अतीत का चित्रण करने के दो विभिन्न दृष्टि कोणों का सैद्धांतिक अध्ययन किया है।

समानताएँ—प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में कई सामान्य विशेषताएँ भी उपलब्ध होती हैं जैसे (i) जन-जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव, (ii) भावना या धर्म के मुकाबले यथार्थ का परित्याग, (iii) अति प्राकृतिक व अन्धविश्वासों का ग्रहण तथा (iv) कथा संयोजन में बर्बरता व कामुकता का समावेश यह सभी प्रवृत्तियाँ ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में लेखकों की रचना प्रक्रिया के सिद्धांत के अन्तर्गत एक साथ उभर कर आई हैं। जहाँ कहीं इन प्रवृत्तियों के अपवाद विवेच्य कृतियों में मिले हैं वहाँ उनकी ओर संकेत कर दिया गया है।

असमानताएँ—(i) ऐतिहासिक उपन्यास में मानवीय अतीत का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्व्याख्या करते समय गम्भीरता की तकनीक का आश्रय लिया जाता है जबकि ऐतिहासिक रोमांसों में इतिहास की पुनर्रचना करते समय रहस्य एवं रोमांस की प्रवृत्तियों को मुख्य स्थान दिया जाता है। यह प्रवृत्तियाँ हीरोइक रोमांस गोथिक रोमांस तथा पिक्चरेस्क आदि से ही आई हैं

(ii) ऐतिहासिक उपन्यासों में शास्त्रीय परंपराओं का प्रतिपादन किया जाता है जबकि ऐतिहासिक रोमांसों में शास्त्रीयता का विरोध अन्यान्य धरातलों पर किया जाता है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में शास्त्रीयता की परंपरा को सीधे महाकाव्यों से तथा आंशिक रूप से रासो काव्यों की शास्त्रीय परंपरा से ग्रहण किया गया है। इनका विवेचन करते हुए हमने ऐतिहासिक रोमांसों में शास्त्रीयता विरोध के अन्यान्य धरातलों यथा असाधारण, अति मानवीय, अति प्राकृतिक तथा अलौकिक तत्त्वों एवं उपकरणों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रयुक्त किए जाने के फलस्वरूप उनमें शास्त्रीय परंपरा की सरलता, महत्ता, गरिमा, स्पष्टता, वस्तुनिष्ठता, सुनिश्चितता तथा रचना की पूर्णता आदि विशेषताओं का अभाव रह जाता है और वे ऐतिहासिक रोमांसों में शास्त्रीयता विरोध के रूप में उभरते हैं ।

(iii) ऐतिहासिक उपन्यासों में **मूल्यों की बौद्धिक परंपरा** का पालन किया जाता है, जबकि ऐतिहासिक रोमांसों में **बौद्धिक मूल्यों के विरोध में** भावावेश तथा मानवीय भावावेगों को मुख्य स्थान प्रदान किया जाता है।

(iv) इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास, **लेखक की सामयिक चेतना** के बोध को लेकर चलता है जबकि ऐतिहासिक रोमांस अपनी असामान्य एवं अति लौकिक प्रवृत्तियों के कारण सम सामयिकता के विरोध में **मध्ययुगों में पलायन** की प्रवृत्ति का प्रतिपादन करता है। हमने विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एव ऐतिहासिक रोमांसों में इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए समसामयिक बोध तथा अतीत युगीन बोध की अन्तर्प्रक्रिया को अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

(v) ऐतिहासिक रोमांसों मे **मर्यादावादी नैतिकता** का **विरोध** किया जाता है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में इस प्रकार का विरोध कामुकता एवं अश्लीलता के धरातलों पर उभारा गया है।

(vi) **ऐतिहासिक रोमांसों में अति प्राकृतिक सशक्तता** का प्रदर्शन किया जाता है। पात्रों में इस प्रकार की सशक्तता मध्य युगीन नाइट्स के समान उभरती है। इसी प्रकार नायिका का उद्धार करने के लिए अथवा युद्ध में असाधारण वीरता का प्रदर्शन इसी अति प्राकृतिक सशक्तता की धारणा द्वारा ही रूपायित होता है। इसके साथ ही ऐतिहासिक रोमांसों में उग्रता और अतिशयता पर जोर दिया जाता है। यह युद्धों की भयावहता का अतिरंजित चित्रण करने के माध्यम से उभारा जाता है।

(vii) लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में **कुल तथा जाति का अभिमान** पात्रों के क्रिया-कलापों तथा घटनाओं की नियोजक शक्ति के रूप में उभरता है।

(viii) अन्त मे अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में **लोक तत्त्वों के क्रियात्मक स्वरूप** का अध्ययन प्रस्तुत किया है। लोक तत्त्व मानवीय अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में उभरते हैं। वे ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने तथा सम्पूर्ण अतीत को उभारने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

इस अध्याय के दूसरे खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस रूपों के अभ्युदय के लिए अपेक्षित प्रेरणाओं का अध्ययन किया है।

(i) **विदेशी इतिहासकारों** की ऐतिहासिक कृतियों से विवेच्य लेखकों ने ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों का सृजन करने के लिए प्रेरणाएँ प्राप्त की हैं। इन ऐतिहासिक कृतियों में **टॉड, वार्नस फिच, सर टामस रो, बर्नियर मयानिसी** तथा **ग्रांट डफ** आदि अंग्रेज इतिहासकारों की ऐतिहासिक कृतियों ने विवेच्य लेखकों के लिए प्रेरणा स्रोत का कार्य किया है। इसी प्रकार 'इंडियन शिवलरी' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक तथा एक अनाम ब्रिटिश लेखक द्वारा प्रणीत पुस्तक 'दी लाइफ आफ इन ईस्टर्न किंग' का भी विवेच्य कृतियों में प्रयोग किया गया है।

विदेशी इतिहासकारों की कृतियों के साथ-साथ विवेच्य लेखकों ने (ii) प्राचीन भारतीय इतिहास ग्रन्थों व रासो काव्य ग्रन्थों से भी प्रेरणा प्राप्त की है। इनमें कल्हण की राजतरंगिणी तथा पृथ्वीराज रासो मुख्य हैं।

(iii) समकालीन भारतीय भाषाओं के इतिहास-ग्रन्थों ने भी विवेच्य लेखकों को प्रभावित एवं प्रेरित किया। इनमें बंकिमचन्द्र की 'राजसिंह अथवा चंचलकुमारी', नीरजमल की 'पानीपत का युद्ध' तथा बाबू क्षीरो प्रसाद तथा सुरेन्द्रनाथ राय लिखित 'पद्मिनी' नामक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी में राजा शिवप्रसाद की इतिहास तिमिर नाशक तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'बादशाह दर्पण' आदि इतिहास पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं।

(iv) विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तांतों तथा पुरातात्विक खोजों से भी विवेच्य लेखकों ने प्रेरणा प्राप्त की है। इनमें इब्न बेतुल की भारत यात्रा के वृत्तान्त, डॉ० मुयानिसी के इतिहास वृत्तान्त आदि का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार हमने इस अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की सैद्धान्तिक धरातल पर तुलना करने के साथ-साथ विवेच्य लेखकों पर ऐतिहासिक कृतियों तथा यात्रा वृत्तान्तों के प्रभावों तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करने का अध्ययन किया है।

चौथा अध्याय

चौथे अध्याय में (1) प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के अभ्युदय की सामाजिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियाँ तथा (ii) ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की प्रवृत्तियों का अध्ययन एवं विवेचन किया गया है।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के अभ्युदय की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमने (क) साम्प्रदायिक मतभेद तथा (ख) आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के प्रधान-शीर्षकों के अन्तर्गत किया है।

हिन्दू-मुस्लिम मतभेद—वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसने विवेच्य लेखकों की जीवन दृष्टि तथा इतिहास धारणा को गहराई तक प्रभावित किया। यहाँ मैंने साम्प्रदायिकता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए विवेच्य कृतियों में उसके आरोपण की पद्धति की ओर संकेत किया है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण, साम्प्रदायिक मतभेद तथा संस्कृतियों के सम्मिलन एवं टकराहट वह अपेक्षित सामाजिक परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इन ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के अभ्युदय के लिये उपयुक्त स्थिति का निर्माण किया।

इन कृतियों की निर्माण की ऐतिहासिक स्थिति के लिए हमने (क) पुरातात्त्विक खोजें, (ख) भारतीय इतिहासकार, (ग) यूरोपीय इतिहासकार, तथा (घ) बंगाली

एवं मराठी के इतिहास-द्रष्टा शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया है। पुरातात्त्विक खोजों, वास्तुकला के अवशेषों, प्राचीन भारतीय ग्रन्थों एवं संस्कृत साहित्य पर **मैक्स-मूलर, एम. विंटर निट्ज, एलबर्ट वेबर** तथा **ए० बी० कीथ** आदि विद्वानों की खोजों ने, **आर० जी० भण्डारकर** तथा **आर० के० मुखर्जी** की राष्ट्रीयता परक पुस्तकों ने तथा **बंकिमचन्द्र एवं रखालदास बंद्योपाध्याय** की ऐतिहासिक कृतियों ने उन विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों का निर्माण कर दिया था जिनके प्रभाव स्वरूप विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों का प्रणयन किया गया।

दूसरे खण्ड में हमने प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है। हमारे विचार से प्रेमचन्द-पूर्व की इन इतिहास-आश्रित कथा पुस्तकों की प्रवृत्तियों का अध्ययन ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस के मध्य एक स्पष्ट सीमा रेखा खींचने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में (क) **जनता से कट कर अन्तःपुर एवं राज सभाओं की ओर** जाने की प्रवृत्ति उभर कर आई है। ऐतिहासिक उपन्यासों में अन्तःपुर एवं राज सभाएँ राजनैतिक एवं कूटनीतिक मामलों के महत्त्वपूर्ण मंत्रणा गृह के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। यहाँ दरबारी संस्कृति की मध्ययुगीन इतिहास धारणा के अनुरूप राज्य सभा तथा राजा एवं शासक वर्ग समस्त राजनैतिक निकाय को गति एवं दिशा प्रदान करने वाली नियोजक शक्ति के रूप में उभर कर आये हैं। इसके विपरीत ऐतिहासिक रोमांसों में अन्तःपुर तथा राज-सभाओं को प्रेम-क्रीड़ाओं, लीलाओं तथा मधुचर्या के विहार स्थलों के रूप में चित्रित किया गया है।

लगभग सभी ऐतिहासिक (ख) उपन्यासों में **रोमांस की ओर जाने की प्रवृत्ति** मुख्य रूप से उभर कर आई है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत विवेच्य उपन्यासकार अपनी कृत्तियों में इतिहास का चित्रण करने के साथ-साथ रोमांस के तत्त्वों को भी सम्मिलित करते चलते हैं।

प्रेमचन्द पूर्व लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में (ग) **काल की धार्मिक धारणा** द्वारा ही घटना प्रवाह एवं पात्रों का चरित्र नियोजित होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास धारणाओं के साथ समस्त मानवीय क्रिया-कलाप, कर्मचक्र, नियति चक्र, काल चक्र तथा पुरुषार्थ चक्र द्वारा रूपायित होते हैं तथा मनुष्य जगत की सभी घटनाये एक अलौकिक शक्ति द्वारा नियोजित की जाती हैं। हमारे विचार से इसी इतिहास चेतना के आधार पर अध्ययन किए जाने पर विवेच्य ऐतिहासिक कृतियों के साथ न्याय किया जा सकता है।

(घ) **हिन्दु पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण** तथा (ङ) **हिन्दू राष्ट्रीयता** की धारणा लगभग सभी विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में एक मूल-कला-विचार तथा इतिहास विचार के रूप में उभरे हैं। लगभग सभी विवेच्य

लेखक सनातन हिन्दू-धर्म की मान्यताओं तथा हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की धारणाओं के प्रति प्रतिबद्ध थे। अपनी इन्हीं मान्यताओं एवं धारणाओं को विवेच्य लेखकों ने भारतीय मध्य युगों में प्रक्षेपित किया है।

(च) **सेक्स के माध्यम से मनोरंजन** प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यास साहित्य का मुख्य कला-विचार था जो कुछ परिवर्तित रूप में ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में भी उभरा है। यहाँ भी अश्लीलता एवं कामुकता के धरातलों पर सेक्स का चित्रण किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि विवेच्य लेखक सेक्स का वर्णन करते समय स्वयं उसमें रस लेने लगते हैं।

(छ) **पुराणों आदि से उपदेश देने** की प्रवृत्ति कई विवेच्य कृतियों में उभर कर आई है। उपदेश देने की इस प्रवृत्ति से कई बार उपन्यास-कला तथा शिल्प पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(ज) **स्वामीभक्ति एवं राजभक्ति** की मध्ययुगीन प्रवृत्तियों का विवेच्य कृतियों में एक मुख्य इतिहास विचार के रूप में चित्रण किया गया है। भारतीय मध्ययुगों के पुनः निर्माण एवं पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में इस प्रवृत्ति को सम्मिलित करने से कृतियाँ अत्यधिक सजीव एवं स्वाभाविक बन पड़ी हैं। क्योंकि यह प्रवृत्तियाँ भारतीय मध्ययुगों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं चरित्रों की नियामक प्रवृत्तियाँ थीं।

इन ऐतिहासिक कृतियों में (झ) **शृंगार एवं प्रकृति का वर्णन रीतिकालीन** ढंग से किया गया है। यह नायिका के नखशिख वर्णन तथा नायकों की विलासिता एवं शौर्यता के विवरणों द्वारा स्पष्ट रूप से उभर कर आया है।

अद्वितीय शौर्य एवं (ञ) **युद्धों का वर्णन रासोकालीन पद्धति** से किया गया है। इस प्रकार के वर्णन एवं चित्रण रासो काव्यों से अपनी प्रेरणा एवं स्रोत प्राप्त करते हैं। यह दोनों प्रवृत्तियाँ विवेच्य लेखकों को विरासत में प्राप्त हुई थी। साहित्यिक रुचि सम्पन्न एवं रसिकतापूर्ण होने के कारण कतिपय विवेच्य लेखकों ने इन दोनों प्रवृत्तियों को अत्यन्त कलात्मक एवं रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार हमने इस अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासों एव ऐतिहासिक रोमांसों के अभ्युदय की सामाजिक एव ऐतिहासिक परिस्थितियों के साथ साथ उनकी मुख्य प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है।

पाँचवाँ अध्याय

पाँचवें अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासकारों की इतिहास धारणाएँ एवं पुनर्व्याख्याएँ तथा उपन्यासों के शिल्प चक्रों का अध्ययन किया है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में अपनी अन्यान्य इतिहास धारणाएँ तथा पुनर्व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं।

उपन्यासकारों की इतिहास धारणाओं का अध्ययन (क) स्वच्छन्द इच्छा एवं महान् व्यक्ति (नायक पूजा) की धारणा (ख) काल चक्र, नियति चक्र, कर्म चक्र, (ग) हिन्दू दृष्टिकोण, (घ) धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थ चरित्र के नियामक (ङ) स्वयंवर एवं दिग्विजय (च) हिन्दू इतिहास के स्वर्णयुग को आदर्श काल एवं पौराणिक युगों के प्रतिबिंब के रूप में तथा (छ) सामान्य इतिहास धारणाएँ शीर्षकों के अन्तर्गत किया है।

(क) लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासकार **मानव की स्वच्छन्द इच्छा** तथा **एक महान् व्यक्ति** को समस्त ऐतिहासिक घटना-प्रवाह की नियोजक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। महान् व्यक्ति की यह धारणा यहाँ पर नायक पूजा की धारणा के साथ जुड़ कर उभरी है। लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों के नायक एव सामान्य पात्र अपनी स्वच्छन्द इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं।

(ख—ग) प्राचीन भारतीय इतिहास दर्शन के अनुरूप ही विवेच्य लेखक **काल-चक्र, नियति-चक्र, कर्म-चक्र** तथा इतिहास के संबंध में हिन्दू दृष्टिकोण को लेकर चलते हैं। इस प्रकार की इतिहास धारणाएँ यद्यपि आधुनिक एवं वैज्ञानिक इतिहास दर्शन के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं हैं फिर भी अपने आप में यह एक संपूर्ण इतिहास दर्शन का निर्माण करती हैं जिसका विवेच्य लेखकों ने अपनी कृतियों में प्रयोग किया है।

(घ) **प्राचीन धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थ** तथा उनमें दिए गए उपदेश उपन्यासों के चरित्रों को नियोजित करते हैं। चरित्रों के साथ साथ इन ग्रन्थों की धारणाएँ एवं मान्यताएँ घटना प्रवाह को भी प्रभावित करती हैं।

(ङ) **स्वयंवर एवं दिग्विजय** भारतीय इतिहास चेतना के अत्यन्त महत्वपूर्ण इतिहास-विचार हैं जिनका विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रयोग किया गया है। कई बार यह प्रयोग स्वयंवर एवं दिग्विजय का पूर्ण अर्थ न देते हुए भी उनका आभास मात्र दे जाते हैं।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार (च) **प्राचीन हिन्दू इतिहास के स्वर्ण युग** को आदर्श काल के रूप में तथा पौराणिक युगों के **प्रतिबिंब** के रूप में स्वीकारते हैं। इस इतिहास विचार को स्पष्ट एवं सीधी अभिव्यक्ति देने के स्थान पर विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारतीय मध्ययुगों का पुन: प्रस्तुतिकरण करते समय, मध्ययुगों में उनका प्रक्षेपण किया है। हमारे विचार में विवेच्य लेखकों की इस इतिहास-धारणा के पीछे उनकी अपनी सनातन हिन्दू धर्म की मान्यताओं के प्रति प्रतिबद्धता क्रियाशील थी।

(छ) इतिहास की पुनर्व्याख्या करने की प्रक्रिया में विवेच्य लेखकों ने मुसलमानों को प्रत्येक बुराई के मूल में देखा है। यहाँ मैंने मुसलमान शासकों को ऐतिहासिक आततायी के रूप में स्वीकार करते हुए **डॉ० मेघ** की धारणा के अनुरूप विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका अध्ययन किया है।

विवेच्य लेखक मध्ययुगों के सामाजिक पतन के मूल में कलयुग, दुर्भाग्य अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था के भंग होने को ही स्वीकार करते हैं।

हमारा विचार है कि इतिहास की यह पुनर्व्याख्याएँ लेखकों की मुसलमानों, मुसलमान शासकों तथा मुसलमान इतिहासकारों के प्रति अविश्वास की धारणा के परिणाम स्वरूप उभर कर आई हैं।

दूसरे खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यासों में चरित्र तथा इतिहास चेतना का अध्ययन किया है यहाँ मध्ययुगों के पात्रों के चरित्र तथा मध्ययुगीन इतिहास चेतना के अन्तर्संबन्धों का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण किया गया है।

इन ऐतिहासिक उपन्यासों में लगभग सभी हिन्दू पात्र **हिन्दू राष्ट्रीयता** एवं **हिन्दू नैतिकता** की धारणा द्वारा परिचालित होते हैं। यही धारणा उनके क्रिया-कलापों तथा गतिविधियों को प्रभावित करती है। **जातीय दर्प** की सामन्ती धारणा भारतीय मध्य युगों के पात्रों के चरित्र की वह मौलिक प्रवृत्ति है जो उनके चरित्र के लगभग सभी पक्षों को नियोजित करती है मैंने विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में इन धारणाओं की खोज की है।

दरबारी संस्कृति की मध्ययुगीन इतिहास-धारणा के अनुरूप इन ऐतिहासिक उपन्यासों में **शौर्य, प्रतिद्वन्द्वता** तथा **भोग** की चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर आई है। भारतीय मध्य युगों का पुनः प्रस्तुतिकरण करते समय इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने इन तीनों चारित्रिक विशेषताओं का मध्ययुगीन इतिहास चेतना के अनुरूप चित्रण किया है। इसके साथ ही एकान्तिक एवं व्यक्तिगत प्रेम की चारित्रिक प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया गया है।

इस प्रकार इस खण्ड में हमने भारतीय मध्य युगों की इतिहास चेतनातथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप चरित्र चित्रण का अध्ययन किया है।

तीसरे खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यासो में **घटनाओं की प्रामाणिकता** का अध्ययन किया है। यहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की स्थिति के संबंध मे अन्यान्य आलोचकों एव मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों के विचार प्रस्तुत करने के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित घटनाओं को इतिहास-पुस्तकों द्वारा प्रमाणित किए जाने का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि सामान्यतः सभी ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास की पुस्तकों द्वारा अपनी सामग्री तथा मुख्य घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हैं। यद्यपि इसके अपवाद स्वरूप कई अनैतिहासिक घटनाओं एवं प्रसंगों की उद्भावना की गई है। परन्तु वह अत्यन्त नगण्य हैं।

चौथे खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यासों में **देशकाल तथा वातावरण** का अध्ययन किया है। इस अध्ययन को (i) काल एवं (ii) देश दो भागों में विभक्त कर लिया गया है।

(i) **काल** के अन्तर्गत हमने **ऐतिहासिक यथार्थवाद** की इतिहास धारणा का सैद्धान्तिक विवेचन किया है जिसके अनुसार मानवीय अतीत का अध्ययन आधुनिक दृष्टिकोण से किया जाता है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में आदर्श हिन्दू राज्य की प्राचीन धारणा का भारतीय मध्ययुगों में प्रक्षेपण किया गया है। यह विवेच्य लेखकों के युग की मूल इतिहास मान्यताओं के अनुरूप ही किया गया है।

(ii) देशकाल के नियामक तत्त्वों के रूप में **वस्त्राभूषण, पात्रों का आचार व्यवहार एवं शिष्टाचार, भित्ती चित्र एवं महलों क अवशेष, शासकों की उपाधियाँ** एव संबोधन आदि विषयों को लिया गया है। इन सभी तत्त्वों की विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में खोज की गई है तथा उनके द्वारा प्राचीन काल के प्रभाव एवं वातावरण के निर्माण में पहुँची सहायता की ओर भी संकेत किया गया है।

(iii) देश के अन्तर्गत **स्थूल प्राकृतिक** तथा **भू-चित्रों का वर्णन,** अतीत युगीन घटनाओं के घटित होने के लिए एक रगमंच का निर्माण करता है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में इन दोनों तत्त्वों का विपुल मात्रा में प्रयोग किया गया है तथा उनसे एक विशिष्ट युग के वातावरण के निर्माण में सहायता प्राप्त हुई है।

लोक कथाएँ, लोक गाथाएँ एवं **लोक-गीत** आदि **लोक-तत्त्वों** के प्रयोग से ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारतीय मध्ययुगों का चित्रण करते समय उसे अधिक सजीव एवं बुद्धिगम्य रूप में प्रस्तुत किया है।

भारतीय मध्ययुगों के सामन्ती जीवन का चित्रण करने में तथा मध्ययुगीन पात्रों को उभारने में कालानुरूप राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक एवं जातीय मानदण्डों को दृष्टिगत रखा गया है। मैंने इन सभी तत्त्वों को विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में ढूंढा है तथा उनके माध्यम से वातावरण निर्माण में मिली सहायता की ओर संकेत किया है। इसके साथ ही भारतीय मध्ययुगों के राजा तथा प्रजा के कर्त्तव्यों की ओर भी संकेत किया गया है।

पाँचवें खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार के युग के प्रतिबिंब का अध्ययन किया है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार का युग दो प्रकार से उभर कर आया है—वर्तमान का प्रत्यक्ष चित्रण तथा लेखक के युग का अप्रत्यक्ष प्रक्षेपण।

(क) वर्तमान के **प्रत्यक्ष चित्रण** द्वारा विवेच्य लेखकों ने ऐतिहासिक स्थितियों का चित्रण करते समय एक दम ऐतिहासिक झटका लगाते हुए वर्तमान अथवा निकट अतीत के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो निश्चित रूप से एक कलात्मक त्रुटि है।

(ख) लेखक के युग का भारतीय मध्य युगों में **अप्रत्यक्ष प्रक्षेपण** इन लेखकों की एक कलात्मक उपलब्धि है। यहाँ पुनरुत्थानवादी हिन्दू धारणा, सनातन हिन्दू धर्म परक धारणाएँ एवं मान्यताएँ मध्य युगों में प्रक्षेपित की गई है।

इस प्रकार इस खण्ड में हमने ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखकों के युग के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रतिबिम्बन का अध्ययन किया है।

छठे खण्ड में हमने विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टियों एवं जीवनदर्शन का अध्ययन किया है। यहाँ विवेच्य लेखकों की हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्रीयता, नारी, दास प्रथा तथा अन्य जीवन-दृष्टियों एवं जीवन दर्शनों के सम्बन्ध में अध्ययन किया गया है तथा इन प्रवृत्तियों की विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में खोज की गई है।

सब मिलाकर इस अध्याय में हमने प्रेमचन्द पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रयुक्त इतिहास धारणाओं तथा उपन्यासों के शिल्प चक्रों का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया है। ऐसा करते हुए प्राचीन भारतीय इतिहास चेतना तथा आधुनिक इतिहास-दर्शनों एवं थ्यूरियों के सन्दर्भ में ही ऐतिहासिक उपन्यासों की ऐतिहासिकता तथा उपन्यास-कला का अध्ययन किया है।

छठा अध्याय

छठे अध्याय में 'ऐतिहासिक रोमांसकार तथा ऐतिहासिक रोमांसों ने रोमांस के अनेकरूपेण सम्बन्ध' में प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक रोमांसों का अध्ययन इन सात खण्डों में किया गया है—

ऐतिहासिक रोमांसों में (क) रोमांस के तत्त्व, (ख) रोमांटिकता, (ग) अश्लीलता, (घ) कामुकता, (ङ) साम्प्रदायिकता (च) तिलिस्म एवं जासूसी तथा (छ) इतिहास की स्थिति।

पहले खण्ड 'ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांस के तत्त्व' में विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में (i) बौद्धिकता विरोध, शास्त्रीयता विरोध, समकालीनता विरोध व जादू टोना, (ii) रोमांसों का नायक, (iii) वातावरण एवं पात्र तथा (iv) कथावस्तु (प्लाट) में साहसिकता पूर्ण कार्य, नायक व खलनायक मे प्रबल संघर्ष नायक के दैवी कार्यों तथा मिथक निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ हमने ऐतिहासिक रोमांसों में हीरोइक रोमांसों, गोथिक रोमांसों तथा पिक्चरेस्क आदि के तत्त्वों के सम्मिलन की प्रक्रिया का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

दूसरे खण्ड 'ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांटिकता' में प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक रोमांसों में (i) रोमांटिक नायक : आदर्श प्रेमी (ii) प्रेम शृंगार एवं मधुचर्या (iii) नायक नायिका : आदर्शों के लिए बलिदान तथा (iv) कवित्वपूर्ण वातावरण निर्माण आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विवेच्य रोमांसकार भारतीय मध्ययुगों की पुनर्रचना की प्रक्रिया में जिस रोमांटिक वृत्ति को उभारते हैं वह वास्तव में इनकी अपनी भावनाओं तथा विचारों का अतीत में प्रक्षेपण है। इनकी सहायता से वे मध्य युगों की अधिक सजीव एवं बुद्धिगम्य पुनर्रचना करने में सफल हुए हैं।

.तीसरे खण्ड में ऐतिहासिक रोमांसों में **अश्लीलता** का विभिन्न धरातलों पर अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन (i) नग्नता एवं खुला सम्भोग (ii) अनैतिकता (iii) अचारित्रिकता तथा (iv) निर्वसनता एवं नग्नता आदि तत्त्वों के अन्तर्गत किया गया है। यहाँ विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों मे इन तत्त्वों की खोज की गई है तथा अश्लीलता एवं कामुकता की भिन्नताओं का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि अश्लीलता के अन्यान्य तत्त्वों को मुसलमान शासकों के माध्यम से उभारा गया है, जो सामान्यतः खलनायक एवं अतिदानवीय रूपों में चित्रित किए गए हैं।

चौथे खण्ड में ऐतिहासिक रोमांसों में **कामुकता** का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसे तीन भागों में विभाजित किया है–(i) कामुकता की धारणा, (ii) कामुकता की रोमांसिक धारणा में उदात्तीकरण तथा (iii) नखशिख वर्णन। मध्ययुगों में कामुकता की धारणा सामान्यतः शूरता की धारणा से जुड़ कर उभरती है जिनके कलात्मक सम्मिलन से रोमांसिक वातावरण एवं पर्यावरण की उत्पत्ति में महायता प्राप्त होती है। कामुकता का वर्णन एवं चित्रण सामान्यतः राजपूत एवं हिन्दू शासकों एवं राजकुमारियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, इससे उसमें उदात्तीकरण तथा नैतिक जिम्मेदारी के भाव अधिक महत्त्वपूर्ण रूप में उभरते हैं। गोस्वामी जी ने अपने ऐतिहासिक रोमांसों में नायिकाओं के नखशिख का चित्रण अलग परिच्छेदों में प्रस्तुत किया है।

पाँचवें खण्ड में ऐतिहासिक रोमांसों में **साम्प्रदायिकता** का अध्ययन दो उपखण्डों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—(i) हिन्दू धर्म के प्रति प्रतिवद्ध, तथा (ii) हिन्दू पावन एवं श्रेष्ठ, मुसलमान अशुद्ध एवं हीन सामान्यतः लगभग सभी विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकार सनातन हिन्दू धर्म की अन्यान्य धारणाओं एवं मान्यताओं के प्रति व्यक्तिगत रूप से प्रतिवद्ध थे। इसी के परिणामस्वरूप वे मध्य युगीन मुसलमान शासकों तथा उनके आश्रित मुसलमान इतिहासकारों के प्रति गहरी घृणा तथा पूर्वाग्रह से युक्त रवैया अपनाते हैं। अपनी कृतियों में वे हिन्दू नायकों को अत्यन्त पावन, शूरवीर एवं श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करते है जबकि मुसलमान शासकों को खलनायक, अतिदानवीय, अशुद्ध एवं हीन रूप में चित्रित करते हैं।

छठे खण्ड में ऐतिहासिक रोमांसों में **तिलिस्म एवं जासूसी** के अन्यान्य तत्त्वों एवं उपकरणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मध्ययुगों में इन तत्त्वों का चित्रण करते समय इनमें कई परिवर्तन आ गए हैं जिनकी ओर संकेत कर दिया गया है। वास्तव में तिलिस्म एवं जासूसी प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास का इतना महत्त्वपूर्ण तत्त्व वन चुका था कि उसके प्रयोग के विना उपन्यास को अपूर्ण समझा जाता था। तिलिस्म तथा ऐयारी के वर्णनों के माध्यम से भय, आतंक एवं रोमांच के भावों की उत्पत्ति में भी सहायता प्राप्त हुई है।

सातवें खण्ड में ऐतिहासिक रोमांसों में **इतिहास की स्थिति** का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सामान्यतः विवेच्य रोमांमकार ऐतिहासिक घटनाओं एवं प्रसंगों का वर्णन उपोद्घात अथवा निवेदन में कर देते थे और फिर रोमांसिक प्रवृत्तियों एवं रोमांस के तत्वों के चित्रण में उलझ जाते हैं। कई बार संक्षेप में ऐतिहासिक घटना का चित्रण करने के पश्चात् वे अन्य विषयों को मुख्य रूप से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार सामान्यतः ऐतिहासिक रोमांसों में इतिहास एक आरोपित तत्त्व अनुभव होता है।

इस अध्याय में हमने कुल मिला कर ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांस के अनेकरूपेण सम्बन्धों तथा रोमांटिकता के तत्त्वों का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

सातवाँ अध्याय

इम अध्याय में हमने (क) ऐतिहासिक रोमांमों में **वैयक्तिक तत्वों की अतिरंजना पूर्ण अभिव्यक्ति** तथा (ख) ऐतिहासिक रोमांसों मे **तथ्यों तथा घटनाओं की अवर्नमिल विकृतियों** का अध्ययन किया है। पहले खण्ड मे लेखक के समकालीन युग के विशिष्ट तत्त्व तथा ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्वों की अतिरंजित अभिव्यक्ति का अध्ययन किया है।

नारी उद्धार तथा **समाज सुधार** लेखकों का समकालीन विचार है जिसे उन्होंने मध्ययुगों में प्रक्षेपित किया है। यद्यपि विवेच्य लेखक सनातन हिन्दू धर्म के परम्परावादी स्वरूप के पुनः स्थापना के पक्ष मे थे,परन्तु इस प्रकार की सुधार भावना को वे आंशिक रूप से स्वीकार करते है।

(iii) **ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्वों में** हमने **स्वयंवर एवं दिग्विजय** तथा हिन्दू मुस्लिम सघर्ष के इतिहास विचारो की विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसो में खोज की है। हमने यह पाया है कि यद्यपि स्वयवर एवं दिग्विजय के इतिहास विचार अपने पूर्ण अर्थों मे यहाँ उभर कर नहीं आ सके, परन्तु मध्ययुगों मे हिन्दू राजाओं के कम सख्या मे होने पर भी प्रवल शत्रु पर विजय अथवा उनका सामना करना दिग्विजय का आभाम देता है। इसी प्रकार नायक एव नायिका का विवाह से पहले मिलना तथा एक दूमरे का चुनाव करना स्वयवर की इतिहास धारणा का आभास देता है।

शूरता तथा कामुकता की मध्ययुगीन धारणाएँ विवेच्य ऐतिहासिक रोमांमों मे प्रचुर मात्रा मे उभर कर आई है। वहाँ इनका स्वरूप अतिमानवीयता तथा अति दानवीयता की इनिहाम धारणा के साथ जुड़ कर उभरा है। शूरता तथा कामुकता दोनों ही मध्ययुगों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के अभिन्न अंगों के रूप मे चित्रित किए गए है।

अन्त पुर, राज्य सभा, युद्धस्थल,मंत्रणा गृह तथा आश्रम भी ऐतिहासिक काल के वे विशिष्ट तत्त्व हैं जिनकी मैंने विवेच्य ऐतिहासिक रोमांमों मे खोज की है।

मैंने यह पाया है कि लगभग सभी ऐतिहासिक रोमांस लेखक भारतीय मध्ययुगों का पुनर्निर्माण करते समय अन्तःपुर तथा राजसभाओं को शासकों के व्यक्तिगत मामलों तथा अति कामुकता पूर्ण कार्यों के स्थल के रूप में प्रस्तुत करते हैं यहाँ युद्ध स्थल अत्यन्त भयानक तथा आश्रम अत्यन्त शांति पूर्ण वातावरण को उभारते हैं।

इस प्रकार इस खण्ड में हमने ऐतिहासिक रोमांसों में लेखकों के उनके समकालीन युग के तथा ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्वों का सैद्धांतिक विवेचन किया है।

इस अध्याय के दूसरे खण्ड में हमने (ख) ऐतिहासिक रोमांसों में तथ्यों तथा घटनाओं की अवर्नमिल विकृतियों का अध्ययन किया है। यह अवर्नमिल विकृतियाँ अलौकिक, असम्भव तथा रोमांस के अन्यान्य तत्त्वों के ऐतिहासिक रोमांसों में मिलने से उभरी हैं।

यहाँ हमने (i) सैक्स (ii) जाति (iii) घटनाओं एवं (iv) युग के आधार पर तथ्यों एवं घटनाओं की विकृतियों का अध्ययन किया है। (i) **सैक्स** के अन्तर्गत मुसलमान शाहज़ादियों की ख्वाबगाहें तथा राजपूतों के अन्तःपुर उनकी विलास लीलाएँ तथा मधुचर्या का विकृत रूप में वर्णन, पतन दिखाते-दिखाते पतन का भोग करने की प्रवृत्ति विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में सेक्स के चित्रण को विकृत कर डालती है। लगभग यही स्थिति प्रेम तथा नारी के संबंध में ऐतिहासिक रोमांसों में उभर कर आई है।

(ii) **जाति** के आधार पर भी तथ्यों तथा घटनाओं को अवर्नमिल रूप से विकृत करके प्रस्तुत किया गया है। यहाँ हिन्दू पात्रों को बहुत अच्छा तथा मुसलमान पात्रों को बहुत बुरा प्रदर्शित किया गया है।

(iii) **घटनाओं** तथा (iv) **युग** के संबंध में भी विवेच्य लेखकों की धारणाएँ अवर्नमिल रूप धारण कर लेती हैं। इन ऐतिहासिक रोमांसों में हिन्दुओं के कार्यों को बलिदान के रूप में तथा मुसलमानों के कार्यों को छल कपट एवं यौनाचार के रूप में उभारा गया है इसके साथ ही वे प्राचीन हिन्दू स्वर्ण युग को आदर्श युग के रूप में तथा वर्तमान युग अर्थात् मुसलमान युग को बेहद भ्रष्ट रूप में प्रस्तुत करते है।

हमारा विचार है कि मध्य युगों के अध्ययन के समय विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में आध्यात्म तथा यौन दो परस्पर नितांत विपरीत ध्रुवों के परिणाम स्वरूप धर्म एवं काम के दो ध्रुवों के बीच की अन्तर्प्रक्रिया के माध्यम से ही इस समस्या को भली भाँति समझा जा सकता है।

आठवाँ अध्याय

कला पक्ष—इस अध्याय में हमने हिन्दी में प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस धारा की (क) उपन्यास कला (ख) चरित्रांकन के तकनीक तथा (ग) भाषा और शैली का अध्ययन किया है।

इस अध्याय में हमने विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों तथा ऐतिहासिक रोमांसकारों द्वारा उनकी कृतियों में **अतीत के चरित्रों को चित्रित** करने के लिए प्रयुक्त तकनीकों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। भारतीय मध्ययुगों का पुनःप्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण करते समय इन लेखकों ने कई पात्रों की उद्भावनाएँ की हैं जो अतीत को सजीव रूप से प्रस्तुत करने में सहायक बन पड़े हैं।

सामान्यतः, सभी लेखकों ने (i) **पात्रों की दो विरोधी कोटियों** को उभारा है, जो एक दूसरे के विपरीत ऐतिहासिक एवं औपन्यासिक घटनाओं की प्रक्रिया में क्रियाशील रहती हैं। सामान्यतः हिन्दू नायक तथा मुसलमान खलनायकों को उपन्यास के कैन्वस पर उभारने का प्रयत्न किया गया है। उनमें प्रवृत्तिगत एवं चरित्रगत विभिन्नताएँ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। उनके आपस के भयानक संघर्ष तथा अन्त में न्यायपूर्ण एवं सत्यव्रती नायक की विजय लगभग सभी विवेच्य कृतियों में प्रस्तुत की गई हैं।

पात्रों की इन परस्पर विरोधी कोटियों के साथ-साथ विवेच्य कृतियों में (ii) **पात्र-द्वय की तकनीक** का भी प्रयोग किया गया है। इस तकनीक के अनुरूप सामान्यतः विवेच्य कृतियों में नायक के साथ उसके सहायक, सखा अथवा मंत्री के रूप में एक पुरुष पात्र तथा नायिका के साथ उसकी किसी सखी आदि की उद्भावना की गई है। नायक तथा नायिका के सहयोगी पात्र अत्यन्त स्वामी भक्ति पूर्ण ढंग से एक दूसरे की अन्यान्य कार्यों में सहायता करते हैं तथा अन्त में नायक नायिका के मिलन एवं विवाह के साथ-साथ इन सहयोगी पात्रों के मिलन का भी चित्रण किया गया है।

(iii) **चरित्रों में विरोधाभास** अथवा **पात्रों के मानस के अन्तर्द्वन्द्वों** को प्रस्तुत करने की तकनीक यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व के हिन्दी उपन्यास में अपने पूर्ण रूप में नहीं उभर पाई थी फिर भी **'लालचीन'**, **'वीर मणि'** तथा **'पानीपत'** आदि उपन्यासों में चरित्र चित्रण की इस तकनीक के उच्च स्तरीय एवं कलात्मक उदाहरण देखने को मिले हैं।

चरित्र चित्रण की इन तकनीकों के साथ-साथ विवेच्य लेखकों ने अपनी कृतियों में (iv) **चरित्रांकन की सीधी अथवा वर्णनात्मक शैली** का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार का चरित्र चित्रण कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त सामान्य स्तर का समझा जाता है।

इन ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में पात्रों के व्यक्तिगत चरित्रांकन के साथ-साथ (v) **सामूहिक चित्रांकन** भी किए गए हैं। विवेच्य लेखकों ने सेनाओं, मन्दिरों एवं जातियों आदि के सम्बन्ध में इस प्रकार की तकनीक के माध्यम से उनके सामूहिक चरित्र को उभारने का प्रयत्न किया है।

(vi) **घटनाओं, कथोपकथनों** तथा अन्य पात्रों के माध्यम से चरित्रों का उद्घाटन करने की तकनीक का भी विवेच्य लेखकों ने अपनी कृतियों में प्रयोग किया

है इस प्रकार पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में स्वयं कोई वक्तव्य देने के स्थान पर उसे घटनाओं, कथोपकथनों तथा पात्रों के माध्यम से उभारते हैं। चरित्र चित्रण की यह तकनीक भी कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि की मानी जाती है जिसे विवेच्य लेखकों ने पर्याप्त सफलता पूर्ण ढंग से प्रयुक्त किया है।

हमारा विचार है कि प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में चरित्र चित्रण की अन्यान्य तकनीकों के प्रयोग द्वारा विवेच्यलेखक पात्रों के चरित्रों को सफलता पूर्वक उभार पाए हैं, जो एक कलात्मक उपलब्धि है।

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासों की (ङ) **भाषा शैली** के सम्बन्ध में सामान्यतः विद्वानों का दृष्टिकोण पूर्वाग्रही है। परन्तु मैंने इस खण्ड में विवेच्य लेखकों की भाषा शैली के सम्बन्ध में उनकी उपलब्धियों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

(i) ऐतिहासिक **पात्रों द्वारा अपने पद, जाति एवं स्तर के अनुरूप** भाषा का प्रयोग किया जाना विवेच्य लेखकों की एक महत्त्वपूर्ण कलात्मक उपलब्धि है जिसे हमने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

विवेच्य कृतियों में (ii) **अलंकृत एवं काव्यात्मक भाषा के प्रयोगों** द्वारा नारी सौन्दर्य एवं प्रकृति चित्रणों का प्रस्तुतिकरण किया जाना भी एक कलात्मक उपलब्धि है जिसका हमने सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

(iii) **मुहावरे, लोकोक्तियाँ,** भाषा को अधिक स्पष्ट एवं बुद्धिगम्य बनाती हैं। विवेच्य लेखकों द्वारा इस प्रकार की वाक्यांश परक भाषा के प्रयोगों के अध्ययन द्वारा मैंने विवेच्य कृतियों के इस गुण की ओर संकेत किया है।

प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांसों में (iv) **संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषा** के शब्दों के प्रयोग से यद्यपि कई स्थानों पर भाषा सम्बन्धी समस्याएँ उभरी हैं,परन्तु कुल मिला कर इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग द्वारा लेखक अपने विषय को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर पाए है।

(v) **ऐतिहासिक स्थितियों के अनुकूल भाषा** का प्रयोग भी विवेच्य लेखकों की एक कलात्मक उपलब्धि है जिसकी ओर हमने सकेत किया है।

ग्रामीण भाषा के प्रयोगों द्वारा जहाँ एक ओर विवेच्य लेखको ने भारतीय मध्ययुगो के पुनःप्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण अधिक सजीव ढंग से किया है, वहीं उपन्यासों में आंचलिकता के रंगों को भी उभारने में सहायता मिली है।

हमारे विचार से कुछ दोषों के होते हुए भी इन ऐतिहासिक कृतियों की भाषा अपने आप में एक कलात्मक उपलब्धि है।

सामान्यतः इन कृतियों में लेखकों ने कथावाचकों जैसी शैली का प्रयोग किया है वे एक किस्सागो के समान पाठकों को सम्बोधित करते हुए भारतीय अतीत की कहानी कहते हैं।

इस प्रकार इस अध्याय में, प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास-रोमांस धारा के कथा-शिल्प, चरित्रांकन तथा भाषा शैली का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

इसलिए अन्त में, अत्यन्त विनय के साथ मैं कह सकता हूँ कि इस अध्ययन के लिए मैंने सविस्तार मूल सामग्री का सीधा उपयोग किया है और इसी वजह से अनेकानेक पूर्वाग्रहों तथा भ्रांतियों का एक महाजाल विच्छिन्न किया जा सका है। यही संतोष है कि मुझे अपने लक्ष्य में पर्याप्त सफलता मिली है, यद्यपि मेरी तथा विषय की अनेक सीमाएँ भी रही है। यह निश्चित है कि इस विषय क्षेत्र में अभी भी विपुल संभावनाएँ विद्यमान हैं।

आभार एवं समापन—मैं अपने निदेशक डॉ० रमेश कुन्तल 'मेघ' के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की। उनके निर्देशन के अतिरिक्त उनके निजी पुस्तकालय से भी मुझे सहायता मिली है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान तथा डॉ० मैथिलीप्रसाद के प्रति भी आभारी हूँ। समय-समय पर उनकी सम्मति तथा सहायता मुझे प्राप्त होती रही है।

शोध प्रबन्ध के निर्माण में मैं श्री इन्द्रजीत कोछड़ तथा अमरजीत कोछड़ के सहयोग के लिए उनका आभारी हूँ। इस कार्य में मैं रिसर्च पब्लिकेशन्स के श्री पी० जैन का भी आभारी हूँ।

पाठ्य सामग्री के अध्ययन सकलन के लिए मैं पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय तथा आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी, के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता के प्रति भी अनुगृहीत हूँ।

टंकन की प्रतियों का संशोधन पूरी तरह कर लिया गया है, फिर भी, मशीन तथा मानवीय सामर्थ्य की सीमाएँ होती हैं। इनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मेरी यह सहज अभिलाषा है कि यह शोध प्रबन्ध प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमासों के सम्बन्ध में फैली भ्रांतियों का निराकरण करने के साथ-साथ उनकी बेहतर समझ मे सहायक सिद्ध हो। मेरा विनम्र विश्वास है कि इस क्षेत्र मे यह शोध प्रबन्ध पहला सर्वांगीण प्रयास माना जाएगा।

—गुरदीपसिंह खुल्लर

1 इतिहास दर्शन एवं इतिहास लेखन के रूप-प्रतिरूप

इतिहास लेखन शास्त्र (Historiography), इतिहासवाद (Historicism) तथा इतिहास दर्शन (Philosophy of History) के संयोग के फलीभूत होता है।

इस उपक्रम में इतिहास या तो तथ्यरूप में लिखा जाता रहा है, अथवा कलारूप में। हमारे अध्ययन के वृत्त में कलारूप में इतिहास लेखन आता है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास धारा में प्रेमचन्द से पहले इसके 'ऐतिहासिक रोमाँस' तथा 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक भेद-प्रभेद उन्मीलित हो रहे थे। इन दोनों भेदों में भारत के उन पुरातन कवि-इतिहासकारों, पौराणिक-आख्यानकारों तथा सूतमागध-गायकों का भी योगायोग रहा है जिन्हें हमने कलारूप इतिहासकारों की परम्परा में समाविष्ट कर लिया है।

अतः यह अध्याय इस पूरे शोध-प्रबंध को दर्शन और कला के सभी मूलाधारों के संदर्भ में प्रस्तुत करने का समारंभ है।

1. इतिहास के दो रूप : तथ्य रूप इतिहास

(क) **आधुनिक इतिहास क्या है**—उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञानों की अनुपम उन्नति, तथा तद्‌युगीन वैज्ञानिक विचारधारा के प्रबल वेग प्रभावित होकर इतिहास-दार्शनिक तथा इतिहास-वेत्ता[1] इतिहास ज्ञान को विज्ञान की एक शाखा बनाने तथा इतिहास-खोज की प्रक्रिया में वैज्ञानिक पद्धति व विचारों के प्रयोग को आवश्यक समझने लगे। रैंके (1830 का दशक) एक्टन (1890 का दशक) जे. बी. बरी तथा ग्रैडग्रिंड (Gradgrind) इस विचारधारा के मुख्य इतिहास-वेत्ता हैं।

(ख) **वैज्ञानिक ढंग एवं विचार**—इस काल खण्ड में वैज्ञानिक पद्धति से ज्ञान प्राप्त करने की परम्परा अत्यन्त लोकप्रिय तथा सशक्त हो गई थी। इसी के प्रभावस्वरूप इसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत न होने पर भी इतिहास को विज्ञान की एक

1. Hans Meyerhoff के मतानुसार 'इतिहासकार नहीं प्रत्युत इतिहास दार्शनिक अपने अनुशासनों की वैज्ञानिक प्रतिष्ठा (Scientific respectability) का पक्ष लेते हैं, जो अपने वस्तुपरकवादी इतिहास की संभाव्यता के लिए सशक्त बहस करते हैं।"—"The Philosophy of History in our Time", Page 16.

शाखा स्वीकार किया गया तथा मानव-अतीत का अध्ययन, प्रकृति के अध्ययन के समान किया जाने लगा।

इस प्रकार के इतिहासकारों को हेतुवादी, सिद्धान्तवादी (Academic), वस्तुपरकवादी (Objectivist) तथा आलोचना-परक आदि संज्ञाएँ दी गई हैं।

हेतुवादी एवं सिद्धान्तवादी इतिहासकार अतीत का 'ठीक वैसा ही प्रस्तुतिकरण करने जैसा कि वास्तव में घटित हुआ था' का दावा करते हैं। वे दस्तावेजों को 'सर्वोपरि' मानते है। उनकी कार्य प्रणाली में दस्तावेजों का सूक्ष्म परीक्षण, उनका सत्यापन, उन पर विचार तथा विश्लेषण करना और उनको सुव्यवस्थित करना आदि मुख्य है।[1] इतिहास को विज्ञान बनाने के दावे के अनुरूप हेतुवादियों ने तथ्यों की यथारूपता तथा सर्वोच्च स्थिति की धारणा को अधिक सशक्त बनाया।[2] वे तथ्यों को मूल में रखने के पश्चात् उन्हीं में से निर्णय लेने के पक्ष मे हैं।

इस प्रकार तथ्यरूप इतिहास आधुनिक वैज्ञानिक इतिहास के रूप में उभरता है। ए० एल० राऊस के मतानुसार, 'आज आधुनिक इतिहास, जिसे नया इतिहास भी कहा जा सकता है, जैसा कि वह पुराने इतिहास से भिन्न है। नया इतिहास उनके द्वारा लिखा जाएगा जिनके विश्वास के अनुसार इतिहास 'सरल साहित्य' (Bells letter) का एक विभाग तथा केवल एक रमणीय, शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक विवरण ही नहीं विज्ञान की एक शाखा है।'[3] तथ्यरूप अथवा वैज्ञानिक इतिहास में साक्ष्य की परीक्षा करने व निर्णय लेते समय प्रत्येक बिन्दु पर सतर्क रूप से एकदम ठीक रहना तथा पक्षपात के भय से निरन्तर सतर्क रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह इतिहास-लेखन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। इस प्रकार, इस इतिहास रूप के अन्तर्गत दस्तावेजों, शिलालेखों, खण्डहरों, अवशेषों, भौगोलिक स्थितियों तथा अतीत के राजनीतिक मामलों का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है।

हिन्दी के आरंभिक उपन्यासकार भी नए-नए पुरातात्विक उद्घाटनों से प्रेरित और मुग्ध होकर ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना, रोमाँस और रोमाँच से अतिरंजित करके प्रस्तुत करने की नई विधा का प्रतिविन्यास करने लगे।

(ग) परिभाषाएँ—मनुष्य के जीवन के अतीत की घटनाएँ, स्वयं तथा उन घटनाओं का विवरण दोनों ही इतिहास हैं। क्रोचे के मतानुसार "समस्त इतिहास समसामयिक इतिहास है। अर्थात् हम अतीत का ज्ञान केवल साक्ष्यों द्वारा प्राप्त करते है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान में उपलब्ध है।"[4] इस प्रकार तथ्य जो इतिहासकार की अनिवार्य सामग्री का निर्माण करते है, इतिहास-लेखन का अनिवार्य घटक होने पर भी स्वयं इतिहास नहीं है।

1. The Problem of History and Historiography, P-41.
2 What is History : E.H. Carr, P-9.
3. "The Use of History" : A L. Rouse, P 86.
4. Ibid, P-44.

ई. एच. कार के मतानुसार, "इतिहास, इतिहासकार तथा उसके तथ्यों के अन्तर्सम्बन्धों की निरन्तर प्रक्रिया है, वर्तमान व अतीत के बीच समाप्त न होने वाला संवाद है।"[1] अतीत केवल वर्तमान के प्रकाश में ही बुद्धिगम्य होता है, तथा हम वर्तमान को भी केवल अतीत के ही प्रकाश में समझ सकते हैं। अतीत के समाज को समझना तथा वर्तमान के समाज पर अधिक अधिकार पाना, इतिहास का दोहरा कार्य है।[2] इस प्रकार इतिहास समाज में मनुष्य के अतीत की खोज की प्रक्रिया के साथ-साथ अतीत के निरंतर प्रवाह में वर्तमान का स्पष्टीकरण करने की प्रक्रिया है।

मार्क्स ने इतिहास का संबंध मनुष्य व उसकी परिस्थितियों से जोड़ कर उसके क्षितिज का विस्तार किया है। 'इतिहास की भौतिकवादी धारणा' में मार्क्स ने कहा था 'परिस्थितियाँ मनुष्य का उतना ही निर्माण करती हैं, जितना कि मनुष्य परिस्थितियों का।' उनके मतानुसार इतिहास सदैव एक 'बाह्य मानक' के साथ लिखा जाता है।[3] जीवन का वास्तविक पुनःनिर्माण इतिहास होता है, जबकि इतिहास स्वयं सामान्य जीवन से अलग किया गया प्रतीत होता है। इस प्रकार मनुष्य के प्रकृति व इतिहास से संबंध भिन्न-भिन्न हैं, जो इतिहास व प्रकृति में प्रतिपक्षता स्थापित करते हैं। इसलिए इतिहास को समझने के लिए मनुष्य की प्रकृति, प्राकृतिक-विज्ञान तथा उद्योग को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

कॉलिंगवुड के विपरीत मार्क्स ने यह धारणा स्थापित की कि व्यक्ति निष्क्रिय एजेण्ट ही नहीं होते प्रत्युत वे स्वयं अपने इतिहास का निर्माण करते हैं,[4] परन्तु उनके कार्य कतिपय परिस्थितियों के अधीन होते हैं। काल के प्रवाह में परिस्थितियों तथा उद्योगों के स्वरूप एवं पद्धतियाँ बदलने से मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों में अनिवार्य परिवर्तन आते हैं। इसलिए 'नैतिकता, धर्म, ब्रह्मशास्त्र तथा अन्य आदर्श और इनसे सम्बन्धित अन्य चेतनाएँ अपना स्वायत्त अस्तित्व नहीं रखतीं, उनका कोई इतिहास नहीं, मनुष्य ने अपना विकास करते समय उन्हें भी परिवर्तित किया।[5] इतिहास के प्रति मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद वाले दृष्टिकोण को 'इतिहास की भौतिकवादी धारणा' अथवा 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' कहा जा सकता है।[6]

बर्कहार्ट ने कहा था, 'इतिहास एक युग का वह अभिलेख है, जिसे अन्य युग में लिपिबद्ध करने के योग्य समझा जाए।'[7] इसके अन्तर्गत इतिहासकार द्वारा चुनाव की प्रक्रिया तथा नैतिक निर्णय लेने की अप्रत्यक्ष स्वीकृति आ जाती है।

1. E.H. Carr, "What is History", P. 30.
2. E H. Carr, "What is History", P. 55.
3. Theories of History, Edt. By Patrick Gardiner, P. 127.
4. The Use of History, Page 124.
5. Materialistic Conception of History by Marx, quoted from "Theories of History", P. 129.
6. विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक यथार्थवाद का अध्ययन चौथे अध्याय के आरम्भ में किया जाएगा।
7. What is History, P. 54.

इसलिए इतिहास का अध्ययन करने तथा उसकी आलोचना करने के लिए कुछ नियमों अथवा पद्धतियों का निर्माण किया जा सकता है। इतिहास की घटनाएँ अनुपम (Unique) होने पर भी 'साधारणीकरण' के कार्य-क्षेत्र में लाई जा सकती हैं।[1]

2. कार्य-सिद्धान्त

(क) निश्चयवाद एवं स्वेच्छा :—वैज्ञानिक पद्धति से मानवीय अतीत अथवा तथ्य रूप इतिहास का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम निश्चयवाद तथा मनुष्य की स्वच्छन्द इच्छा की समस्या उभरती है। यथार्थ रूप में घटित घटनाएँ, जो घटित होने के पश्चात् एकदम अतीत में सरक जाती हैं—और इस प्रकार तथ्य व निर्णय बन जाती हैं, उनके घटित होने के मूल में जो नियामक शक्ति अथवा प्रेरणा कार्य करती है, उसका स्वरूप निर्धारित करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी सूत्र इतिहास-दार्शनिकों तथा इतिहास वेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं—निश्चयवाद तथा मनुष्य की स्वेच्छा।

पैट्रिक गार्डीनर के मतानुसार प्रोफैसर इसाया बर्लिन ने सर्वप्रथम इस दृष्टिकोण पर विचार किया कि मानवीय इतिहास में जो कुछ भी घटित होता है, वह पूर्ण रूपेण अथवा अधिकाँशतः मनुष्यों के नियंत्रण से बाहर की बातों द्वारा 'निश्चित' होता है।[2] **ई. एच. कार** के अनुसार, 'निश्चयवाद' एक विश्वास के समान है कि जो कुछ भी घटित होता है उसके एक या अनेक कारण होते हैं, तथा वह भिन्न रूप से घटित नहीं हो सकता जब तक कि कारण अथवा कारणों में कोई भिन्नता न आजाए।[3] **एस. डब्ल्यू. अलेकजेण्डर** के विचारानुसार, निश्चयवाद का अर्थ है, स्वीकृत तथ्य (Data) वे जो भी है, जो कुछ भी घटित होता है, निश्चित रूप से घटित होता है तथा वह भिन्न नहीं हो सकता था। यह सिद्ध करने को कि यह (अर्थात् भिन्न) हो सकता था, का अर्थ है कि यह केवल तभी हो सकता था यदि स्वीकृत तथ्य (Data) भिन्न होते।[4]

इस प्रकार निश्चयवाद का इतिहास दर्शन, घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया में मनुष्य की स्वेच्छा अथवा इच्छा शक्ति की प्रेरणा को अनिवार्य मानने

1. देखिए—Philosophy of History by W. H. Dray, P. 15-17.
यहाँ इतिहास की हेतुवादी धारणा में साधारणीकरण के सम्बन्ध में हेम्पल, माइकेल स्काइवेन, निकोलस रेस्टर तथा ऐलन डोनागन आदि के मत दिए गए हैं। वे हेतुवादी होने पर भी साधारणीकरण को सीमित रूप से स्वीकारने के पक्ष में हैं।
2. Patrick Gardiner : Introductory note to Issiah Berlin's essay in "Theories of History", Page 319-320.
3. E H Carr : "What is History", Page 93.
4. S.W. Alexander in 'Essay Presented to Earnst Cassires,' 1936, P. 18. reprinted in 'What is History' : E.H. Carr, P. 93.

वाले इतिहास विचार के प्रतिपक्षी (Antithesis) के रूप में उभरता है। मार्क्स ने मनुष्य को इतिहास में एक सक्रिय एजेंट के रूप में स्वीकार करके भी उसे परिस्थितियों के अधीन माना है। मनुष्य स्वेच्छा से परिस्थितियाँ न तो चुन सकते है, न उनका निर्माण कर सकते । ए. एल. राउस के अनुसार, निश्चयवाद तथा स्वच्छन्द इच्छा एक मौलिक प्रश्न है, जो प्रत्येक युग तथा मानसिक वातावरण में किसी ने किसी रूप में उभरता है, चाहे ब्रह्म-शास्त्रीय चिन्तन के युगों में इसे सामान्यतः ब्रह्म-शास्त्रीय रंग ही दिया गया है।[1] विशेष रूप से हीगेल के आध्यात्मिक इतिहास दर्शन (Metaphysical) के संदर्भ में निश्चयवाद ऐतिहासिक घटनाओं को एक रहस्यवादी स्वरूप प्रदान करता है।

इसाया बर्लिन के मतानुसार यदि निश्चयवाद मानवीय व्यवहार की वैध थ्योरी हैं, तो घटनाओं के घटित होने के वास्तविक तथ्यों तथा अन्य संभावनाओं में किसी अन्तर की परिकल्पना उचित नहीं होगी। 'हम सदैव निर्धारित स्थितियों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हैं कि एक दत्त घटना की सर्वोत्तम व्याख्या, उसकी पूर्व घटना के अवश्यंभावी प्रभाव स्वरूप मनुष्य के नियंत्रण से बाहर की, अनिवार्य स्थिति में घटित हुई है, अथवा इसके विपरीत मनुष्य की स्वच्छन्द इच्छा के कारण।'[2]

इस समस्या को समूह एवं व्यक्ति के इतिहास के प्रवाह में योगदान की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। मानवीय अतीत का अध्ययन करते समय इतिहासकार के सम्मुख मुख्य रूप से अध्ययन की दो इकाइयाँ होती हैं। वह उनमें से किसी का भी प्रयोग करता है। पहली इकाई है राष्ट्र, जाति, वर्ग, जन समूह अथवा कबीले की तथा दूसरी इकाई है—एक व्यक्ति की।

समूहों की प्रतिक्रिया लगभग निश्चित सिद्धान्तों द्वारा परिचालित होती है। समूहों की प्रतिक्रियाओं में सादृश्य ढूंढ़ा जा सकता है। 'समूहों की स्थिति में वैज्ञानिक विश्लेषण सर्वाधिक उपयुक्त है।'[3] समूहों में व्यक्तियों की अधिक संख्या होने के कारण उनके सम्बन्ध में हमारा ज्ञान पर्याप्त सीमा तक निश्चित होता है। किसी भी राष्ट्र अथवा जाति के अस्तित्व अथवा स्वतंत्रता को हानि पहुँचाए जाने पर वे लगभग एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे।

इतिहास मे हम समूहों के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं संवैधानिक स्थितियों तथा राज्यों के सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले कार्यों से सम्बन्धित हैं न कि उनके 'घरेलू कार्यों' से।

1. A L. Rouse : ' The Use of History", P–102.
2. Issiah Berlin 'Determinism, Relativism and Historical Judgment' essay taken from "Historical Inevitability" Oxford University Press, Reprinted in "Theories of History", Page 321.
3. A.L. Rouse : "The Use of History", P. 103.

यदि निश्चित परिस्थितियों के प्रवाह को इतिहास की धारा का नियामक स्वीकार कर लिया जाए, तो मनुष्य की इच्छा शक्ति एवं प्रेरणा का ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रभाव तथा मनुष्य की प्रकृति व परिस्थितियों पर अद्वितीय विजय की धारणा पर आघात पहुँचता है। ई. एच. कार के मतानुसार, सामाजिक-वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री अथवा इतिहासकार को मानवीय व्यवहार के उस स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिसमें उसकी इच्छा-शक्ति (Will) सक्रिय है, यह उसे यह निश्चित करने के लिए करना चाहिए कि मनुष्यों ने जो उसके अध्ययन के उद्देश्य हैं, उस कार्य को करने की इच्छा क्यों की, जो कि उन्होंने किये।[1]

'स्वच्छन्द इच्छा' के इतिहास-विचार के अनुसार व्यक्ति स्वयं ही अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करके ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह का निर्माण करते हैं। इसाया बर्लिन इस पर रोक लगाने के पक्ष में है।[2] अतीत में मनुष्यों द्वारा अन्यान्य संभावित कार्यों में से किसी एक का चुनाव करने की प्रक्रिया को समझने के लिए तथा उसके अध्ययन की वैधता सिद्ध करने पर, 'स्वच्छन्द इच्छा' का इतिहास-विचार आधारित है। मनुष्य की स्वच्छन्द इच्छा तथा चुनाव करने की मानसिक प्रक्रिया का स्पष्टीकरण कार्य-परिणाम की थ्योरी से नहीं किया जा सकता, जैसा कि भौतिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों में संभव है।

मनुष्य स्वयं अपनी जाति, देश, प्रान्त, परिवार, स्कूल, धार्मिक संस्थाओं तथा मित्रों के संपर्क तथा सानिध्य से उत्पन्न तथा प्रभावित सामाजिक निर्मिति है।[3] उसके चरित्र तथा व्यवहार के विविध पक्षों का अध्ययन इन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के संदर्भ में किया जा सकता है, चाहे उसमें कतिपय नितान्त विशिष्टताएँ भी क्यों न हों। इस रूप में व्यक्ति के कार्यों को एक सीमा तक निश्चित किया जा सकता है।

अतीत के व्यक्तियों के एक समूह अथवा जाति के अंश के रूप में अध्ययन करने में मनोविज्ञान की सहायता ली जा सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी के उदार व्यक्तिवादी के रूप में फ्रायड मनुष्य को सामाजिक एकक के स्थान पर प्राणी शास्त्रीय एकक के रूप में लेता था। वह सामाजिक परिवेश को ऐतिहासिक रूप से निश्चित स्थिति के रूप में लेता था न कि मनुष्य द्वारा स्वयं निर्माण एवं परिवर्तन की निरन्तर प्रक्रिया के रूप में। मनोविज्ञान की सहायता से ऐतिहासिक व्यक्तियों के कार्यों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। ई. एच. कार को इस पर आपत्ति

1. E H. Car : "What is History".
2. रुचि के अनुसार कार्य अर्थात् जो पूर्णरूपेण अपनी पूर्ववर्ती घटनाओं अथवा प्रकृति तथा व्यक्तियों या वस्तुओं की स्वाभाविक विशेषताओं के कारण घटित नहीं हुआ, की धारणा को कोई अर्थ देना चाहिए अन्यथा इनका उत्तरदायित्व किस पर डालेंगे। "Theories of History", P. 321.
3. A.L. Rouse : "The Use of History", P. 105.

है ।[1] उनके मतानुसार मनोवैज्ञानिक अध्ययन सूक्ष्म परीक्षा द्वारा ही हो सकता है, जो कि मृत व्यक्तियों के साथ नहीं की जा सकती । हमारा मत है कि यद्यपि मनोविज्ञान की प्रक्रिया में सूक्ष्म परीक्षा आवश्यक है, परन्तु इतिहास लेखन की प्रक्रिया में सामान्य ज्ञान परक मनोविज्ञान का प्रयोग, ऐतिहासिक व्यक्तियों के विचारों एवं कार्यों की व्याख्या करते समय उसे अधिक से अधिक सुस्पष्ट एवं बुद्धिगम्य बनाने में सहायक सिद्ध होता है । इसी प्रकार मानवीय अतीत के अध्ययन में व्यक्तियों की इच्छा अथवा प्रेरणा शक्ति के अधिकाधिक स्पष्टीकरण के लिए मनोविज्ञान सहायक सिद्ध होता है ।

समूहों का व्यवहार तथा व्यक्ति की स्वच्छन्द इच्छा दोनों ही इतिहास अध्ययन में एक दूसरे की पूरक के रूप में उभरती हैं । 'तथ्य यह है कि सभी मानवीय क्रियाएँ स्वच्छन्द तथा निश्चित दोनों ही होती हैं, यह उन पर विचार करने वाले के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है ।[2] व्यक्ति अपनी समस्त विशिष्टताओं के होते हुए भी एक समूह, राष्ट्र अथवा जाति का अंग होता है. इसलिए इनके पारस्परिक सम्बन्ध इतने जटिल एवं दृढ़ होते हैं कि उन्हें अलग-अलग करने से अन्यान्य समस्याएँ उभरेंगी । इतिहासकार को व्यक्ति एवं समूह को एक दूसरे के पूरक के रूप में देखना चाहिए, इसी से वह ऐतिहासिक सत्य को पा सकेगा ।

मार्क्स क्रोचे—इतिहास दर्शन के क्षेत्र में मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा क्रोचे की इतिहासवाद की व्याख्या अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रक्रिया हीगल से प्राप्त की थी, तो क्रोचे का इतिहासवाद, 1880 व 1890 के दशकों में जर्मनी के इतिहास दार्शनिक डाइल्थी आदि से अपने मतों एवं सिद्धान्तों के लिए प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करता था । इतिहास चेतना की निरंतर प्रक्रिया के धारा प्रवाह को अधिक स्पष्ट करने के लिए लेनिन तथा कॉलिंगवुड की इतिहास थ्योरी का भी अध्ययन करना उपयुक्त है, जो मार्क्स व क्रोचे के इतिहास-विचारों को आगे बढ़ाते हैं, अथवा उनकी नवीन एवं अधिक उपयुक्त व्याख्या करते हैं ।

मार्क्स इतिहास में महान पुरुषों अथवा नेताओं के स्थान पर समूहों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वीकार करता था । 'समूहों के प्रधान महत्त्व के स्वीकृत सिद्धान्त (Assumption) ने ही इतिहास में विकासशील सिद्धान्त लागू करना संभव हो सका है ।'[3] इतिहास को 'मनुष्यों के स्वभाव. प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग' की सहायता के बिना नहीं समझा जा सकता । भौतिकवाद की इतिहास धारणा के अनुसार 'सामाजिक निर्माण मनुष्यों को कुछ निश्चित सम्बन्धों में बाँधते हैं, यह उनकी स्वेच्छा से स्वतन्त्र होता है । निर्माण के ये सम्बन्ध उनकी निर्माण की

1. E.H Carr : "What is History". P. 139.
2. "What is History" – E.H. Carr. P. 95.
3. "The Use of History" – A.L. Rouse, P. 119.

भौतिक शक्तियों की एक निश्चित स्थिति की ओर संकेत करते है ।[1] निर्माण के यह सम्वन्ध समाज के आर्थिक ढाँचे का निर्माण करते है । यह वास्तविक आधार है जिस पर विधान तथा राजनीति का निर्माण होता है जिनके अनुरूप निश्चित सामाजिक चेतना उभरती है । इसी कारण आर्थिक आधार बदलने पर सारा मामाजिक ढाँचा तीव्रता से बदलता है ।

मार्क्स नैतिकता, धर्म, ब्रह्मशास्त्र, आदर्श और राजनैतिक विचार तथा मनन के स्वायत्त अस्तित्व को नकारते है । इनका महत्त्व उसी सीमा तक स्वीकारा जा सकता है, जब कि वे निर्माण के तथ्यों को प्रतिबिंवित करें, अथवा आर्थिक हितों की टकराहट का प्रदर्शन करें । उन्हें ऐतिहासिक शक्तियों के रूप में स्वीकार करना त्रुटिपूर्ण होगा ।

मार्क्स, क्रोचे व कालिगवुड के विचारों के विरुद्ध यह मत व्यक्त करते है कि 'मनुष्य स्वयं अपने इतिहास का निर्माण करते है, परन्तु यह वे अपनी इच्छानुसार, अथवा स्वयं चुनी हुई परिस्थितियों में नही करते ।'[2] कालिंगवुड, जो इतिहास में सक्रिय एजेंट के विचारों के इतिहासकार के मानस में पुनः निर्माण को अत्यन्त आवश्यक स्वीकारते है, मार्क्स का यह मत उसके विपरीत है । मार्क्स के अनुसार मनुष्य इतिहास मे केवल एजेंट ही नही हैं, वे स्वयं अपनी स्थिति व समस्याओं के सम्वन्ध में सोचते है, उनके अपने विचार ही उनके कार्यों को गति देते है । 'इतिहास स्वयं कुछ नही करता, यह न तो अतुल सम्पदा रखता है, न ही लड़ाइयाँ लड़ता है । मनुष्य, वास्तविक मनुष्य ही सव कुछ करते है, जिनके पास सम्पदा थी और जिन्होंने लड़ाइयाँ लड़ी थी ।'[3]

मार्क्स ने विश्व के युक्तिमूलक (Rational) नियमों द्वारा परिचालित होने की धारणा का प्रतिपादन किया । अपने अन्तिम विश्लेपण में वह इतिहास के अर्थ मे तीन वस्तुओं को लेता था, जो एक दूसरे से पृथक् नही की जा सकती, और जो न्याय सगत (Coherent) तथा युक्ति मूलक इकाई है : प्रयोजन (Objective) तथा मुख्यतः आर्थिक नियमों के अनुसार घटनाओं की गति, द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया द्वारा स्थिति के अनुरूप विकास, श्रेणी-संघर्प के रूप में, अनुरूप क्रिया, जो क्रान्ति के अभ्यास (Practice) तथा थ्योरी (Theory) में एकरूपता स्थापित कर उन्हें एकत्रित करता है ।[4]

19वी शताब्दी के अन्तिम दशकों में जर्मनी में एक नवीन विचारधारा की उत्पत्ति हुई, जिसमें 'इतिहास में तथ्यों की प्राथमिकता तथा स्वायत्त सत्ता के सिद्धान्त

1. "The Materialistic conception of History" — Marx, reprinted in "Theories of History", Page 131.
2. The Use of History, A.L. Rouse, P. 124.
3. "What is History", E.H. Carr, Page 49.
4. "What is History", E.H. Carr, Page 136.

पर आक्षेप किया गया। इस सिद्धान्त को जर्मनी में हिस्टोरिमस अथवा 'इतिहासवाद' तथा ब्रिटेन में 'ऐतिहासिक पद्धति' कहा गया। डाइल्थी इस मत का मुख्य प्रतिपादक था। इस शताब्दि के आरम्भ में यह विचार जर्मनी से इटली में लोकप्रिय हुआ, और क्रोचे ने जर्मनी के मूल सिद्धान्तों के आधार पर एक इतिहास दर्शन उपस्थित किया।

डाइल्थी के इतिहास विचार को प्रो० हाजिस ने संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया था : इतिहास ज्ञान द्वारा चेतना के इस विस्तार के परिणाम निरर्थक हैं। प्रत्येक युग जीवन के प्रति अपने रवैए को निश्चित सिद्धान्तों व व्यवहार द्वारा व्यक्त करता है, जो कि उस युग में नितान्त वैध समझे जाते हैं। इतिहासकार अपने अध्ययन के प्रत्येक युग से इन मूल्यों को ढूंढता है, परन्तु वह यह भी चीह्नता है कि वे हर युग में वदलते हैं, सदैव ही पूर्णता का दावा करने पर भी, वदली परिस्थितियाँ सदैव वदले सिद्धान्तों का निर्माण करती हैं, जो ऐतिहासिक रूप से सापेक्ष्य हैं।.........इतिहास इन सब विचारों की सापेक्ष्यता का अभिलेख करते हुए अपनी सापेक्ष्यता की ओर इंगित करता है, तथा हमें उस स्थिति में लाता है जो इतिहासवाद अथवा ऐतिहासिक सापेक्ष्यवाद के रूप में जाना जाता है।'[1]

इतिहासवाद के अनुसार सर्वप्रथम अंधविश्वासों से व भ्रांतियों से छुटकारा पाना और फिर मानवीय जीवन की वहुरूप क्षमता का उद्‌घाटन किया जाना चाहिए। इतिहास-लेखन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम ऐतिहासिक तथ्यों को खोजना, उनकी परीक्षा करना, फिर आवश्यक तथ्यों का चयन करके उन्हें व्यवस्थित करना आदि सम्मिलित हैं। इतिहासवादियों के अनुसार इतिहास-लेखन की यह प्रक्रिया चित्रोपम प्रक्रिया के समान नहीं है क्योंकि फिर वह एक यांत्रिक-प्रक्रिया वन जाएगी। यहाँ हमें तथ्यों का मूल्यांकन, इतिहासकार के युग के प्रमुख जीवन दर्शन के आधार पर करना चाहिए।[2]

क्रोचे के मतानुसार, 'इतिहासवाद (इतिहास का विज्ञान), वैज्ञानिक रूप से कहते हुए यह सुनिश्चित करता है कि जीवन एवं वास्तविकता इतिहास, केवल इतिहास ही है। इस निश्चयीकरण मे अनिवार्य उपसिद्धान्त उस सिद्धान्त का निषेध करना है जिसके अनुसार वास्तविकता को उच्चतर (Super) इतिहास तथा इतिहास अर्थात् विचारों व मूल्यों का विश्व तथा उन्हें प्रतिविम्वित करने वाले निम्न विश्व मे विभाजित किया जा सकता है।[3] इस प्रकार क्रोचे घटनाओं तथा विचारों,

1. "The Use of History", P. 143-44.
2. देखिए—"Philosopby of History", W. H. Dray, Page 37-38.
यहाँ लेखक ने इतिहास-लेखन में मूल्यों के सम्वन्ध में विस्तार से वर्णन किया है, जिसमें हेतुवादियों व सापेक्ष्य वादियों की परस्पर विरोधी दलीलें प्रस्तुत की गई हैं।
3. "The Use of History", A L. Rouse, P. 145.

दोनों को ही इतिहास प्रवाह के भाग के रूप मे स्वीकारते है। इतिहास-लेखन का स्थापक (Constitutive) तत्त्व निर्णय श्रेणियों की व्यवस्था है।

क्रोचे समस्त इतिहास को 'समकालीन इतिहास' के रूप मे देखता था। यह प्रत्येक ऐतिहासिक निर्णय की प्रायोगिक आवश्यकता है जो सारे इतिहास को 'समकालीन इतिहास' बना देती है, क्योंकि, इस प्रकार चाहे कितने भी प्राचीन युग की घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया जाए, वास्तव में इतिहास वर्तमान आवश्यकताओ तथा वर्तमान परिस्थितियो के संदर्भ में होता है, जहाँ वह घटनाएँ गूंजती (Vibrate) है।[1] क्रोचे का तात्पर्य यह है कि अतीत की समस्त घटनाएँ एवं तथ्य वर्तमान मे उपलब्ध साधनों द्वारा ही जानी व समझी जाती है। उन तथ्यों के साथ मूल्य जोड़ना, मूल्यो के आधार पर उनका चुनाव करना तथा उन्हें व्यवस्थित करना यॉत्रिक प्रक्रिया न होकर इतिहासकार के इतिहास दर्शन तथा प्रतिभा की उपज है। इतिहास की घटनाएँ तथा विचार दोनों ही इतिहास के अभिन्न अग है। इसलिए वास्तविकता का विभाजन कर उनमे अन्तर नही किया जा सकता।

मार्क्स व क्रोचे दोनों ही विश्व को प्रकृति के युक्ति संगत (एवं न्यायपूर्ण) नियमों द्वारा परिचालित होने की धारणा के पोषक थे। दोनो ही विभिन्न युगो के मनुष्यों के व्यवहार, उनकी परम्पराओ तथा मान्यताओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने के पक्ष मे थे। किन्तु मार्क्स पदार्थवादी और क्रोचे भाववादी नीव पर खड़े थे।

क्रोचे इतिहास-लेखन मे महान व्यक्ति अथवा सक्रिय ऐतिहासिक एजेंट के उन कार्यो तथा विचारो को महत्त्वपूर्ण स्वीकार करता था जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे वर्तमान साधनो द्वारा साक्ष्यॉकित हो, इसके विपरीत मार्क्स समूहों के महत्त्व से ही इतिहास मे विकासशील सिद्धान्तो के औचित्य पर बल देता था। उसके मतानुसार मनुष्य केवल एजेंट ही न होकर स्वयं अपनी स्थितियों तथा समस्याओं के सम्बन्ध मे विचार करते है, परन्तु यह सब कार्य वे अपनी इच्छित अथवा चुनी हुई परिस्थितियों मे नही करते।

क्रोचे ने ऐतिहासिक तथ्यो के साथ मूल्य जोड़ने, उन्हीं के आधार पर उनका चुनाव करने तथा उन्हें व्यवस्थित करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जबकि मार्क्स सारे नैतिक, धार्मिक, ब्रह्मशास्त्रीय, सामाजिक तथा राजनैतिक मूल्यों की स्वायत्तता का अस्वीकार करके उन्हे आर्थिक स्थितियों तथा निर्माण के सम्बन्धो के अधीन मानते थे।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार इन इतिहास-धारणाओं से ऑशिक रूप मे ही प्रभावित हुए है।

1. B. Croce : "History as the Story of Liberty". Eng, Trans., 1941, P. 19.

3. लेखन के रूप

(क) घटनाएँ एवं समस्याएँ—तथ्यरूप इतिहास-लेखन की प्रक्रिया में, घटनाएँ स्वयं तथा उनके घटित होने से उत्पन्न समस्याओं, फिर उन समस्याओं के समाधान के लिए किए गए प्रयत्नों के फलस्वरूप किए गए कार्यों का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करना तथा उन सब क्रियाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना प्राथमिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार तथ्यरूप इतिहास की घटनाएँ एवं समस्याएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटक हैं।

भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों की घटनाओं की प्रकृति के विपरीत ऐतिहासिक घटनाएँ विशिष्ट, अनुपम, अद्भुत नितान्त विशेष तथा पुनः अघटनीय होती हैं। किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं के वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने पर आकशाट जैसे विचारक को आपत्ति है।

यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं के संबंध में आकशाट की यह धारणा स्वतः सिद्ध है तथापि तथ्यरूप इतिहास का विशाल प्रासाद घटनाओं की आधारशिला पर ही निर्मित किया जाता है। घटित होने के पश्चात् घटनाएँ तथ्य बन जाती हैं। सामान्यतः सभी इतिहासकारों के सम्मुख लगभग एक से ही तथ्य होते हैं। ये तथ्य इतिहास के मेरुदण्ड का निर्माण करते हैं। ई० एच० कार के मतानुसार 'यह तथाकथित मौलिक तथ्य, जो सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं, सामान्यतः उनकी सामग्री से सम्बन्धित हैं न कि स्वयं इतिहास हैं।'[1] मौलिक तथ्यों में से भी इतिहासकार को चुनाव करना होता है, और इस चुनाव की प्रक्रिया में इतिहासकार तथा अभिलेखकर्त्ता दोनों के व्यक्तित्व एवं वैयक्तिक रुचि तथा रुझान का आ जाना स्वाभाविक है, इससे इतिहास के हेतुवादी चरित्र की धारणा पर आघात पहुँचता है।

ऐतिहासिक घटनाओं तथा विज्ञान-सम्बन्धी घटनाओं में मौलिक अंतर है। वैज्ञानिक जिन घटनाओं का अध्ययन करता है, वह नियंत्रित परिस्थितियों में घटित होती हैं तथा वे पुनः घटनीय होती हैं, ऐतिहासिक घटनाएँ अनियंत्रित तथा पुनः घटनीय होती हैं। वैज्ञानिक घटनाओं का चरित्र सामान्य व साधारणीकृत होता है, अर्थात् निश्चित तत्त्वों को एक निश्चित प्रक्रिया से गुजारने पर निश्चित परिणामों तक पहुँचा जा सकता है, जबकि ऐतिहासिक घटनाएँ परिवर्तनशील, नितान्त वैयक्तिक, विशिष्ट, स्वपरिस्थितिवश व देशकाल आबद्ध होती हैं। उनके घटित होने का कोई सार्वलौकिक नियम नहीं होता। कार्य-कारण सम्बन्धों की शृंखला में बद्ध ऐतिहासिक घटनाएँ निश्चित परिवेश में निश्चित परिस्थिति वश घटित होती हैं, जो दोबारा कभी उपस्थित नहीं की जा सकती। इस प्रकार इतिहासकार वैज्ञानिक के समान अपने विषय के मेरुदण्ड अर्थात् घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया का पर्यवेक्षण नहीं

1. E.H. Carr : "What is History", P. 11.

कर सकता। कालिंगवुड ने इसके लिए कल्पना-मूलक सर्जनात्मक विचारों की परिकल्पना की है जिसके अनुसार इतिहास लिखते समय इतिहासकार अपने मानस में ऐतिहासिक एजेंट द्वारा किए गए कार्यो तथा उसके निर्णयों की प्रक्रिया का पुनः निर्माण कर सकता है।

ऐतिहासिक घटनाओं का मानव जीवन से अटूट सम्बन्ध है। 'इतिहास को न तो जीवन से दूर किया जा सकता है, न वह है, क्योंकि यह अध्ययन की जाने वाली घटना में जीवन की समस्त क्रियाशीलता को देखता है।........ऐतिहासिक ज्ञान में, घटना का आलोचनात्मक ढंग से अध्ययन तथा प्रतिबिंबन किया जाता है। चाहे घटनाएँ इतिहास की ओर विभाजित न की जाने वाली इकाइयाँ है, वे ऐतिहासिक बिम्ब को सीमित नहीं करतीं।'[1]

तथ्यरूप इतिहास में घटनाओं को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से अतीत का अत्यन्त प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रामाणिक अतीत ज्ञान के लिए, दस्तावेजों, भौगोलिक स्थितियों तथा अतीत की राजनैतिक घटनाओं की सहायता ली जाती है। हमें ध्यान रखना होगा कि केवल घटनाएँ इतिहास का निर्माण नही कर पाएंगी यदि वे किसी विशिष्ट इतिहास-दर्शन से अनुप्राणित नहीं की जाएँगी।

(ख) व्यक्तिपात्र बनाम समूह—इतिहास में हम सदैव मानव जीवन के अतीत का अध्ययन करते है, और वहाँ हमें सदैव मानवीय प्रकृति को दृष्टिगत रखना होता है। कालिंगवुड के मतानुसार मनुष्यों के नितान्त वैयक्तिक कार्य अर्थात् 'पाशविक प्रवृत्तियाँ भावनात्मक इच्छाएँ, तथा क्षुधाएँ गैर-ऐतिहासिक[2] हैं। इस प्रकार मनुष्यों की वह सामाजिक क्रियाएँ ही इतिहासकार के कार्यक्षेत्र में आती है जिनकी बनावट मे मनुष्य अपनी प्राकृतिक भावनाओं तथा क्षुधाओं को शाँत करते है। भारतीय संदर्भ में विवाह आदि इसके उत्तम उदाहरण है।

व्यक्ति अपने परिवेश की उत्पत्ति तथा अपने समाज की निर्मिति है, यद्यपि व्यक्तियों के व्यवहार, उनकी कामनाओं, विजयों तथा पराजयों की खोज इतिहासकार के अध्ययन का विषय है तथापि समूहों का अध्ययन अपेक्षाकृत अधिक निश्चित एवं वैज्ञानिक होगा।

समूहों के अध्ययन में लोगों का लोक-व्यवहार ही खोज का विषय होता है। उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा संवैधानिक क्रियाकलापों का अध्ययन एवं विवरण तथ्यरूप इतिहास-निर्माण की प्रक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ए० एल० राउस के मतानुसार "समूहों के लोक-व्यवहार के क्षेत्र में सर्वोत्तम

1. V.V. Joshi : The Problem of History and Historiography, P 102.
2. R G. Collingwood : "Idea of History", Reprinted in Theories of History, P. 253.

सामान्यीकरण किया जा सकता है तथा किसी सीमा तक उसके सम्बन्ध में भविष्यवाणी भी की जा सकती है।"[1]

तथ्यरूप इतिहास में व्यक्ति तथा समूह को एक दूसरे के पूरक के रूप में लिया जाता है। किन्हीं परिस्थितियों में व्यक्ति समूह का ही एक अंग होता है। एक्टन के मतानुसार, "मनुष्य के इतिहास के प्रति दृष्टिकोण में किसी व्यक्ति के चरित्र में रुचि लेने से अधिक त्रुटिपूर्ण व बुरा और किसी कारण से नहीं होता।"[2] इसी प्रकार ई० एच० कार के मतानुसार, 'एक मनुष्य का एक व्यक्ति के रूप में दृष्टिकोण इतना भ्रांतिकर नहीं है, न ही उसे एक वर्ग के सदस्य के रूप में देखना जितना भ्रान्तिकर उन दोनों स्थितियों में अन्तर ढूँढना।'[3]

वर्ग के सदस्य के रूप में व्यक्ति, तथा व्यक्तियों का सामूहिक रूप दोनों ही ऐतिहासिक खोज का विषय होते हैं। इतिहास-लेखन की प्रक्रिया में इतिहास-लेखक महान राजनैतिक, धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक नेताओं के जीवन चरित्र, उनके सामाजिक एवं लोक-व्यवहार के उन कार्यों पर अपना अध्ययन केन्द्रित करता है जिन्होंने विश्व, राष्ट्र अथवा समुदाय के विकास अथवा पतन को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया हो। महान व्यक्तियों के जीवन की वह क्रियाएँ ऐतिहासिक महत्त्व की नहीं होती, जो सक्रिय राजनीति अथवा लोकहित को प्रभावित न करें। इसीलिए कालिंगवुड जीवनी को न केवल गैर-ऐतिहासिक ही, प्रत्युत्त प्रति-ऐतिहासिक कहता है।[4]

समूहों के व्यवहार, उनकी रुचियाँ तथा प्रतिक्रियाएँ भी इतिहास-खोज का अनिवार्य अंग हैं। अतीत के जन परिणामों ने एक निश्चित कार्य ही क्यों किया ? जन-समूहों ने अन्यों की अपेक्षा एक निश्चित रूप से घटित ऐतिहासिक घटना में ही क्यों रुचि ली ? अथवा हमारे पूर्वजों ने विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं ? अतीत के समूहों के यह व्यवहार, रुचियाँ अथवा प्रतिक्रियाएँ—इनकी दिशाएँ तथा स्वरूप इतिहास-खोज का विषय है।

तथ्यरूप इतिहासकार इन समस्याओं का समाधान लगभग वैज्ञानिक पद्धति से, निश्चित दस्तावेजों, भौगोलिक स्थितियों तथा राजनीतिक मामलों के सम्बन्ध में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर करता है। ऐसा करते हुए वह व्यक्ति व समूहों का अलग-अलग तथा एक साथ अध्ययन करता है।

1. A.L. Rouse : "Use of History", P. 104.
2. Acton: "Home and Foreign Review", January 1863, P. 219, reprinted in "What is History," P. 47.
3. E H. Carr : "What is History", P. 47.
4. Collingwood : "Idea of History", reprinted in Theories of History, P. 258.

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं ऐतिहासिक रोमाँसकारों ने भारतीय मध्ययुगों के सामंती जीवन का अध्ययन करते समय सामान्यत: महान व्यक्तियों में, सामान्य जनों की अपेक्षा अधिक रुचि प्रदर्शित की है।

(ग) **जनता बनाम राष्ट्र**—बीसवीं शताब्दी में इतिहास-लेखन के क्षेत्र में अनेक पद्धतियों एवं दृष्टियों से मानवीय अतीत का अध्ययन किया गया है। इनका मुख्य आधार मनुष्य-जीवन के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक एवं साँस्कृतिक पक्ष है। इनमें से किसी एक पक्ष को केन्द्र में स्थापित कर मानवीय अतीत का अध्ययन किया जाता है,[1] परन्तु सदैव प्रत्येक स्थिति में जनता तथा राष्ट्र ही इतिहास-लेखक की खोज का विषय होते हैं। इतिहास को जनताओं तथा राष्ट्रों के उत्थान व पतन की गाथा भी कहा गया है।

तथ्यरूप इतिहास-लेखन में व्यतीत युग की जनता के जीवनयापन के साधन, उनकी सामाजिक, धार्मिक एवं साँस्कृतिक रुढ़ियों, परम्पराओं एवं संस्थाओं का अध्ययन उपलब्ध साक्ष्यों तथा पुरातत्व सामग्री के आधार पर किया जाता है। सभ्यताओं के उत्थान व पतन की ऐतिहासिक खोज के लिए वह अनुभववादी (एम्पायरीकल) पद्धति के प्रतिपादक हैं। जनता अथवा मानवीय अतीत की सभ्यताओं का तथ्यपूर्ण अध्ययन जो एक निश्चित एवं विशिष्ट इतिहास दर्शन से अनुप्राणित हो—आधुनिक इतिहास-अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की धारणा उत्पन्न हुई और प्रथम महायुद्ध के ठीक पहले राष्ट्रीयता की भावना अपने चरित्र की चरम पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। दो महायुद्धों के पश्चात् राष्ट्रीयता की भावना का स्वरूप बदला और संयुक्त राष्ट्रसंघ अस्तित्व में आया।

तथ्यरूप इतिहासकार अपनी खोज की प्रक्रिया में किसी एक राष्ट्र अथवा देश को एक इकाई के रूप में स्वीकार करता है। गम्भीर रूप से कूटनीतिक-इतिहास का अध्ययन इसी शताब्दी में आरम्भ हुआ, परन्तु दो महायुद्धों ने इसे अधिक गति दी है।[2] राष्ट्रों, व उनकी जनताओं का विविध-पक्षी अध्ययन तथ्यरूप इतिहास का मुख्य अंग है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार एक आदर्श हिन्दू राष्ट्र की धारणा के पोषक थे। वे बिखरे हुए हिन्दू रजवाड़ों को एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में स्वीकार करते हैं।

1. देखिए-H.P.R. Finberg "Approaches to History" इस पुस्तक में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सार्वलौकिक (Universal) स्थानीय तथा भौगोलिक स्थितियों में से किसी भी एक को केन्द्रबिन्दु बना कर इतिहास-लेखन के विभिन्न रूपों का अध्ययन किया गया है। [Published by Routled and Kegan Paul, London.]
2. S. T. Bindoff, "Political History", essay printed in "Approaches to History" Edt. by H.P.R. Finberg, P. 9-10.

विशेषतः टाड द्वारा राजस्थान के सभी राज्यों को राष्ट्र की संज्ञा प्रदान करने तथा जे० डी० कनिंघम का सिख राज्य को राष्ट्र कहने[1] का इन पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा।

4. लेखन के दृष्टिकोण

तथ्यरूप इतिहास-लेखन में मुख्यरूप से तथ्य ही इतिहास-निर्माण का मेरुदण्ड होते हैं और इतिहासकार मुख्यतः लिखित दस्तावेजों, अतीत की भौगोलिक स्थितियों के उपलब्ध अभिलेखों तथा प्राचीन युग की राजनीतिक घटनाओं से अपने तथ्य प्राप्त करते हैं।

इतिहास-लेखन के क्षेत्र में तथ्यों के निरपेक्ष तथा निर्वैयक्तिक होने की समस्या पर हेतुवादियों (Positivists) तथा सापेक्ष्यवादियों के विवाद की एक लम्बी एवं निरन्तर शृंखला है। हेतुवादी अथवा सिद्धाँतवादी (Academic) इतिहासकार तथ्यों की 'ऑथारिटी' कहते हैं, और उनकी खोज, उनका निश्चयन तथा उनकी व्यवस्था को इतिहास-अध्ययन का चरम-लक्ष्य स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत सापेक्ष्यवादी इतिहास-वेत्ता सामान्य एवं ऐतिहासिक तथ्यों में अन्तर स्थापित करते हुए इतिहासकार द्वारा तथ्यों के चुनाव की प्रक्रिया पर दबाव डालते हुए तथ्यों की सापेक्ष्यता पर जोर देते हैं। तथ्यों का निर्वैयक्तिक चरित्र उसी समय नष्ट हो जाता है, जबकि इतिहासकार उसे अभिलेख करने के योग्य समझता है।[2] यही कारण है कि इतिहासकार हमें वह सब कुछ नहीं बताता, जो कि वह जानता है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों का अतीत के प्रति मध्ययुगीन दृष्टिकोण था जो सामन्ती राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था तथा परम्परा एवं रूढ़ि-परक धार्मिक विश्वासों द्वारा प्रभावित था। वे सनातन हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों एवं

1 "The Medieval Indian State and Some British Historians".—J.S. Grewal, Page 4. "James Tod, for example, thought of the Rajputs as a "Nation" within the broad frame of Hindu society, and the political organisation of the Rajputs for him was an expression of their national life at a given time in their history ... Similarly, J. D. Cunningham, who treated the Sikhs as a "nation", thought of their political organisation as best suited to their national needs".

राजपूत इतिहास से सम्बद्ध अन्यान्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर पतन' पर जिसमें सिख राष्ट्र की धारणा को स्वीकारा गया है, यह उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है।

2. ई० एच० कार, व्हाट इज़ हिस्ट्री का आवरण पृष्ठ, साधारणतः वही इतिहास के तथ्य होते हैं, जिन्हें इतिहासकार छानबीन के लिए चुनते हैं। लाखों व्यक्तियों ने रुबीकन को पार किया है, परन्तु इतिहासकार हमें बताते हैं कि सीज़र का उसे पार करना महत्त्वपूर्ण था। सारे ऐतिहासिक तथ्य, इतिहासकार के युग के मानकों द्वारा प्रभावित, व्याख्यात्मक चुनावों के फलस्वरूप हमारे सन्मुख आते हैं।

क्रियाकलापों के प्रति प्रतिवद्ध थे और इन्हीं का प्रतिपादन उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

(क) **लिखित दस्तावेज़**—तथ्यरूप इतिहास-वेत्ता लिखित दस्तावेजों को अत्यन्त विश्वसनीय सामग्री के रूप में स्वीकार करते हैं तथा उसे 'अँथारिटी' कहते हैं। ऐतिहासिक खोज की प्रक्रिया में वे दस्तावेज़ों को ही सर्वोपरि स्वीकार कर उनका सत्यापन व मूल्याँकन करने के पश्चात् उन्हें श्रृंखलावद्ध करने के पक्ष में हैं। दस्तावेज़ अतीत के मनुष्यों के विचारों तथा कार्यों के वर्तमान युग में उपलव्ध अवशेष हैं। दस्तावेज़ों की अनुपस्थिति में अतीत की मानवीयता के युगों की नियति सदैव के लिए अज्ञात रहने की होगी।[1] वाइको के मतानुसार 'वास्तव में, दस्तावेज़ में निहित विवरण प्राप्त किए बिना, इतिहास-ज्ञान में कोई प्रगति नहीं की जा सकती, केवल दस्तावेज ही इतिहास विवरण को सुनिश्चित करने, सुधारने तथा समृद्ध करने में सक्षम हैं।' क्रोचे के मतानुसार, 'दस्तावेज़ विश्वसनीय सूचना के प्राथमिक स्रोत है।'[2]

दस्तावेज निश्चित रूप से तथ्यों का ज्ञान एवं विवरण प्राप्त करने के प्राथमिक स्रोत के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु वे केवल दस्तावेज लिखने वाले तथा उनका अभिलेख करने वाले का ही विचार, दृष्टिकोण तथा पक्ष स्पष्ट करता है।[3] इसके अतिरिक्त दस्तावेज़ असंवद्ध तथ्यों का ही प्रामाणिक विवरण उपलव्ध कर पाते हैं, जो कि इतिहासकार की सामग्री है, न कि स्वयं इतिहास। अन्यान्य असंवद्ध एवं विश्रृंखलित तथ्यों को सार्थक एवं दर्शन पूर्ण इतिहास का रूप प्रदान करने के लिए विश्लेषणात्मक अध्ययन एवं संपादन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार दस्तावेज इतिहास के तथ्यों का साक्ष्याँकन करते है तथा विश्वसनीय सूचनाओं का स्रोत हैं।

पं० वलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' में ऐतिहासिक दस्तावेजों का वहुलता से प्रयोग किया है। 'दरवार' नामक परिच्छेद में इनके अत्यधिक प्रयोग से उपन्यास की कला एवं रोचकता पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(ख) **टोपोग्राफी अर्थात् भौगोलिक अध्ययन**—इतिहास में हम मानवीय क्रिया कलापों की श्रृंखलाओं का कालानुसार अध्ययन करते हैं। इतिहास की घटनाओं पर भूमि तथा उसके अन्य घटक नदियों, पर्वत, सागर, वातावरण तथा कृषि एवं खनिज उर्वरता का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भूमि अथवा भूगोल के

1. Longlois and Seignobos.
2. देखिए—The Problem of History and Historiography, P. 41-42.
3. देखिए—What is History, E.H.Carr, Page 3--4.
   कार ने वेमार (Wiemar) गणराज्य के विदेशमन्त्री द्वारा छोड़े गए दस्तावेज़ों के 300 वक्सों का उनके सचिव द्वारा 600 पृष्ठों की 3 पुस्तकों में संपादन व प्रकाशन का उदाहरण देकर दस्तावेज़ों द्वारा इतिहास खोज की प्रक्रिया की समस्याएँ उद्घाटित की हैं।

रंगमंच पर इतिहास की घटनाओं का नाटक होने की धारणा अत्याधुनिक इतिहास-खोज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भौगोलिक इतिहास अथवा ऐतिहासिक भूगोल का अध्ययन[1] तथ्य रूप इतिहास का महत्त्वपूर्ण अंग है।

महत्त्वपूर्ण नगरों एवं देशों की अतीत में रही भौगोलिक स्थिति उनके घटनाचक्र को उतना ही प्रभावित करती है, जितनी कि उनकी कृषि एवं खनिज उत्पादकों की उर्वरता। ऊँचे पर्वत तथा सागर, नदियाँ तथा बन्दरगाहें भी ऐतिहासिक घटनाओं को विशिष्ट एवं निश्चित दिशा प्रदान करती हैं। भारत पर हिमालय के दर्रों तथा सागर की ओर से आक्रमण के कारणों में भारत की समृद्धि तथा भौगोलिक स्थिति दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए तथ्य रूप इतिहास में तत्युगीन भूगोल तथा भौगोलिक स्थितियों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

(ग) राजनीति—यद्यपि इस शताब्दी के आरम्भ तक यह तथ्य सर्वस्वीकारणीय हो गया था कि इतिहास केवल अतीत की राजनीति ही नहीं है, प्रत्युत इसमें मानवीय समाज, धर्म, संस्कृति, सभ्यता तथा आर्थिक सभी विषय सम्मिलित हैं, परन्तु तथ्य रूप इतिहास में राजनीति तथा इससे सम्बन्धित मामले एवं घटनाएँ मुख्य होती हैं। हीगेल के मतानुसार "केवल वही व्यक्ति हमारे ज्ञान में आते हैं, जो राज्य का निर्माण करते हैं।"[2] गिब्बन "युद्ध तथा लोक मामलों के प्रशासन को इतिहास का मुख्य थीम"[3] स्वीकारने के पक्ष में है। अतीत की राजनीति इतिहास के मेरुदण्ड का निर्माण करती है। यही कारण है कि आज भी विश्व के मानक इतिहास-साहित्य में दो तिहाई भाग राजनीतिक मामलों को तथा एक तिहाई भाग अन्य मानवीय क्रियाकलापों को दिया जाता है।[4] यह इतिहास-लेखन का एक मानक ढाँचा स्वीकारा गया है।

अरस्तू ने कहा था कि "मनुष्य एक राजनीतिक पशु है।" राजनीति आदि युग

1. "Approaches to History" P 127, 156
   यहाँ ऐतिहासिक भूगोल तथा भौगोलिक इतिहास का अध्ययन किया गया है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भौगोलिक स्थितियों का कलात्मक चित्रण किया है। दिल्ली, आगरा, चित्तौड़, माण्डलगढ एवं देवगढ़ आदि की भौगोलिक स्थितियों एवं विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। वीर चूड़ामणि, पानीपत, वीरबाला, जयश्री, रानी दुर्गावती, तथा सौन्दर्य कुसुम व महाराष्ट्र का उदय आदि उपन्यासों में युद्धों का चित्रण करते समय भौगोलिक स्थितियों का चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त भू-चित्रों के माध्यम से भी भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया गया है।
2. "Lectures on the Philosophy of History" (English Trans., 1884) P 40
3. Gibbon, reprinted in "The Problem of History and Historiography" P. 32.
4. देखिये—"Political History" By S. T. Bindoff, "Approaches to History," Edtd. by H. P. R. Finberg, P. 1-12.
   बिडॉफ़ ने इंग्लैण्ड के इतिहास का उदाहरण देकर इतिहास-लेखन में राजनीतिक मामलों का महत्त्व सिद्ध किया है।

से ही मनुष्य के जीवन के लोक पक्ष का एक महत्त्वपूर्ण अंग रही है। इसलिए तथ्यरूप इतिहास में अतीत की राजनीतिक घटनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में मध्ययुगीन भारत के सामन्ती समाज एवं राजनीति को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। सामान्यतः इतिहास-सम्मत राजनीतिक घटनाओं एवं क्रियाकलापों को इन उपन्यासों में कलात्मक ढंग से पुनः प्रस्तुत किया गया है।

(ख) कलारूप इतिहास

(1) इतिहास के कई सामान्य रूप :

ऐसा प्रतीत होता है कि अतीत का मनुष्य के मानस पर एक अपरिवर्तनीय आकर्षण होता है, जो लगभग भावावेगात्मक आकर्षण की सीमा को छूता है। मानस की अतीत की घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ निश्चित पूर्व धारणाएँ होती हैं, जिन्हें वह इतना प्रिय समझता है कि वह उन्हें अधिक समृद्ध तथा प्रामाणिक बनाना चाहता है, क्योंकि अतीत के सम्बन्ध में हमारे विचार जितने प्रामाणिक होंगे, वे उतने ही अधिक आकर्षक बन जाते हैं।

अतीत के प्रति मनुष्य की इन्हीं निश्चित पूर्वधारणाओं तथा उसके मानस पर अतीत के अपरिवर्तनीय वश के फलस्वरूप मनुष्य में अतीत के पुर्ननिर्माण की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल से है।

आदिम मनुष्य के शिकार लड़ाई व बाद में जोतना बीजना आदि व्यवसाय एवं कृत्य यदि वे पर्याप्त रुचि एवं महत्त्व के होते थे, तो डायेनान अथवा धार्मिक कृत्य (Rite) का विषय होते थे।[1] इन्हीं के प्रभाव स्वरूप युद्ध-नृत्य, वर्षा-नृत्य तथा आखेट-नृत्य उपजे, जिन्होंने बाद में धार्मिक कृत्यों का स्वरूप ग्रहण कर लिया। यह अतीत के पुर्ननिर्माण का प्रथम रूप है। जब अतीत के प्रति मनुष्य के मानस की धारणा समृद्ध तथा प्रामाणिक होने लगी तो सर्वप्रथम उसने धार्मिक कथाओं तथा ग्रामीण कथाओं से अभिव्यक्ति प्राप्त की।

मनुष्य एक इतिहास-चेतन पशु है। इतिहास अभिलेख के अन्यान्य कारण तथा स्वरूप हैं, परन्तु ऐतिहासिक रुचि के उदय का प्रथम कारण धार्मिक था। यही कारण है कि असभ्य मानव का प्रत्येक व्यवहार, कार्य, धार्मिक उत्सव तथा विश्वास किसी मिथक, व्यक्ति अथवा किसी अत्यन्त दूरवर्ती घटना से शृंखलित होती है।[2] इस प्रकार मिथक, निजंधर-कथाएँ, ग्रामीण-कथाएँ, साहित्यिक-कथाएँ उपजीं, बढ़ी तथा धार्मिक रूप को प्राप्त हुईं, जो मनुष्य में इतिहास चेतना की आरम्भिक साक्ष्य है।

1. "Ancient Art and Ritual" by Jane Ellen Harrison, Oxford University Press, London, Page 49
2. The Problem of History and Historiography by V. V. Joshi (Kitabistan, Allahabad) P. 14.

19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना के विकास के पश्चात् राष्ट्रीय दृष्टिकोण ने इतिहास-लेखन को प्रभावित किया। विश्व के अन्यान्य राष्ट्रों के परस्पर निकट आने तथा महायुद्धों के बाद की राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों ने इतिहास-लेखन की धारा को नवीन रूप दिया। इस प्रकार, राजनैतिक इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास, विश्व इतिहास, आर्थिक इतिहास, सामाजिक इतिहास तथा स्थानीय इतिहास आदि इतिहास के अन्यान्य सामान्य रूप उपलब्ध होते हैं।

विवेच्य लेखक हिन्दू राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर आधारित इतिहास-धारणा द्वारा प्रभावित थे। यद्यपि वे सक्रिय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन के विरुद्ध नहीं थे तथापि वे अंग्रेजों के हिमायती तथा मुसलमानों के विरोधी थे।

(क) **इतिहास-लेखन का कलारूप**—सामान्यतः "इतिहास का अर्थ, घटनाओं का विवरण तथा विवरण की गई घटनाएँ, इन दोनों को स्वयं में संजोना है।" यदि इतिहास एक विवरण है, तो वह कला बन जाता है, जिसका मूल्य हमारी भावनाओं को प्रभावित करने तथा हमारी सौन्दर्य विवक्षाओं की सन्तुष्टि में निहित होता है, स्वरूप की सुन्दरता और सामग्री की समृद्धि तथा हमारी उचित भावनाओं पर गहन प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सत्य (कम महत्त्वपूर्ण) गौण है।[1] वे घटनाएँ जिनका विवरण किया गया है, इतिहास-लेखन तथा ऐतिहासिक ज्ञान का सिद्धान्त बन जाती हैं।[2]

इस प्रकार यदि स्वयं घटनाएँ इतिहास के तथ्यरूप का निर्माण करती हैं, तो उनका विवरण कलात्मक इतिहास का सृजन करता है क्योंकि इतिहास का विवरण कलात्मक दृष्टि से सौन्दर्यपरक होगा। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले इतिहास साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता था, और इतिहासकार अधिक कलात्मक इतिहास की रचना किया करते थे।

कला—कला मूलतः सौन्दर्यपरक एवं लालित्य पूर्ण होती है। साहित्य के मामले में एक कलाकृति के प्रति सौन्दर्यवादी प्रतिक्रिया पहले आती है, परन्तु ऐतिहासिक आशंसा किसी भी प्रकार इससे (सौन्दर्यवादी प्रतिक्रिया से) टकराती नहीं, प्रत्युत यह उसकी पूरक है तथा उसे पूर्ण बनाती है।[3] इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल के शिलालेखों, दस्तावेजों तथा पुरातात्विक सामग्री पर आधारित तथ्यों का एक कंकाल मात्र होता है। इन सब साक्ष्यों में भी तालमेल स्थापित करना तथा कार्य-कारण शृंखला का निर्माण करना कलात्मक कल्पना तथा व्याख्या के बिना सम्भव नहीं है। इतिहास की खाइयाँ केवल कलात्मक अनुमानों द्वारा ही भरी जा सकती हैं।

1. "The Problem of History and Historiography"—Joshi, P. 11.
2. वही, पृष्ठ 13.
3. "The Use of History" A.L. Rouse, London, P. 52.

इस पर भी इतिहास केवल अनगढ़ अनुमान ही नहीं है। कुछ क्षेत्र ऐसे है जहाँ साक्ष्य की अनुपस्थिति मे हम अनुमान के अतिरिक्त और कुछ नही कर सकते, कुछ अन्य क्षेत्र है जहाँ अनुमान तथा कल्पनात्मक व्याख्या ही उचित टैकनीक है।[1]

ट्रेविलियन के मतानुसार, यदि हम ऐतिहासिक घटनाओं का अन्वेषण (Trace) नितान्त वैज्ञानिक ढंग से करेंगे तो हम करोड़ों अज्ञात लोगों को नहीं ले पाएँगे।[2] जिनकी इतिहास-धारा मे महत्ता एवं योगदान को मार्क्स ने प्रतिपादित किया था।

इतिहास-लेखन के लिए अन्यान्य बौद्धिक सहायताएँ ली जाती है, जो केवल बाह्य ही है, इतिहास की आन्तरिक आत्मा, इसकी प्रतिभा, कहीं और है, यह मनुष्य के जीवन तत्त्व (Spirit) में है, जीवन की लौ में है। उसे केवल कला द्वारा ही उचित रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है।[3] ट्रेविलियन के अनुसार इतिहास अध्ययन का प्रेरक अभिप्राय कलात्मक है। इतिहास विवरण की कला है तथा इसी रूप मे साहित्य का अंग है।[4]

इतिहास के नीरस तथ्यो को यदि कलात्मक ढंग से संयोजित किया जाए, तो इतिहास-लेखन की इस प्रक्रिया में कला एक अनिवार्य तत्त्व होगी। कला कार्य-कारण श्रृंखला तथा साक्ष्यों की अनुपस्थिति में कल्पनात्मक व्याख्या द्वारा इतिहास निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग देती है। कला रूप इतिहास निश्चय ही कला व इतिहास के सम्मिलन का संगम स्थल है।

इस प्रकार "इतिहास-लेखन इतिहास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इतिहास-लेखन कला नही है। यह केवल कलात्मक है। इतिहास जीवन का लेखा-जोखा करने वाला आलोचनात्मक विचार है।"[5]

ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमाँस मानवीय अतीत को कलात्मक रूप से पुनः प्रस्तुत एवं पुनः निर्मित करते है।

(ख) **उपन्यास**—जिस प्रकार इतिहास अतीत की घटनाओं का विवरण देता है, उसी प्रकार उपन्यास भी मानवीय जीवन के विविध पक्षों का कलात्मक उद्घाटन करता है। उपन्यास किसी भी अन्य साहित्यिक विधा की अपेक्षा इतिहास-लेखन के अत्यन्त निकट है। इतिहासकार तथा उपन्यासकार दोनों घटनाओं का क्रमिक वर्णन करते है, स्थितियों का विवरण देते है, उद्देश्य का प्रदर्शन, तथा

1. "The Use of History" By A.L. Rouse, P. 98.
2. "इग्लैण्ड का सामाजिक इतिहास"।
3. "The Use of History," P. 111.
4. "इग्लैण्ड का सामाजिक इतिहास", ट्रेविलियन।
5. "The Problem of History and Historiography," Joshi, P. 104.

चरित्रों का विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार उपन्यास-लेखन व इतिहास-लेखन में अन्यान्य समानताएँ हैं तथा वे एक दूसरे के निकटतम हैं।

निस्सन्देह, उपन्यासकार का चित्र कल्पनापरक होता है, परन्तु यह जीवन से नितान्त विमुख नहीं होता। इतिहास-लेखन जो चित्र उपस्थित करता है वह कल्पना-मूलक होता है। उपन्यासकार के कल्पनात्मक चित्र तथा इतिहास लेखक के कल्पना-परक चित्र दोनों के सफल सम्पादन के लिए एक ही सृजनात्मक विवक्षा की आवश्यकता है।[1] दोनों का उद्देश्य अपने-अपने चित्र को एक जीवित इकाई बनाना होता है। इसलिए इतिहास-लेखन में महान कला की सादगी, एकता, स्फूर्ति तथा सीधापन होता है।

कढ़ाई बुनाई करने वाली की तन्तुरचना के समान इतिहासकार की भी अपनी सामग्री के लिए एक भावना होती है। वहाँ मन की सहानुभति, विषय के लिए प्यार तथा ढूंढने व सतर्क रहने की समझ होती है। कविता अथवा बागवानी की तरह अवचेतन मानस का इतिहास लेखन में सहयोग होता है।[2] लगभग यही बात उपन्यास-लेखन की प्रक्रिया में होती है।

इतिहास के पात्र एक महान् उपन्यास के पात्रों के समान ही, अपनी सम्पूर्ण गहनता के साथ उभरते हैं। पात्रों का संघर्ष, उनकी परस्पर पसंदगी और नापसंदगी, प्यार और घृणा, व्यक्ति के भीतर का संघर्ष, उसकी असंगतताएं (अविवेक), विभाजित स्वामिभक्ति या लक्ष्य की प्रायः दुर्बोध जटिलता आदि हमारे जीवन के आश्चर्यजनक उदाहरण जिनमें अधिकांश की रुचिकर घटनावली लोकपटल पर उभरती है। टालस्टॉय के "युद्ध और शाँति" उपन्यास के पात्रों में वास्तविक इतिहास के पात्रों जैसी अपील है।[3] प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में व्रजनन्दन सहाय के "लालचीन", पंडित बलदेवप्रसाद के "पानीपत", किशोरीलाल गोस्वामी के "रज़िया बेगम" के पात्रों पर यह सब धारणाएं अक्षरशः सत्य सिद्ध होती हैं।

"इतिहास तथा उपन्यास के पात्र एक सामूहिक इकाई के अभिन्न अंग के समान एक सुनिश्चित रीति से कार्य करते हैं। यहाँ प्रत्येक पात्र (चरित्र) अन्यों से बंधा हुआ है, प्रत्येक पात्र का हर कार्य सामान्य योजना के अनुसार होता है।[4] कहानी में उनके द्वारा किए गए कार्यों के अतिरिक्त उनके द्वारा किसी अन्य प्रकार के कार्य किए जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

कलारूप इतिहास तथा उपन्यास में इतनी समता होते हुए भी "इतिहास-लेखन, काल तथा स्थान की सीमाओं में दृढ़ता से बद्ध होता है। इतिहास लेखन में

1. "The Problem of History & Historiography" P. 16.
2. "The Use of History"-A. L. Rouse, P. 94.
3. "The Use of History"-A. L. Rouse, P 47.
4. "The Problem of History and Historiography", P. 17-18.

लेखक को अपने निर्णयों, अनुमानों, स्वीकारोक्तियों (एजम्पशंस) तथा विवरणों की सत्यता को वाह्य साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध करना होता है।[1] इसके विपरीत उपन्यास आन्तरिक साक्ष्य पर आधारित होता है तथा उसकी एक समस्त कार्य-कारण शृंखला स्वयं में पूरी होती है। इतिहास लेखन में, साक्ष्य ढूंढ कर सारी बनावट तथा विवरण की सत्यता को सिद्ध करना होता है। साक्ष्यों का यह अन्तर उपन्यास-लेखन तथा इतिहास-लेखन की सूक्ष्म सीमारेखा उपस्थित करता है।

लांगलाइस (Longlois) ने दस्तावेज परक साक्ष्यों के आधार पर जीवन का ज्ञान प्राप्त करने की कठिनाइयों पर प्रकाश डाला है। यह कठिनाइयाँ आधुनिक उपन्यासों मे वर्णित आधुनिक जीवन के चित्र के मूल्य से समझी जा सकती है।[2] इतिहास-लेखन, यदि वह केवल दस्तावेजों तथा पुरातात्विक सामग्री पर ही आधारित हो तो वह मानव जीवन के विविध पहलुओं एवं रहस्यों का उद्घाटन नहीं कर पाएगा। उपन्यासो में वर्णित मानव-जीवन के विविध पहलू तथा विशद् सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एव राजनैतिक पृष्ठभूमि, ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ ऐतिहासिक सत्यों के उद्घाटन में भी सहायक होती है। इस प्रकार कलारूप इतिहास उपन्यास के अत्यन्त निकट होता है।

(ग) **जीवनी रूप में साहित्य एवं इतिहास का संगम**—इतिहास सदैव मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध मे होता है, जो मानव जीवन के विस्तृत क्षेत्र से अपनी सामग्री तथा प्रतिपाद्य विषय के स्रोत प्राप्त करता है। महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण घटक होते है। इतिहास में एक समग्र भूखण्ड की समूची घटनावली को लिया जाता है जबकि जीवनी में एक ही व्यक्ति के जीवन को उसकी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य मे चित्रित किया जाता है। "कालक्रमों से संबंधित, परन्तु उद्देश्य एवं स्पिरिट दोनों, तथा साहित्यिक स्वरूप में उससे भिन्न समकालीन लेखकों द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध राजाओं की जीवनियाँ है।"[3] जीवनियाँ साहित्य का एक विशिष्ट स्वरूप ही नहीं, एक साहित्यिक विधा है।

कालिंगवुड के मतानुसार "विचार के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का इतिहास नही हो सकता। इस प्रकार, उदाहरण स्वरूप, एक जीवनी में चाहे कितना भी इतिहास क्यों न हो, ऐसे सिद्धान्तों पर निर्मित की जाती है, जो कि न केवल गैर-ऐतिहासिक है प्रत्युत प्रति-ऐतिहासिक है।"[4]

यह सत्य है कि इतिहास मूलतः इतिहासकार के मानस में अतीत के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है, परन्तु महान पुरुषों की जीवनियाँ प्रति

1. "The Problem of History and Historiography" P. 17-18.
2. Ibid, P. 56.
3. "Historians of India, Pakistan & Ceylon" Edt. by C.H. Phylips, Ideas of History in Sanskrit Literature by R.C. Majumdar, P. 18.
4. Theories of History, Edt. by Patrick Gardiner, London, P. 258.

ऐतिहासिक नहीं कही जा सकतीं । ट्रेविलियन के मतानुसार "परस्पर विरोधी राजनीतिज्ञों, योद्धाओं तथा विचारकों की जीवनियाँ विभिन्न परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं । एक जीवनी इतिहास की अपेक्षा पथभ्रष्ट कर सकती है, परन्तु एकाधिक जीवनियाँ इतिहास से अधिक हैं ।"[1]

इस प्रकार जीवनियाँ कलारूप इतिहास लेखन के अनिवार्य घटक के रूप में उभरती हैं । साहित्य की एक विधा के रूप में कला, तथा कालक्रम व महान्-पुरुष के जीवन के तथ्यों के रूप में इतिहास, जीवनी के दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं, जो इसे कलारूप इतिहास का स्वरूप प्रदान करते हैं । अतएव जीवनी में साहित्य एवं इतिहास का संगम होता है ।

(2) इतिहास के सभी रूपों के सामान्य तत्व

(क) मानवीय प्रकृति—इतिहास सामान्यतः मानवसमाज के संबंध में होता है । मानवीय प्रकृति, अतीत काल के समाज, उसके क्रमिक विकास, उसे गति देने वाले क्रियाशील तत्त्व, प्रवाह तथा शक्तियाँ, घटनाओं को दिशा प्रदान करने वाला सामान्य तथा व्यक्तिगत प्रयोजन तथा संघर्ष का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संकेत सूत्र प्रदान करेंगी । "यह ऐसा अध्ययन है जिसमें आप सदैव मानवीय प्रकृति से संबंधित (डील करते) हैं ।"[2]

एक सक्रिय प्रेरक शक्ति के रूप में मानवीय संकल्प अथवा इच्छा (Will) ऐतिहासिक घटनाओं को नवलता प्रदान करता है । मानवीय निमित्त (Agency) की प्रेरणा ऐतिहासिक कार्यों के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।[3] यह भी पाया जाता है कि मनुष्यों अथवा सामाजिक इकाइयों द्वारा किए जाने वाले व्यक्तिगत अथवा सामाजिक कार्य निश्चित विचारों तथा दृढ़-विश्वासों द्वारा रूपायित होते हैं । दृढ़ विश्वास, विचारों या विश्वासों के रूप में मानवीय इच्छा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं तथा उनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं ।

अन्यान्य विचारों, विश्वासों तथा धारणाओं के रूप में मानवीय प्रकृति तथा मानवीय इच्छा ऐतिहासिक घटनाओं की गति एवं स्वरूप को प्रभावित करती है ।

मानवीय प्रकृति "देशों तथा शताब्दियों में इतनी अधिक परिवर्तित होती है कि उसे प्रचलित सामाजिक स्थितियों तथा परम्पराओं द्वारा रूपायित एक ऐतिहासिक तत्त्व न मानना कठिन है ।[4]

इसाया बर्लिन ने सर्वप्रथम इस दृष्टिकोण पर विचार किया कि मानवीय इतिहास में जो कुछ भी घटित होता है, वह पूर्ण रूपेण या अधिकांशतः मनुष्यों के

1. "The Use of History" A. L. Rouse, P. 46.
2. "The Use of History" : A. L. Rouse, P. 16.
3. "The Problem of History and Historiography," P. 85.
4. "What is History", E H. Carr, Page 32.

नियंत्रण से बाहर की बातों द्वारा "निश्चित" होता है।[1] इस प्रकार मानवीय प्रकृति, मनुष्य की इच्छा अथवा मानव की स्वच्छन्द रुचि के स्थान पर एक घटना का घटित होना, उससे पूर्व की घटना के प्रभाव स्वरूप, मनुष्य के नियंत्रण से बाहर की अनिवार्य स्थिति द्वारा निश्चित होने की धारणा" "निश्चयवाद" को जन्म देती है।

ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया पर निश्चयवाद के प्रभाव को नकारा तो नहीं जा सकता, परन्तु मानवीय प्रकृति तथा मनुष्य की इच्छा एवं रुचि निश्चित रूप से ऐतिहासिक घटनाओं को न केवल प्रभावित ही करती है प्रत्युत उन्हें रूपायित भी करती है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमाँसों में "निश्चयवाद" की धारणा मार्क्स द्वारा प्रणीत "निश्चयवाद" से मिलती जुलती है। महान् ऐतिहासिक पात्रों की संकल्प शक्ति द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह का प्रभावित होना, इन दोनों इतिहास विचारों के समन्वय का प्रमाण है।

(ख) **महापुरुषों की जीवनियाँ**—महान् पुरुष अपने युग के समाज, संस्कृति तथा राजनीति के केन्द्र-बिन्दु होते है। इतिहास के प्रवाह की उपज होने पर भी महापुरुष इतिहास के प्रवाह को एक निश्चित दिशा प्रदान करते हैं, और इस प्रकार वे इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। ई० एच० कार के मतानुसार, "महान् पुरुष वह असाधारण व्यक्ति है, जो एकदम ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज तथा उत्पादक है, वह एकदम सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधि तथा सर्जक है, जो विश्व के स्वरूप तथा मनुष्यों के विचारों को बदल देती है।"[2]

इस शताब्दी के आरम्भ तक इतिहास को अधिकारिक रूप से महान् पुरुषों का जीवन चरित्र कहा जाता था। ए० जे० पी० टेलर के कथनानुसार, "आधुनिक योरुप का इतिहास तीन शीर्षकों में लिखा जा सकता है : नेपोलियन, बिस्मार्क तथा लेनिन।"[3] असाधारण व्यक्तियों अथवा राजनेताओं का एक नकारात्मक पक्ष भी होता है। उनकी व्यक्तिगत सनक भी कई बार महान् राष्ट्रों की उन्नति को अवरुद्ध करती है या उन्हें विनष्ट कर डालती है, इसलिए उनके व्यक्तिगत निर्णयों के साथ अत्यधिक महत्त्व नहीं जोड़ना चाहिए।

इतिहास चाहे केवल महान् व्यक्तियों के जीवन-वृत्तों से ही नहीं बनता, परन्तु महान् पुरुषों की जीवनियों का अध्ययन मोहक होने के साथ-साथ उपयोगी भी होता है।[4] महापुरुषों की जीवनियों के महत्त्व को स्वीकारते हुए भी इतिहास लेखक को

1. "Theories of History" Issiah Berlin, 1909, editorial notes P. 319.
2. What is History, E. H. Carr, P. 55.
3. What is History : E. H. Carr, P. 53.
4. The Use of History : A. L. Rouse, P. 16.

उन्हें करोड़ों सामान्य लोगों के पूरक के रूप में लेना चाहिए तथा उनका अध्ययन युग की दृष्टि एवं चेतना के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए।

(ग) शत-सहस्त्र सामान्य लोग—महान् राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक नेता अपने युग तथा समाज का नेतृत्व करते हुए इतिहास की सामग्री का निर्माण करते हैं, परन्तु "इतिहास केवल महान् पुरुषों के जीवन चरित्र के साथ ही डील नहीं करता, यह उन करोड़ों गौण पुरुषों तथा स्त्रियों के जीवन की तलछट को भी स्वयं में संजोता है, जो कोई नाम नहीं छोड़ गए, परन्तु जिन्होंने इतिहास के प्रवाह में अपना योगदान दिया था, उनके जीवन ने इतिहास की सामग्री का निर्माण किया है।"[1]

इतिहास की आधुनिक धारणा के अनुसार सामान्य जन इतिहास के मेरुदण्ड का निर्माण करते हैं। मध्ययुग की दरबारी संस्कृति के प्रभावाधीन लिखित इतिहास में सामान्यतः, सामान्यजन की अवहेलना कर राजा, राज दरबार तथा राजसी कीर्ति की चरम सीमा की संकुचित परिधि में घटित घटनाओं को ही इतिहास का मुख्य विषय माना जाता था। आधुनिक तथा मध्य युगीन इतिहास चेतना में यह मौलिक अन्तर है।

सर्वप्रथम उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा इतिहास की भौतिकवादी धारणा का प्रतिपादन करते हुए इतिहास की धारा में करोड़ों सामान्य लोगों के योगदान एवं महत्त्व को प्रकाशित किया।

लेनिन ने कहा था—"राजनीति भीड़ों से आरंभ होती है, जहाँ हजारों नहीं लाखों हो, वहाँ से गम्भीर राजनीति का आरम्भ होता है।"[2] लाखों नाम रहित व्यक्ति अचेतन रूप से एक साथ कार्य करते हुए एक सामाजिक शक्ति का निर्माण करते हैं। अन्यान्य आन्दोलनों में कतिपय नेता तथा उनके असंख्य अनुयायी होते हैं। आन्दोलनों की सफलता के लिए असंख्य लोगों या अनुयायियों का होना अनिवार्य है। संख्या का इतिहास में महत्त्व होता है।

असंख्य सामान्य जन इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण घटक होने पर भी अपनी स्वच्छन्द इच्छा द्वारा काल-प्रवाह तथा घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा प्रदान नहीं कर पाते।

मार्क्स के मतानुसार, "सामाजिक उत्पादन व उत्पादन के साधनों के क्षेत्र में मनुष्य कुछ निश्चित एवं अनिवार्य संबंधों में बंधते हैं, जो उनकी इच्छा से बाहर होते हैं।"[3]

1. The Use of History, A.L Rouse, P. 17.
2. What is History, E H Carr, P. 50.
3. "Critique of Political Economy" Marx, Preface.

बटरफील्ड के अनुसार "ऐतिहासिक घटनाओं के स्वभाव में कुछ ऐसा होता है, जो इतिहास की धारा को ऐसी ओर मोड़ता है जिसकी किसी मनुष्य को कामना न हो। इसी प्रकार टालस्टॉय तथा वुडरोविल्सन मनुष्य को मानवता के ऐतिहासिक सार्वलौकिक उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन मानते हैं।"[1] प्रकट में मनुष्य यह सब कुछ स्वयं के लिए करता है परन्तु अचेतन रूप में वह शताब्दियों पुरानी इतिहास की धारा का एक अंश होता है।

इतिहास का सम्बन्ध व्यक्ति के एकान्त में किए गए कार्यों से नही होता प्रत्युत उन सामाजिक अथवा राजनैतिक कार्यों द्वारा होता है, जो युग की विचारधारा तथा परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं।

कालिंगवुड के मतानुसार, "मनुष्य की पाशविक वृत्तियाँ, उसकी प्रेरणाएँ तथा क्षुधाएँ अनैतिहासिक होती हैं। इन क्रियाओं की प्रक्रिया प्राकृतिक होती है। इस प्रकार इतिहासकार उन सामाजिक परम्पराओं में रुचि लेता है जिन्हें मनुष्य विचार द्वारा लोक सम्मत व्यवहार तथा नैतिकता द्वारा समर्थन प्राप्त तरीकों से यह कामनायें परितुष्ट करने के लिए निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं।"[2]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं रोमांसों में सामान्यतः महान् पुरुषों की जीवनियों को ही उपन्यासों में मुख्य स्थान दिया गया है। कई बार भारतीय मध्य-युगों के सामान्य व्यक्तियों का चरित्र भी उत्तम ढंग से चित्रित किया गया है, परन्तु वे भी राजा अथवा शासक से सम्बद्ध होते थे।

(3) इतिहास बनाम साहित्य और कला

साहित्य व कला का इतिहास से जन्म का सम्बन्ध है। आरम्भिक स्थिति में इतिहास, साहित्य व कला एक ही विषय के विभिन्न घटकों के रूप में अस्तित्ववान थे। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले तक इतिहास, साहित्य का ही एक अभिन्न अंग था। मध्य युगीन "भारत में इतिहास लिखने का कार्य भी अलंकृत दरबारी कविता से सम्बन्धित था।"[3] प्राचीन भारत में भारतीय इतिहास-लेखन में इतिहास के अन्यान्य घटक एवं स्वरूप अपने विषय की गत्यात्मकता तथा रूप की तरलता के कारण निरन्तर अपना स्वरूप बदलते रहते थे, अथवा एक-दूसरे में मिल जाते थे। परिवर्तन की यह प्रक्रिया उनके मूल साहित्य रूपों के परिवर्तन के कारण होती थी।

मिथक, निजंधर-कथाएँ, ग्रामीण-कथाएँ, तथा किस्से मनुष्य की इतिहास-चेतना के अत्यन्त आरम्भिक साक्ष्य हैं। वीरगीतों, महाकाव्यों तथा पुराणों में

1. What is History, E.H. Carr, p 51.
2. "Idea of History" by Collingwood, Quoted in "Theories of History". Page 253.
3. A History of Indian Literature: Winternitz, Trans. by Miss H Kohn, Vol III, Fasc. I, p. 69.

वर्णित इतिहास का अंश तथा मध्य युग में दरबारी कवियों या भाटों द्वारा राजाओं अथवा कबीले के मुखियों के परिवार की महानता का अभिलेख रखा जाना, इतिहास व साहित्य के निकट सम्बन्धों का प्रमाण है। इस स्थिति तक इतिहास साहित्य के पूरक के रूप में, अथवा साहित्य के एक अंग के रूप में अस्तित्ववान था।

19वीं शताब्दी के बाद जब साहित्य व इतिहास दो स्वतन्त्र विषय बन गए, तब भी उन दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध बना रहा जो इतिहास की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित था। इतिहास लेखक लेखन की प्रक्रिया में अन्यान्य खोजों द्वारा कतिपय निर्णयों पर पहुँचता है, उनकी अभिव्यक्ति वह भाषा के माध्यम से करता है। अभिव्यक्ति की इस कला के लिए एक सृजनात्मक कुशलता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार वह इतिहास-लेखक के साथ-साथ, साहित्यकार का भी कार्य करता है, क्योंकि अभिव्यक्ति जितनी सुन्दर, स्पष्ट व आकर्षक होगी, इतिहास-लेखन उतना ही सफल होगा।

कला—इतिहास-लेखन की आध्यात्मिक अथवा सौन्दर्यवादी पद्धति बौद्धिक अथवा वैज्ञानिक पद्धति की पूरक होती है। सौन्दर्यवादी लेखन पद्धति की स्थिति में इतिहास का कला से अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है। दूरबीन अथवा खुर्दबीन के स्थान पर दो मानवीय आँखों द्वारा इतिहास विश्व का अवलोकन करता है। इस प्रकार वह सापेक्ष होने के साथ-साथ कला-परक भी हो जाता है।

अतीत के मानवीय समाज, उनकी भावनाओं, भावावेगों, परम्पराओं, रूढ़ियों, विश्वासों तथा जीवन के मौलिक सिद्धान्तों के अध्ययन में सृजनात्मक कुशलता के साथ-साथ इतिहास-लेखक को अपने लेखन-युग के लोगों से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अथवा सम्पर्क स्थापित करना होगा। इसके फलस्वरूप लिखित "कलात्मक इतिहास (Fabulatory History) की तर्कहीन व भावनाहीन इतिहास से कही गहन अपील होगी।[1]

(4) इतिहास बनाम विज्ञान

इतिहास व विज्ञान की सामग्री एवं क्रिया-प्रणाली मे मौलिक अन्तर होने पर भी 19वी शताब्दी के आरम्भ मे भौतिक विज्ञानों की अन्यतम उन्नति के प्रभाव-स्वरूप कई इतिहास-वेत्ताओं ने इतिहास को विज्ञान की एक शाखा बनाने में ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति समझी।

इस प्रकार "जिस पद्धति से विज्ञान प्रकृति के विश्व का अध्ययन करता है, उसे मानवीय मामलों के अध्ययन पर लागू किया गया।"[2] इस पक्ष के इतिहास-दार्शनिकों का मत था कि यदि हम अतीत की घटनाओं का अत्यन्त सूक्ष्म, निरपेक्ष,

1. The Problem of History and Historiography, V.V. Joshi, page 15.
2. E.H. Carr, "What is History" p 56.

निर्वैयक्तिक तथा गहन अध्ययन करना चाहते हैं, मानवीय अतीत को एक विशिष्ट एवं निश्चित मानदण्ड के आधार पर समझना व अभिव्यक्त करना चाहते हैं तो हमें इतिहास-अध्ययन तथा इतिहास-लेखन की एक वैज्ञानिक पद्धति को अपनाना होगा, जे० बी० बरी ने सन् 1903 के अपने उद्घाटन भाषण में इतिहास को "विज्ञान, न इससे कुछ अधिक न कम" कहा था।[1]

सैद्धान्तिक (एकेडेमिक) स्कूल के इतिहास-वेत्ताओं का दावा था कि वह इतिहास-लेखन के कार्य में वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हैं और उन्होंने दस्तावेज़ों को जाँचने की एक निश्चित (Accurate) पद्धति ढूँढ निकाली है। इस प्रकार दस्तावेजों के आलोचनात्मक अध्ययन से प्राप्त ज्ञान की तुलना, निश्चितता तथा पद्धति दोनों में भौतिक विज्ञानों से की जा सकती है।

डब्ल्यू० एच० वाल्श के मतानुसार "इतिहासकार के संपूर्ण दृष्टिकोण में चाहे किसी भी सीमा तक दार्शनिक तत्त्व आ जाए, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतिहासकार का अपने विवरणात्मक कार्य में किसी भी वैज्ञानिक के समान निर्वैयक्तिक होना अपेक्षित है। वैज्ञानिक निर्णयों के समान ऐतिहासिक निर्णयों में भी साक्ष्य होना चाहिए।"[2]

इतिहास खोज की प्रक्रिया में वैज्ञानिक धारणा का महत्त्व निश्चय ही स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु इतिहास को नितान्त विज्ञान कहना उचित नहीं होगा। मुख्यतः दोनों के प्रतिपाद्य विषय, खोज की पद्धति अथवा कार्यविधि, तथा मौलिक समझ (एप्रोच) में इतना अन्तर है कि इतिहास को विज्ञान की शाखा कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

वैज्ञानिक एवं इतिहासकार के प्रतिपाद्य विषय में मौलिक अन्तर है। इतिहासकार नितान्त विशिष्ट, असामान्य एवं वैयक्तिक सामग्री पर कार्य करता है, जबकि वैज्ञानिक की सामग्री सामान्य एवं सार्वलौकिक होती है। इतिहासकार जिस सामग्री का अध्ययन करता है, वह अनुपस्थित होती है। अतीत की घटनाएँ बोले गए शब्दों के समान दोबारा कभी जीवित नहीं की जा सकतीं। इसके विपरीत वैज्ञानिक का कार्य-क्षेत्र एक अत्यन्त नियोजित प्रयोगशाला में होता है। वैज्ञानिक-खोज की प्रक्रिया में इच्छित सामग्री तथा स्थितियाँ उपलब्ध की जा सकती हैं। प्रयोग करने के लिए उन्हें पुनः दोहराया भी जा सकता है, जबकि काल व स्थान की दूरी के कारण इतिहासकार ऐसा करने में सक्षम नहीं है। वह वैज्ञानिक के समान 'पर्यवेक्षण तथा प्रयोग' की विशिष्ट पद्धति का अनुसरण नहीं कर सकता। ऐतिहासिक स्थितियाँ एवं घटनाएँ अनियन्त्रित एवं पुनः अघटनीय होती हैं, यहाँ तक

1. "What is History" P. 57
2. W.H. Walsh, "Meaning in History" First published in "Theories of History", page 301.

कि समकालीन इतिहास का भी नितान्त वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के साथ असंख्य लोगों की विचार, मान्यताएँ, आदर्श, विश्वास तथा नैतिक-धार्मिक धारणाएँ जुड़ी हुई होती हैं। मानवीय भावनाओं एवं भावावेगों की जटिलताओं तथा कार्यकारण-परम्परा की गुत्थियाँ वैज्ञानिक पद्धति से नहीं सुलझाई जा सकतीं।

इस प्रकार इतिहास तथा विज्ञान एक सिद्धान्त परक, एवं पद्धति परक विपरीतता (Antithesis) का निर्माण करते हैं।

(5) इतिहास बनाम रोजमर्रा-जीवन

आधुनिक युग में इतिहास का मनुष्यों के नित्यप्रति के जीवन से सम्बन्ध घनिष्टतर होता जा रहा है। इतिहास अतीत का ज्ञान उपलब्ध कर, वर्तमान की सही समझ तथा भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक है। इस शताब्दी में मनुष्य केवल अपने युग, जाति अथवा देश के सम्बन्ध में जानकर ही जीवित नहीं रह सकता, उसे वृहत्तर विश्व तथा मानवीय अतीत के ज्ञान की आवश्यकता होगी। मनुष्य का अतीत के साथ भावात्मक एवं रागात्मक सम्बन्ध होता है, जो उसके नित्यप्रति के जीवन को प्रभावित करता है।

ए० एल० राउस के मतानुसार—"इतिहास का सर्वोपरि प्रयोग चाहे वह यहाँ तक ही सीमित नहीं है, यह है कि यह अन्य किसी भी विधा से अधिक, हमें सार्वजनिक घटनाओं, आपके युग की समस्याओं (Affairs) तथा रुचियों, प्रवृत्तियों की जानकारी प्रदान करता है।"[1]

इतिहास से शिक्षा प्राप्त करना अथवा पाठ लेना एक विवादास्पद परन्तु महत्त्वपूर्ण विषय है। चाहे इतिहास स्वयं को कभी नहीं दोहराता और वही व्यक्ति एवं स्थितियाँ फिर कभी उपस्थित नहीं होते, परन्तु मानवीय अतीत में समान प्रकार की परिस्थितियों में समान समस्याएँ समान रूप से सुलझाई गई हैं तथा लगभग समान निर्णयों तक पहुँचा गया है। इतिहास मानव के युगों से एकत्रित ज्ञान को उपलब्ध करने का साधन है, जो मनुष्यों के नित्य प्रति के जीवन को दिशा एवं स्वरूप प्रदान करता है।

ई० एच० कार के मतानुसार, "इतिहास से सीखना कभी भी इकहरी प्रक्रिया नहीं है। अतीत के प्रकाश में वर्तमान का अध्ययन करने का अर्थ है वर्तमान के प्रकाश में अतीत का अध्ययन, इतिहास का कार्य वर्तमान तथा अतीत दोनों और उनके अन्तर्सम्बन्धों को समझने का बेहतर आधार प्रदान करना है।"[2] इस प्रक्रिया से मनुष्य के मानस में वर्तमान तथा अतीत के सम्बन्ध में एक निश्चित पैटर्न बन जाता है, जो भविष्य के कार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

1. "Use of History" P. 60.
2. "What is History" P. 68.

इस प्रकार इतिहास का अध्ययन मनुष्य को वर्तमान में जीने के लिए अधिक सशक्त तथा भविष्य के प्रति अधिक प्रबुद्ध बनाएगा। बहुत से विवेच्य उपन्यासकारों ने इतिहास-ज्ञान का नित्यप्रति के जीवन में महत्त्व तथा इतिहास अध्ययन की आवश्यकता एवं उसके प्रसार के सम्बन्ध में टिप्पणियाँ की है।

(6) कलात्मक इतिहास की प्रक्रिया

(क) **कार्यकारण शृंखला-घटना-प्लाट**—इतिहास मुख्यतः मानवीय अतीत के सार्वजनिक पक्ष से संबंधित होता है। मनुष्य समाज के अतीत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक घटनाएँ जो दस्तावेजों, भवनों के अवशेषों तथा शिलालेखों आदि के साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित हों, इतिहास की सामग्री है। परन्तु "इतिहास किसी भी स्थिति में परस्पर असंबद्ध तथ्यों का संग्रह अथवा किसी भी प्रकार घटित घटनाओं का समूह नहीं है।"[1] वास्तविक अर्थो में घटनाओं के पूर्वोपर संबंध ही इतिहास को अर्थवेत्ता प्रदान करते है। कार्य-कारण शृंखला से इतिहास का स्वरूप निश्चित होता है, तथा इतिहास–अध्ययन बुद्धिगम्य बन पाता है।

ई० एच० कार के मतानुसार इतिहास का अध्ययन कारणों का अध्ययन है। हिरोडोट्स ने कारण को ऐतिहासिक घटनाओं के विश्लेषण मे सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। मांटेस्क्यू के मतानुसार, "प्रत्येक साम्राज्य को उन्नत करने, उन्हें प्रचालित करने या उनका पतन होने के सामान्य नैतिक अथवा भौतिक कारण होते है तथा जो कुछ भी घटित होता है वह इन कारणों के अधीन होता है।"[2] इतिहास-खोज की प्रक्रिया में कारणों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कतिपय इतिहासवेत्ता कारण के स्थान पर 'व्याख्या' अथवा 'स्पष्टीकरण' द्वारा इतिहास-प्रक्रिया की समस्याएँ सुलझाना चाहते है, परन्तु खोज के अन्त में कार्यकारण शृंखला ही ऐतिहासिक घटनाओं को अधिक बुद्धिगम्य स्वरूप प्रदान करती है।

ऐतिहासिक तथ्य अलग-अलग अस्तित्व के न होकर हर दिशा में परिस्थितियों के जालों में बुने रहते है। प्रत्येक स्थिति जो कि अपनी पूर्व की स्थिति का परिणाम होती है, अगली स्थिति को जन्म देती है। कारण इन्हें आपस मे जोड़ते है। ऐतिहासिक घटनाएँ विशिष्ट, स्वपरिस्थितिवश एव स्वतः स्पष्ट होती है। परिस्थितियों के दवाब से वे घटित होती है और अपने से बाद घटित होने वाली घटनाओं के लिए नवीन स्थिति का निर्माण करती है। इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार को घटनाओं, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा कार्यकारण शृंखला को दृष्टिगत रखना होता है।

1. "The Use of History" p. 95.
2. "What is History" p. 87-88.

दुर्घटनाएँ तथा अनपेक्षित घटनाएँ[1] कार्यकारण-शृंखला के सिद्धान्त का विपरीत मत (Antithesis) हैं। इतिहास-खोज की प्रक्रिया में ये अत्यन्त जटिलता की स्थिति उत्पन्न करती हैं। इतिहासकार कह सकता है कि अनपेक्षित घटना क्यों घटित हुई ? इस मत के अनुसार इतिहास अवसर द्वारा निश्चित घटनाओं की एक शृंखला है, जो सामान्य कारणों द्वारा परिचालित होता है। सर्वप्रथम माँटेस्क्यू ने इतिहास-लेखन के नियमों की इस उल्लंघन से रक्षा की।

कार्य-कारण शृंखला का इतिहास-प्रक्रिया में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। दुर्घटनाएँ तथा अनपेक्षित घटनाएँ कार्य-कारण संबंधों के नियम के विपरीत होकर भी कलात्मक इतिहास-लेखन ऐतिहासिक उपन्यास व ऐतिहासिक रोमाँस-लेखन की प्रक्रिया में कार्य-कारण शृंखला की पूरक हैं। ऐतिहासिक रोमाँसों की प्रक्रिया मे कई बार यह बंधन ढीले भी हो सकते हैं।

(ख) **समझने की प्रक्रिया**—इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार सदैव मानवीय प्रकृति का अध्ययन करता है। मानवीय प्रकृति से संबद्ध घटनाओं तथा तथ्यों को समझने के लिए एक बृहत्तर अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। एक निश्चित कालखण्ड का अध्ययन करते समय इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार उसके विविध पक्षों एवं स्थितियों को समझ कर इनकी पुनः अभिव्यक्ति करते हैं। इस मौलिक समझ में वे असंख्य घटनाओं तथा तथ्यों में से चुनाव करते हैं। चुनाव की इस प्रक्रिया में इतिहासकार का दृष्टिकोण व्यक्ति, समाज व परिवेश के अन्तर्सम्बन्धों तथा इतिहास-निर्माण में उनके सहयोग से प्रभावित होता है।

लेखक का दृष्टिकोण इतिहास-लेखन की प्रक्रिया का केन्द्र-बिन्दु होता है। इतिहासकार का अपने तथ्यों के प्रति कर्त्तव्य केवल इसी से सम्पन्न नहीं हो जाता कि वह तथ्यों की सत्यता को निश्चित कर दे, उसे अपनी थीम तथा प्रस्तावित व्याख्या से संगत अन्य ज्ञात अथवा अज्ञात तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। तथ्यों के निश्चयन के पश्चात् व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा लेखक अपने दृष्टिकोण तथा तथ्यों को स्पष्ट करता है। यह इतिहासकार की ऐतिहासिक सामग्री की अपनी समझ होती है।

ई० एच० कार के मतानुसार इतिहासकार द्वारा तथ्यों का चयन करने, उनकी व्याख्या करने और उन्हें व्यवस्थित करने की प्रक्रिया में अचेतन रूप से कई सूक्ष्म अथवा गहन अन्तर आ जाते हैं।[2]

इतिहास-लेखक का ऐतिहासिक मामलों के प्रति दृष्टिकोण सापेक्ष अथवा निरपेक्ष हो सकता है। लेखक की मानवीय अतीत की समझ में निर्वैयक्तिकता प्राप्त

1. अधिक विवरण के लिए देखिए, ई. एच. कार "व्हाट इज़ हिस्ट्री" पृष्ठ 98, यहाँ प्रो० कार ने क्लियोपेट्रा की नाक तथा यूनान के सम्राट एलेक्जेंडर को उसके पालतू बन्दर द्वारा काटे जाने का उदाहरण देकर दुर्घटनाओं तथा अनपेक्षित घटनाओं की स्थिति को स्पष्ट किया है।
2. E.H Carr, What is History, Page 30.

करना अत्यन्त कठिन है फिर भी लेखक का दृष्टिकोण संतुलित हो सकता है। यह संतुलन शत्रु एवं मित्र, विजेता[1] एवं पराजित आदि में से किसी एक की ओर अधिक न झुकने से प्राप्त किया जा सकता है।

इतिहासकार को अतीत के मनुष्यों के कार्यो को उनकी योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परिस्थितियों द्वारा समझना एवं जाँचना चाहिए। यह उन मनुष्यों के विश्वासों, रूढ़ियों, परम्पराओं तथा विचारों के फलस्वरूप निकले परिणामों द्वारा जाना जा सकता है। वास्तविक समस्या यह है कि मनुष्य अन्यों के स्थान पर एक निश्चित कार्य क्यों करते है। इसे मूल रूप से समझने के लिए इतिहासकार व ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपने विषय, पात्रों तथा उनके युग व समाज के साथ एक निश्चित धरातल पर बौद्धिक तथा हार्दिक तारतम्य स्थापित करना होगा।

कालिंगवुड ने एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना को समझने की प्रक्रिया को 'विचार की प्रक्रिया'[2] कहा है। इस तरह इतिहास, अतीत के अनुभव का पुनः सृजन है। समस्त इतिहास इतिहासकार के मानस के भीतर विचार द्वारा उपजा हुआ है। इतिहासकार केवल इतिहास का पुनः निर्माण ही नही करता, प्रत्युत्त ऐसा करते हुए अपनी समझ के अनुकूल उसकी आलोचना भी करता है, इसके मूल्यों पर अपना निर्णय देता है तथा इसकी त्रुटियों को दूर करता है। कालिंगवुड के मतानुसार इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओं को देखता नहीं, प्रत्युत उनके भीतर के विचार द्वारा उन्हें रूप देता है। इस प्रकार इतिहासकार को ऐतिहासिक एजेंट के निश्चित कार्यो तथा निर्णयों को समझने के लिए उसी मानसिक प्रक्रिया से गुजरना होगा जिसमें से कि ऐतिहासिक एजेंट गुजरा था। इससे ऐतिहासिक सामग्री केवल वही हो सकती है जिसे इतिहासकार अपने मानस में पुनः विचार सके, इस दृष्टि से प्रकृति का कोई इतिहास न तो है न हो सकता है।

इतिहासकार की समझ एवं कालिंगवुड की थ्योरी पर अन्यान्य आक्षेप[3] लगाए गए है, परन्तु कलारूप इतिहास के क्षेत्र में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह मानवीय इतिहास को अधिक स्पष्ट एवं बुद्धिगम्य बनाती है।

(ग) **लोगों की प्रतिक्रिया**—इतिहासकार को समाज में मनुष्य के अतीत की खोज की प्रक्रिया में करोड़ों सामान्य लोगों के विचारों, विश्वासों, रूढ़ियों तथा परम्पराओं के संदर्भ में उनकी विशिष्ट कार्यो तथा घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया को समझना तथा स्पष्ट करना होता है। समाज का अंग होने पर भी एक निश्चित स्थिति में एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया को सुनिश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है, यद्यपि यह किया जा सकता है। इसके विपरीत भीड़ों, समूहों तथा राष्ट्रों की परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया लगभग समान ही होती है।

1. एक्टन ने कहा था कि इतिहासकार को अतीत पर केवल विजेताओ की दृष्टि से ही नही देखना चाहिए।
2. Theories of History, page 259.
3. See "Philosophy of History" W H. Dray, p. 12.

कलात्मक इतिहास की प्रक्रिया में इतिहासकार को अतीत में मनुष्यों द्वारा उनके परिवेश में किए गए कार्यों की खोज करनी होती है। यह नितान्त वैज्ञानिक ढंग से नहीं की जा सकती। इसके लिए उसे साहित्यकार के अन्यान्य साधनों तथा सर्जनात्मक कल्पना, उत्पादक प्रतिभा तथा निर्माणात्मक विचार आदि का प्रयोग करना पड़ता है, जो इतिहास को कला के और भी निकट ले जाएगा।

इतिहासकार की इतिहास खोज की प्रक्रिया दोहरे स्वरूप की होती है, वह केवल अतीत को वर्तमान की दृष्टि से ही नहीं देखता प्रत्युत वर्तमान को भी अतीत की दृष्टि से देखता है। इतिहास-लेखन के समय इतिहासकार पाठकों की प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखता है। यह वह पाठकों के युग की मुख्य बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक धारणाओं को दृष्टि में रख कर करता है। खोज की इस प्रक्रिया में इतिहासकार की दृष्टि जितनी अधिक उसके विषय से सम्बन्धित युग के लोगों की धारणाओं तथा विश्वासों पर रहती है, उतनी ही वह पाठकों के युगबोध पर भी रहती है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखकों ने भारतीय मध्य युगों के सामन्ती जीवन को बहुत दूर तक समझा है तथा उनके विश्वासों एवं विचारधाराओं का कलात्मक पुन: प्रस्तुतिकरण किया है।

(घ) **लेखन की शर्तें : अभिव्यक्ति**—इतिहासकार अपनी खोज और शोध की प्रक्रिया के पश्चात् कतिपय निर्णय लेता है। उन्हें अन्तिम रूप प्रदान करने तथा उनकी अभिव्यक्ति की समस्या इतिहासकार के सामने उभरती है।

वी० वी० जोशी के मतानुसार एक ऐतिहासिक कृति को स्वयं के प्रति सच्चा होने के लिए दो शर्तों[1] को पूरा करना होता है। 'इतिहास लेखन का निर्माण किसी विशिष्ट स्थान पर निश्चित होने के तथ्य द्वारा, बाध्य, तथा काल-क्षेत्र में बद्ध होना चाहिए। काल का मापदण्ड वर्षों तथा दशकों द्वारा होना आवश्यक नहीं है, परन्तु काल परिवर्तन की वास्तविकता में समाविष्ट हो, यह बाह्य परिस्थितियों के लाजिक का परिणाम हो तथा आन्तरिक अनिवार्यता द्वारा बाध्य हो। दूसरे इतिहास लेखन में उसके निर्णयों, अनुमानों, स्वीकारोक्तियाँ (Assumptions) तथा विवरणों की सत्यता के औचित्य को, इससे असंबद्ध साक्ष्य की अपील द्वारा सिद्ध करना होता है। उपन्यास में साक्ष्य आन्तरिक होता है।'

अपनी खोज के अनुमानों एवं निर्णयों की अभिव्यक्ति के लिए इतिहासकार को भाषा का आश्रय लेना पड़ता है। इतिहास-खोज की प्रक्रिया में आंशिक-रूप से वैज्ञानिक पद्धति अपना कर भी, अभिव्यक्ति का कलात्मक एवं स्वत: स्पष्ट होना आवश्यक है।

1. 'The Problem of History & Historiography." p. 17-18.

अतीत के मनुष्यों की भावनाओं एवं भावावेगों, रुचियों एवं अरुचियों, प्रेम तथा घृणा, उनकी महानता तथा क्रूरता आदि के चित्रण के लिए, घटनाओं, स्थितियों एवं विचारों का प्रदर्शन, ऐतिहासिक पात्रों का विश्लेषण, आदि के लिए इतिहासकार में एक सृजनात्मक कुशलता अपेक्षित है। यह इतिहास को कला एवं साहित्य के और भी निकट लाता है।

(7) कलात्मक इतिहास की सीमा

(क) **सत्य की सीमा**—कलात्मक इतिहास-लेखन में सत्य सीमित रूप में ही हमारे सम्मुख आता है। मानव जीवन के अतीत की गाथा कहते समय कलात्मक इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत घटनाएँ तथा तथ्य, कला तथा भावावेगों द्वारा आच्छादित हो जाते है। लेखक का अपना दृष्टिकोण वास्तविक सत्य को सीमित रूप में ही उभरने देता है।

ए० एल० राउस के मतानुसार, 'इतिहास-लेखन में सदैव तथा प्रत्येक बिन्दु पर सत्य की एक सीमा होती है, परन्तु वह जितनी एक सीमा है, उतनी ही एक उपलब्धि भी है।'[1] उनके मतानुसार टालस्टाय ने 'युद्ध और शान्ति' में नैपोलियन का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह अनुचित तथा बायस है। अपनी प्रकट पराजयों के होते हुए भी नैपोलियन, टालस्टाय के चित्रण से कहीं अधिक अद्‌भुत व्यक्ति था।

सत्य का सीमित रूप से उभर पाना कलात्मक इतिहास की एक सीमा है।

(ख) **जीवनी का एक पक्ष**—जीवनी कलात्मक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, साथ ही वह एक साहित्यिक विधा है। **ए. एल. राउस** के मतानुसार, "जीवनी द्वारा इतिहास का अध्ययन करने में एक स्पष्ट खतरा है, आपको विषय का एक पक्षीय दृष्टिकोण ही प्राप्त होने की संभावना है।"[2]

ट्रेविलियन के मतानुसार दो परस्पर विरोधी राजनीतिज्ञों, योद्धाओं अथवा विचारकों की जीवनियों के अध्ययन द्वारा एक युग का बहुमुखी ज्ञान प्राप्त हो सकता है—जो अधिक विश्वसनीय भी हो सकता है।

कालिंगवुड के मतानुसार, जीवनी में चाहे कितना भी इतिहास क्यों न हो परन्तु जिन सिद्धान्तों पर इसका निर्माण किया जाता है वे न केवल अनैतिहासिक ही हैं प्रत्युत प्रतिऐतिहासिक हैं।[3]

जीवनी स्वयं में 'मधुर एवं उपयोगी' होने पर भी एक सीमित ज्ञान का स्रोत है। कलात्मक इतिहास के क्षितिज इससे सीमित हो जाते है क्योंकि यह मानवीय

1. "The Use of History," p. 48.
2. A.L Rouse: "The Use of History," p. 46.
3. Collingwood, "History as Re-enactment of Past-experience." reprinted in "Theories of History" p. 258.

अतीत के एक ही पक्ष का उद्घाटन कर पाती है, जबकि अन्य पक्ष अन्धकार में ही रह जाते हैं।

(ग) कल्पना—तथ्य मूलक इतिहास अन्यान्य घटनाओं एवं तथ्यों का एक कंकाल मात्र होता है। वैज्ञानिक पद्धति से इनका अध्ययन करने पर इतिहास लेखक को बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। तथ्यों तथा घटनाओं के समूह को एक सुनिश्चित एवं बुद्धिगम्य स्वरूप तथा अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए इतिहास लेखक को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है।

इतिहास के अज्ञात-कालखण्ड की खाई को पूरा करने के लिए अनुमान ही उचित तकनीक है। इसीलिए कुछ इतिहासकार 'निश्चित परिस्थितियों में क्या घटित हो सकता है'[1] का मापदण्ड अपनाते हैं। कल्पना की सहायता से प्राप्त इस ज्ञान को वे 'संभाव्यता आधारित ज्ञान' कहते हैं।

यद्यपि कल्पना अर्थवान एवं बुद्धिगम्य इतिहास लेखन में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है तथापि कल्पना की अधिकता, या उसका दुरुपयोग इतिहास लेखन के मूल लक्ष्य को नष्ट कर सकते हैं। कलारूप इतिहास में कल्पना का प्रयोग उसके क्षेत्र तथा वैधता को सीमित कर देता है।

(घ) अन्तर्दृष्टि—तथ्यरूप इतिहास के क्षेत्र में हेतुवादी अथवा प्रयोजनवादी इतिहासकार, दस्तावेज़ों, शिलालेखों व अवशेषों आदि सामग्री का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से अथवा कम से कम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करने का दावा करते हैं जबकि कलात्मक इतिहास-लेखक घटनाओं के आन्तरिक तथा बाहरी पक्षों का कलात्मक ढंग से अध्ययन करते हैं। उनकी अपनी सामग्री के लिए एक भावना होती है।

इतिहास लेखन की प्रक्रिया में अन्तर्दृष्टि अन्यान्य शोध समस्याओं के आकस्मिक समाधान प्रस्तुत करती है। 'अन्तर्दृष्टि एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जो एकाएक व्याख्या प्रस्तुत करती है।' इस मानसिक क्रिया का मनोविज्ञान द्वारा अध्ययन किया तो जा सकता है, परन्तु यहाँ यह नहीं किया जाना चाहिए। अन्तर्दृष्टि कलात्मक इतिहास 'का स्वरूप अत्यन्त वैयक्तिक बना देती है। निरपेक्षता एवं निर्वैयक्तिकता के सिद्धान्त के विपरीत होने के कारण यह इतिहास की सीमा तथा क्षेत्र को सीमित करती है।

कालिंगवुड सारे इतिहास को विचारों का इतिहास मानते थे। इतिहासकार विचार द्वारा घटनाओं को स्वरूप प्रदान करता है, और इस प्रकार इतिहास, इतिहासकार के भीतर विचार द्वारा उपजा हुआ होता है। यह इतिहास-दर्शन स्वयं में सम्पूर्ण है; परन्तु इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है क्योंकि ऐतिहासिक एजेंटों के बहुत कम कार्यों का ही 'विचार पक्ष' होता है, जो उन्होंने सचेतन रूप से निश्चित कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुरूप किए होते हैं। ऐतिहासिक एजेंटों के अनौचित्यपूर्ण तथा असंबद्ध कार्यों का इस ढंग से अध्ययन करना अत्यन्त कठिन होगा।

1. "The Problem of History & Historiography," p. 58.

भाग' अतीत की राजनीति[1] को आत्मसात् करता है। मानवीय अतीत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश, लोक-प्रशासन, युद्ध, संविधान तथा कूटनीति आदि ही हैं। मानवीय आकाँक्षाओं, भावनाओं, भावावेगों, विश्वासों, रुचियों तथा जीवन-पद्धति को राजनैतिक नेतृत्व ही एक निश्चित दिशा प्रदान करता रहा है।

इतिहास खोज की प्रक्रिया तथा उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति में राजनैतिक पक्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय इतिहास तथा 'राज्य' का विस्तृततम् अर्थ में इतिहास आ जाते हैं।[2] केन्द्रीय राज्य की कार्यविधियाँ ही नहीं स्थानीय प्रशासन आदि भी इसी के ही अंग है। राज्य एवं प्रशासन के विविध स्तर उन के कार्य तथा गतिविधियों का अध्ययन इतिहास के राजनैतिक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।

मानवीय अतीत के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का अध्ययन करते समय इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपनी खोज की सामग्री के लिए राज्य अथवा प्रशासन द्वारा उपलब्ध अवशेषों, शिलालेखों तथा दस्तावेजों का आश्रय लेना पड़ता है।[3] जिसके लिए उसे राजनैतिक, संवैधानिक तथा प्रशासनिक इतिहास का अध्ययन करना होता है। जब तक शासन किसी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक कार्रवाई में हस्तक्षेप नहीं करता तब तक मानवीय अतीत के उस विशिष्ट पक्ष के संबंध में जानकारी विश्वसनीय नहीं होगी। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के राजनैतिक कार्य सर्वोच्च महत्ता के हैं। अरस्तू ने कहा था कि मनुष्य स्वभावतः एक राजनैतिक पशु है। ऐतिहासिक उपन्यास सामान्यतः पात्र तथा घटना पर आश्रित सत्य को लेकर चलने के कारण तथ्य केन्द्रित होते हैं। इसलिए वे अपनी प्रवृत्ति तथा चरित्र में राजनीतिक मूल के होते हैं।

प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का कथ्य तथा (थीम) मूल विचार राजनैतिक इतिहास से संबंधित है। अतीत की राजनीतिक गतिविधियों पर आश्रित अधिकांश उपन्यास मानवीय अतीत के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष का रहस्योद्घाटन करते हैं। अतीत की राजनीति इन उपन्यासों का मुख्य विषय है। मानवीय अतीत के अन्य पक्ष इसके पूरक रूप में ही उपन्यासों में उभरते हैं।

1. 'Political History' by S T. Bindoff reprinted in "Approaches to History" edited by H P R. Finberg, London, Page 2.
   आक्सफोर्ड इतिहास के हाल ही के संस्करणों में एक पैटर्न निश्चित कर दिया गया है, जिसके अनुसार एक तिहाई से कम हिस्सा गैर-राजनैतिक विषयों को दिया गया है। वे इतिहास मुख्यतः राजनैतिक हैं।
2. वही, पृष्ठ 7-8
3. देखिए—'Political History' by S T. Bindoff P. 14-16. "...........मनुष्य की एक सामाजिक प्राणी के रूप में सर्वोच्च गतिविधि से सबंधित इतिहास, कुछ कालखण्डों में चर्च के अपवाद के होते हुए भी, मानवीय संगठन का कोई भी स्वरूप राज्य जैसा शक्तिशाली नहीं रहा, न ही कोई गतिविधि, राज्य की राजनीति-सी प्रभावशाली अथवा महत्त्वपूर्ण थी।"

ब्रजनन्दन सहाय का 'लालचीन', बलदेव प्रसाद मिश्र का 'पानीपत', किशोरी लाल गोस्वामी के 'तारा व क्षत्रकुल कमलिनी' एवं 'सुलताना रजियावेगम वा रंग महल में हलाहल, गंगा प्रसाद गुप्त का 'हम्मीर', रामजीवन नागर का 'बारहवीं सदी का वीर जगदेवपरमार', सिद्धनाथ सिंह का 'प्रणपालन', अजौरीकृष्ण प्रकाश का 'वीर चूड़ामणि', चन्द्रशेखर पाठक का 'भीमसिंह' आदि उपन्यास मूलतः एवं मुख्यतः अतीत की राजनीति का ही पुनर्निर्माण करते हैं।

इस प्रकार राजनीति मानवीय अतीत की खोज की प्रक्रिया का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

(ख) **आर्थिक पक्ष**—आर्थिक निश्चयवाद के सिद्धांत के अन्तर्गत किसी भी समाज की आर्थिक व्यवस्था ही उसके राजनैतिक, धार्मिक, तथा कलात्मक जीवन का निश्चयन करती है।[1] मार्क्स तथा एंगल्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी मानवीय अतीत के अध्ययन में अतीत के मनुष्यों के निर्माण के विविध संबंधों, तथा उनके द्वारा निर्धारित अन्य पक्षों को एक निश्चित एवं विशिष्ट दार्शनिक आधार प्रदान करती है।

मार्क्स के मतानुसार, "सामाजिक निर्माण के क्षेत्र में लोग कुछ निश्चित संबंधों में बंधते हैं, यह उनकी इच्छा के अधीन नहीं होता, निर्माण के यह संबंध, उनकी निर्माण की भौतिक शक्तियों की एक निश्चित स्थिति के अनुरूप होते हैं। निर्माण के इन संबंधों की समग्रता, समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करती है—जो वास्तविक आधार है, जिस पर वैधानिक तथा राजनैतिक ढांचे उभरते हैं तथा जिसके अनुसार सामाजिक चेतना का विशिष्ट स्वरूप उभरता है।.........आर्थिक आधार बदलने पर सारा ढाँचा तीव्रता से परिवर्तित होता है।"[2]

आर्थिक पक्ष, इस प्रकार, मानवीय अतीत के अध्ययन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि उसे अन्य समस्त मानवीय क्रियाकलापों का एकमात्र प्रेरणा-स्रोत एवं नियन्ता न भी माना जाए, तो भी यह स्वीकार करना होगा कि अर्थ मानवीय विचारों, विश्वासों, परम्पराओं तथा रुचियों को प्रभावित करता रहा है।

प्रेमचन्द पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों में आर्थिक दृष्टि से मानवीय अतीत का अध्ययन नहीं किया गया। फिर भी "पानीपत" में स्थान-स्थान पर मराठा सेना की आर्थिक स्थिति तथा मुसलमान-सेनापतियों की धन लोलुपता, "रज़ियावेगम" तथा "लालचीन" मे तत्युगीन आर्थिक स्थिति का उत्तम चित्रण किया गया है।

1, Alan Donagan, "Explanation in History" reprinted in Theories of History, Page 441.

2. Karl Marx : The Materialistic Conception of History, Reprinted in Theories of History, Page 131.

(ग) सामाजिक पक्ष—अतीत के समाज[1] का अध्ययन इतिहास खोज का एक मुख्य पक्ष है। इतिहास में मनुष्य के सामाजिक व्यक्तित्व को ही अध्ययन का विषय बनाया जाता है। स्थान में स्थिर व काल में निश्चित समाज का अंग होने के कारण मनुष्य राजनीतिक निकाय, शिक्षा संस्थाओं, धार्मिक संगठनों तथा अपने परिवेश के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। अतः यह सब मनुष्य के सामाजिक जीवन के अनिवार्य अंग हैं। इस दृष्टि से 'समाज' की परिधि में लगभग सभी मानवीय क्रियाकलाप तथा गतिविधियाँ व इतिहास अध्ययन के अन्यान्य पक्ष आ जाते हैं।

मनुष्य एक इकाई है, जो अपने सामाजिक जीवन को तीन विभिन्न स्तरों पर जीता है—आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक। इस प्रकार आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक इतिहास का अध्ययन अन्योन्याश्रित हैं।[2] इन पक्षों के बीच एक सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रो० शस्टो के मतानुसार 'मनुष्यों की जीवन पद्धति, धर्म तथ संस्कृति, जिसका वे सृजन करते हैं, तथा जिसे वे स्वीकार्य मानते हैं। उनका वैज्ञानिक अन्वेषण, तथा सबसे उनकी सामान्य राजनैतिक मान्यताएँ जो उनके समुदाय को विवेकवान बनाता है, इसी के अंश हैं।[3]

स्पष्ट है कि मानवीय अतीत के आर्थिक अथवा राजनीतिक किसी भी पक्ष का अध्ययन करते समय इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार को सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को भी अपनी दृष्टि में रखना होता है, परन्तु ऐसा करते समय सामाजिक पक्ष का अध्ययन उसका मुख्य विषय अथवा साध्य नहीं होगा। इस प्रकार, सामाजिक-पक्ष का अध्ययन करते समय हमें इतिहास की प्रक्रिया को "सामाजिक-दृष्टिकोण" से देखना होगा।

1. देखिए "Social History" by J.F. Rees reprinted in "Approaches to History" Page 61.
   "यह स्थान व काल में स्थिर समाज से संबंधित होना चाहिए ... उसे अपने समाज को एक संगठित, क्रियाशील, उन्नतिशील, स्व-गत्यात्मक, स्व-प्रतिक्रियाशील, इकाई के रूप में देखने का प्रयास करना चाहिए जो अपने भौगोलिक तथा ब्रह्माण्ड संबंधी परिवेश में स्थिर हो। ...... समाज एक संयंत्र से अधिक एक निकाय नहीं है, यह एक सामाजिक अस्तित्व, मनुष्यों का एक समेकित समूह है तथा इसीलिए आवश्यक ढंग से यह एक मनुष्य अथवा स्त्री से कुछ अधिक तथा कुछ कम दोनों है।"
2. "Approaches to History" Page 51-52.
   प्रो० जे० एफ० रीस—"आर्थिक इतिहास में कृषि, उद्योग, वाणिज्य तथा यातायात शामिल हैं। इनके साथ ही करेंसी, ऋण तथा कर सम्बन्धी जटिल समस्याएँ भी हैं। यह विषय अनिवार्य रूप से सामाजिक परिस्थितियों की छानबीन तथा विवरण को भी शामिल करेगा।"
   सर मॉरिस पाविक—"मेरे दृष्टिकोण से राजनैतिक तथा सामाजिक इतिहास एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं। सामाजिक जीवन आधी रुचि खो देगा तथा राजनैतिक आन्दोलन अपना अर्थ खो दगे यदि उनका अलग-अलग अध्ययन किया जाएगा।"
   सर लुई नेमियार—"जब मानवीय-मामले, इतिहास की विषय-सामग्री हैं, सभी मानवीय व्यवसाय (उद्यम) तथा पद्धतियां अपने सामाजिक रूप में उसमें शामिल हो जाती हैं।"
3. वही, पृष्ठ 53-54.

विवेच्य उपन्यासों में भारत के अतीत कालीन समाज के बहुत से सजीव, सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण चित्र उपस्थित किए गए हैं। मध्ययुगों के भारतीय समाज की अन्यान्य परम्पराएँ, प्रथाएँ एवं रूढ़ियाँ, सामाजिक विश्वास इन उपन्यासों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। मुंशी देवी प्रसाद के उपन्यास 'रुठी रानी' में उमादे का चरित्र पातिव्रात्य के प्राचीन सामाजिक विश्वास तथा सती प्रथा की सामाजिक रूढ़ि का अत्यन्त सशक्त उदाहरण है। किशोरीलाल गोस्वामी के 'रज़ियाबेगम' तथा 'तारा' उपन्यासों में मुस्लिम युग के समाज की स्थितियाँ, हिन्दुओं की स्थिति तथा मुसलमान शाहजादों एवं शाहजादियों की धन एवं विषय-लोलुपता का विशद् वर्णन किया गया है। बलदेव प्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में भारतीय नारी की धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ सनातन धर्म की सामाजिक व्यवस्था एवं धार्मिक विश्वासों का उत्तम चित्रण किया गया है। महारानी पद्मिनी के, अलाऊद्दीन की विजय के पश्चात् जौहर व्रत धारण करने पर विवेच्य युग में लगभग आधी दर्जन ऐतिहासिक उपन्यासों का निर्माण किया गया। नारी की पवित्रता की प्राचीन मान्यता को नवशास्त्रीयवाद के अनुसार पुनः जीवित करने में शेरसिंह के उपन्यास "आदर्श वीरांगना दुर्गा" का स्थान महत्त्वपूर्ण है इसमें एक क्षत्रिय कुल सुन्दरी की ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया गया है। जिसने बहनोई द्वारा छुए जाने के कारण अपना हाथ काट कर फेंक दिया था।

(घ) **धार्मिक पक्ष**—धर्म एवं संस्कृति यद्यपि मानवीय समाज का ही अभिन्न अंग है, तथापि मध्य युगों में धर्म मनुष्यों के विचारों तथा कार्यों को इतना अधिक प्रभावित करता रहा है कि वह स्वयंमेव मानवीय अतीत के अध्ययन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष बन गया है। विभिन्न धार्मिक आन्दोलन तथा समुदाय ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह को समय-समय पर दिशा प्रदान करते रहे हैं। समस्त मानवीय कार्यों तथा प्रयोजनों को नियोजित करने वाली एक अलौकिक प्रभुसत्ता की परिकल्पना लगभग सभी धार्मिक समुदायों के मूल विश्वासों का निर्माण करती है। अतीत के मनुष्यों के अधिकाँश कार्य धार्मिक नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा ही निर्देशित होते थे। इसाई एवं इस्लाम मत के अनुयायियों की महान विश्व-विजयें, मानवीय अतीत की खोज की प्रक्रिया में धार्मिक पक्ष की महत्ता का प्रमाण है।

नेमियर के मतानुसार, ईसाई ब्रह्मशास्त्र में वर्णित दिव्य प्रकाशन के द्वारा ही ऐतिहासिक घटनाओं के अर्थ को विचारवान् बनाने का एक यथेष्ट आधार प्रदान किया जा सकता है।[1] लगभग यही धारणा भारतीय इतिहास-चेचना में भी उपलब्ध होती है। उसका वर्णन कला रूप इतिहासकारों की परम्परा में किया जा चुका है।

विवेच्य उपन्यासों में मध्य युगीन भारत के समाज की धार्मिक स्थिति एवं अवस्था का विशद वर्णन करने के साथ-साथ पात्रों के विचारों तथा कार्यों पर धर्म

1. W H. Dray— 'Philosophy of History".
(Prentice Hall, Inc Englewood Cliffs N.J. 1964) p. 98.

के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव का चित्रण उल्लेखनीय है। 'पानीपत' में 'पार्वती जी का मन्दिर' अध्याय में मन्दिर का चित्रण सारे समाज तथा संस्कृति के केन्द्र बिन्दु, के रूप में किया गया है। इस बिन्दु के चारों ओर राजनीति, धर्म तथा दर्शन का चक्र निरन्तर घूमता है। महाराज हरिदास का संगीत तथा दार्शनिक विवाद, भारतीय सनातन धर्म की मान्यताओं को मुखर करते हैं। (पृष्ठ 25–35) पूजा गृह के वर्णन में (पृष्ठ 82–84) धार्मिक क्रियाकलापों का शास्त्रीय विवेचन किया गया। उपन्यास के पात्र हिन्दू हों या मुसलमान, सभी धार्मिक निमित्तों तथा प्रयोजनों के प्रति प्रतिबद्ध हैं, उनके लगभग सभी कार्य धार्मिक चेतना से अनुप्राणित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं (जय हो या पराजय) के घटित होने के लिए भगवान अथवा खुदा उत्तरदायी है। (पृष्ठ 286–273) 'लालचीन', 'रजियाबेगम', 'तारा', 'काश्मीर पतन', 'वीरमणि' आदि उपन्यासों में भी धार्मिक पक्ष का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(ङ) **सांस्कृतिक पक्ष**—संस्कृति मनुष्य-जीवन का उदात्त एवं ऊर्ध्वोन्मुखी पक्ष है। इतिहास-खोज की प्रक्रिया में मानवीय अतीत के सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन, इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार को, सांस्कृतिक अतीत के चित्रण के साथ-साथ, उनके स्वयं के जीवन-दर्शन को उद्घाटित करने का भी आधार प्रदान करता है। इस पक्ष के अन्तर्गत शिक्षा, ललित कलाओं, साहित्य तथा धार्मिक मान्यताओं के अतीत का अध्ययन किया जाता है। अतीत के मनुष्यों की जीवन-पद्धति चर्चा, रंगमंच, वास्तुकला, संगीत कला, वेषभूषा, खानपान तथा सबसे अधिक उनकी जीवन के विविध पक्षों के प्रति धारणाएँ ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए विशेष रुचि का विषय हैं। इसी सांस्कृतिक आधार पर, उपन्यासकार, इतिहास की व्याख्या के रूप में ऐतिहासिक उपन्यास का सृजन करता है।

प्रेमचन्द-पूर्व-ऐतिहासिक उपन्यासों में मध्य युगीन भारत के जन-जीवन के अनेक सांस्कृतिक चित्र उपलब्ध होते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों—'तारा' व 'रजिया बेगम' में हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों के सम्मिलन तथा टकराहट का अत्युत्तम चित्रण किया गया है। 'तारा' में जहानआरा तथा तारा, वाल्मीकि की रामायण व गीता तथा कुरान शरीफ़ आदि पर वार्तालाप करती हैं। गोस्वामी जी की हिन्दू-निष्ठ प्रवृत्ति मुसलमानों के मुख से भी हिन्दू धर्म पुस्तकों तथा परिपाटियों की प्रशंसा करवाती है। इनके विपरीत 'पानीपत' में हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों की प्रबल टकराहट का सशक्त चित्रण किया गया है। हिन्दू धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा सनातन धर्म की मान्यताओं द्वारा अनुप्राणित मराठा सेना तथा उसका मुख्य सेनापति सदाशिवराव भाऊ सारे भारत से मुसलमानों को निकाल कर 'रूम तथा शाम' तक हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना चाहते हैं। इसके विरोध में अहमदशाह दुर्रानी सारे भारत पर मुसलमानी झण्डा फहराने की महत्त्वाकांक्षा लेकर तूफानी जोर से युद्धगामी होता है। पार्वती जी के मन्दिर में महाराज हरिदास जी

के प्रवचन (पृष्ठ 30) तथा साईं साहिब शाह का अहमद शाह को मिट्टी के सिंहासन पर बिठा कर घास का ताज देते समय भाग्य की गरिमा का वर्णन (पृष्ठ 238) दोनों संस्कृतियों के स्वधर्म-परक परस्पर विरोध को स्पष्ट करते हैं। मथुरा के मन्दिरों पर मुसलमानों के क्रूर आक्रमणों तथा देवमूर्तियों पर कुठाराघात करने तथा मराठा सैनिकों की इसके प्रति प्रतिक्रिया (पृष्ठ 212-215) दो विरोधी संस्कृतियों की टकराहट को उजागर करती हैं। लालचीन, वीरमणि, प्रणपालन, वीर चूड़ामणि, भीमसिंह आदि उपन्यासों में इन्हीं दोनों संस्कृतियों के स्वरूप के अन्यान्य पक्ष उभरे हैं।

(1) इतिहास व्याख्या के रूप

इतिहास-खोज की प्रक्रिया में इतिहासकार अपनी 'सामग्री की छानबीन करने के पश्चात् उपयुक्त एवं युक्ति संगत तथ्यों का चुनाव करते हैं। इस प्रकार चुने गए तथ्य स्वयं इतिहास नहीं होते प्रत्युत इतिहासकार के इतिहास की सामग्री होते हैं। कार्य-कारण शृंखला में बद्ध करने तथा एक विशिष्ट इतिहास दर्शन द्वारा अनुप्राणित होने के पश्चात् ही यह चुने हुए तथ्य इतिहास-लेखन के कार्य में प्रयुक्त किए जाते हैं। अपनी सामग्री को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया में इतिहासकार व्याख्याएँ करते हैं, जो उनकी खोज के परिणामों तथा एक विशिष्ट काल-खण्ड के विवरण को बुद्धिगम्य तथा अर्थवान बनाती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा व्याख्या किए जाने की प्रक्रिया यद्यपि मूलतः ऐतिहासिक व्याख्याओं की ही कोटि में आती है, परन्तु वह अपने उद्देश्य तथा चरित्र में भिन्न होती है।[1]

हेंपल (**Hempel**) के मतानुसार सभी विज्ञान-परक व्याख्याओं की एक सामन्य फार्म होती है, यह तार्किक रूप से व्याख्यायित की जानी चाहिए। विज्ञान-परक व्याख्याएँ दो प्रकार की होती हैं। प्रथम व्यक्तिगत घटनाओं की व्याख्या द्वितीय सामान्य नियमों की व्याख्या जो एम्पायरीकल साक्ष्य द्वारा स्थापित किए गए हैं।[2] यदि यह माना जाए कि एक व्याख्या तार्किक रूप से यह स्पष्ट न करे कि वह क्या व्याख्यायित करती है, और वह कई सम्भावनाओं को लिए हुए ही चले तो कठिनाई यह होगी कि अन्य सम्भावनाएँ सत्य क्यों नहीं हो पाईं। इसी प्रकार

1. देखिए "Problem of History and Historiography." p. 18.
   "इतिहास के साक्ष्य उसकी अपनी बनावट की सीमा के बाहर के होते हैं जबकि उपन्यास में साक्ष्य आन्तरिक होता है, तथा इसके ढांचे से बाहर कुछ भी अस्तित्ववान नहीं, होता तथा उसकी कार्य-कारण शृखला स्वयं में पूरी होती है जैसा कि इतिहास लेखन में भी है। इतिहास लेखन में साक्ष्य ढूंढ कर, उसे अपने पूरे ढाँचे तथा विवरण की सत्यता को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त करना पड़ता है।"
2. Alan Donagan "Explanation in History" reprinted in "Theories of History" p. 428–29.

व्यक्तिगत घटनाओं का अध्ययन करते समय इतिहासकार को यह देखना होता है कि अतीत में मनुष्यों ने एक निश्चित कार्य के अतिरिक्त अन्य सम्भावित कार्य क्यों नहीं किए।

मानवीय अतीत का अध्ययन करते समय इतिहासवेत्ता अन्यान्य प्रकार की व्याख्याएँ करते हैं। विलियम एच० ड्रे० के इतिहास दर्शन (फिलासफी आफ हिस्ट्री) में तीन मुख्य ऐतिहासिक व्याख्याओं का विवरण दिया गया है—हीगल की आध्यात्मिक (मेटा-फीज़िकल) व्याख्या, आर्नल्ड जोसेफ़ ट्वायनवी की अनुभव-परक व्याख्या (एम्पायरीकल) तथा रेनहोल्ड नेब्हर की धार्मिक व्याख्या। यहाँ इन का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हीगल सम्पूर्ण मानवता के विकास के अध्ययन के रूप में इतिहास के विश्वजनीन स्वरूप के प्रतिपादक थे।

अनेक उद्देश्यों, विश्वासों तथा इरादों को व्याख्यात्मक प्रक्रिया में प्रयोग में लाने के लिए हीगल बुद्धि को ही एजेंट के रूप में स्वीकारते हैं। हीगल के अनुसार 'बुद्धि' ही एक उच्चत्तर उद्देश्य के लिए व्यक्तियों के भावावेगों का 'प्रयोग' करती है, 'बुद्धि ही राज्य का स्वरूप 'ग्रहण' करती है, 'बुद्धि ही उन की प्रक्रिया में 'स्वयं से संघर्ष' करती है, 'बुद्धि में ही स्वतन्त्रता का विकास, उसके 'पूर्ण लक्ष्य के रूप में होता है।'[1]

इस प्रकार हीगल के मतानुसार इतिहास प्रक्रिया का मुख्य एजेंट 'बुद्धि' है। इतिहास की तार्किकता तथा अन्तिम अर्थ विश्व बुद्धि के विकास की प्रक्रिया में ही पाया जा सकता है।

ट्वायनवी हमारे युग का एक महान इतिहास-दार्शनिक है, जिसने अनुभव-परक इतिहास-व्याख्या के विचार को जन्म दिया। उसका यह दावा है कि वह अपने अन्तिम निर्णयों को अपनी 'अनुभव परक सर्वे की विश्वासनीय तथा प्रिय पद्धति' द्वारा ही रूपायित करते हैं। 'वह' इतिहास के बहुत से नियम स्थापित करते हैं तथा सम्भाव्य आलोचना की रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् के अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्र में जातीय राष्ट्रीयता के स्थान पर सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित महान् देशों की धारणा तथा महाद्वीप वाद[2] की भावना सशक्त हो उठी थी। इसी से प्रभावित होकर ट्वायनवी ने राष्ट्रों के स्थान पर सभ्यताओं को इतिहास-अध्ययन की एक बुद्धिगम्य इकाई के रूप में

1. W. H. Dray, P. 79-80. P. P. 25, 17, 55, 37–"Lectures on the Philosophy of History." Sibri Translation. Edited by C. J. Friedrich. (New York: Dover Publications, Inc. 1956.)
2. बुद्धप्रकाश, 'कोंटीनेंटलिजम इन वर्ल्ड पोलिटिक्स', मॉडर्न रिव्यू देखिए बुद्धप्रकाश: "इतिहास दर्शन": पृष्ठ 305 (1947).

निर्धारित किया और जगत् को पाँच सभ्यताओं में विभाजित किया—पश्चिमी यूरोप अथवा पश्चिमी ईसाइयत, पूर्वी यूरोप अथवा बाइजेन्ताइन अथवा पूर्वी ईसायत, इस्लाम, भारत (हिन्दू) और सुदूर पूर्वी जगत। इन सभ्यताओं के पीछे क्रमशः यूनानी (हेलेनिक), सीरियाई, हिन्दी (इण्डिक) और चीनी (सीनिक) सभ्यताएँ, प्रच्छन्न हैं। ये प्राचीन सभ्यताएँ भी क्रमशः मिनोयन बेबीलोनियन हिट्टी सभ्यताओं पर आधारित हैं।[1]

इन सभ्यताओं के और भी भेद-उपभेद कर कुल 29 सभ्यताओं को अध्ययन का विषय बनाया गया है। **ट्वायनबी** ने सभ्यताओं के उदय तथा उनकी गति के 'चुनौती (चेलेंज) तथा प्रतिक्रिया (रेस्पोंस) की धारणा का प्रतिपादन किया। इसके लिए उसने गेटे के फाउस्ट, युंग के मनोविज्ञान तथा अनेक प्राचीन कथानकों का आश्रय लिया है।[2] इस पर भी कई आपत्तियाँ हैं। चुनौती तथा प्रतिक्रिया की धारणा से आदिम जातियों तथा सभ्यताओं के अन्तर को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

सभ्यताओं के विकास तथा ह्रास के सम्बन्ध में भी ट्वायनबी की मान्यताओं की आलोचना की गई है। वे सभ्यताओं के ह्रास की प्रक्रिया में संघटन (रैली) तथा विघटन (राउट) की एकान्तर (alternative) प्रक्रिया के प्रतिपादक हैं। इसमें विघटन, संघटन-विघटन, संघटन, विघटन-संघटन-विघटन की साढ़े तीन बार आवृत्ति होने के पश्चात् भाषा, धर्म, कला तथा साहित्यों का समन्वय होने के पश्चात् एक 'सार्वभौमिक राज्य' की उत्पत्ति की स्थिति उन्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय चर्च अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ट्वायनबी की इतिहास-खोज तथा मनन की पद्धति को कवि एवं दर्शक पद्धति[3] कहा गया है। परन्तु ट्वायनबी की इतिहास-धारणा अथवा 'अनुभव परक इतिहास-दर्शन' स्वयं में एक अर्थवत्ता लिए हुए है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें इतिहास के ज्ञात विवरणों पर विशेष जोर दिया जाता है ताकि वे सम्बद्ध किए जाने वाले प्रयोजन के प्रति बुद्धिगम्य हों, अथवा ऐसी पद्धति जिसमें दार्शनिक, ऐतिहासिक सामग्री (डाटा) का बिना किसी पूर्वनिर्मित कल्पना (हाइपोथिसिस) के अध्ययन करता है, तथा प्रयत्न करता है कि सामग्री स्वयं ही उसके प्रश्नों के उत्तर दे।[4] ट्वायनवी की यह अनुभव परक खोज प्रणाली अन्य मननशील इतिहास-दार्शनिकों से उन्हें एकदम अलग करती है।

1. 'इतिहास दर्शन' : डॉ. बुद्धप्रकाश, पृष्ठ 305.
2. वही, पृष्ठ 308.
3. W. H. Dray : Philosophy of History, Page 90.
4. वही, पृष्ठ 66.

यह सत्य है कि कई बार ट्वायनबी के नियम अन्यान्य ऐतिहासिक परिस्थितियों पर लागू नहीं भी होते। इसे वे स्वयं भी स्वीकार करते हैं। सभ्यताओं के उद्गम तथा विकास की प्रक्रिया को ट्वायनबी ने रहस्यमयी स्वीकार किया है। कोई ऐसा अज्ञात तत्त्व इतिहास में काम करता है, जो योद्धाओं और अभिनेताओं के ज्ञान के बाहर होता है।''''यह तत्त्व कार्यकर्ताओं पर परीक्षा की प्रतिक्रिया है,''''यह मनोवैज्ञानिक स्थिति नाप-तोल के योग्य नहीं होती। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से पहले नहीं बताई जा सकती[1]।'

(2) लेखन की प्रक्रिया

इतिहासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार के अध्ययन की वस्तु अनुपस्थित होती है। लेखक वर्तमान में उपलब्ध सामग्री की सहायता से ही मानवीय अतीत का अध्ययन कर उसका पुनः प्रस्तुतिकरण करते हैं। उनकी सामग्री में दस्तावेज, संस्मरण, आर्थिक संगठन के अवशेष, कानून परम्परायें, विश्वास, संस्थाएँ, मिथक तथा साहित्य[2] आदि मुख्य हैं और ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखला एवं प्रकृति जानने के लिए उन्हें इन साक्ष्यों का आश्रय लेना पड़ता है।

सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार दस्तावेज़ तथा आँकड़े एकत्रित करता है। दस्तावेज, जो लिखित अथवा अलिखित रूपों में होते हैं, अतीत के मनुष्यों के कार्यों तथा विचारों के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं। लिखित दस्तावेज़ अभिलेख कर्ता की मानसिक समझ तथा बौद्धिक योग्यता पर निर्भर करते हैं। अलिखित साक्ष्यों में रीति रिवाज, समाज का आर्थिक गठन, सामाजिक व धार्मिक कार्य मुख्य हैं तथा मौसमी परिवर्तन, भूगर्भीय बनावट एवं वास्तुकला के अवशेष गौण साक्ष्य हैं, जो लेखक को तथ्यों का चुनाव करने में अत्यन्त सहायक होते हैं।

उपलब्ध सामग्री से उपन्यासकार तथ्यों का संकलन करता है। बहुत से तथ्यों में से आवश्यकता तथा महत्त्व की दृष्टि से तथ्यों का चुनाव करता है। चुनाव की यह प्रक्रिया तथ्यों को एक अतिरिक्त महत्त्व प्रदान करती है, चुने गए तथ्य ऐतिहासिक महत्त्व के तो अवश्य होते हैं, परन्तु उनकी निर्वैयक्तिकता संदिग्ध होती है क्योंकि वे चुनाव करने वाले व्यक्ति की धारणा एवं रुचि के परिणाम स्वरूप ही चुने जाते हैं। इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार दोनों का तथ्यों के चुनाव के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होगा। इतिहासकार को अपने समस्त निर्णयों, अनुमानों तथा विवरणों को बाह्य साक्ष्यों द्वारा[3] सत्य सिद्ध करना होता है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार की रचना स्वयं में मुकम्मल होती है और उसका अपना एक विधान होता है। उपन्यासकार कई बार कई ऐतिहासिक घटनाओं को छोड़ भी सकता है। इनके स्थान पर वह कल्पना-परक घटनाओं का निर्माण भी

1. A study of History, Toynbee, Part 1, pp. 300-301.
2. "The Problem of History and Historiography." V. V. Joshi, Page 54
3. "The Problem of History & Historiography", by V. V. Joshi, Page 18.

करता है। यह बहुधा ऐतिहासिक सत्यों के उद्घाटन के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए वह कई अनैतिहासिक पात्रों का सृजन भी करता है।

तथ्यों के चुनाव के पश्चात् उन्हें कार्य-कारण-शृंखला मे बद्ध किया जाता है, तथा उनका विश्लेषण किया जाता है। अन्यान्य घटनाओं एवं तथ्यों के संकलन को अधिकाधिक बुद्धिगम्य एवं अर्थवान बनाने के लिए इनका विश्लेषण एवं व्याख्या किसी विशिष्ट इतिहास दर्शन अथवा जीवन-दर्शन, जीवन दृष्टि के अनुसार की जाती है।

प्रेमचन्द पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना प्रक्रिया का अध्ययन चौथे अध्याय में किया गया है।

(क) **सामान्यीकरण करना**—ऐतिहासिक घटनाएँ नितान्त अनन्य तथा विशिष्ट होती है। वे अपने चरित्र तथा गुणों में इतनी वैयक्तिक होती है कि उनकी इकाई न तो भग की जा सकती है और न ही उसका अन्य घटनाओं से सामान्यीकरण किया जा सकता है। मानवीय अतीत का अध्ययन करते समय इतिहासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार एक ही प्रकार की (एक जैसी नही) घटनाओं में सामान्यीकरण स्थापित करते है। भाषा का प्रयोग इतिहासकार को सामान्यीकरण के प्रति प्रतिबद्ध[1] कर देता है। परन्तु ऐसा करते हुए भी वह सामान्यीकरण द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता।[2]

ई० एच० कार के मतानुसार, इतिहासकार अपने साक्ष्य की परीक्षा करने के लिए निरन्तर सामान्यीकरण का आश्रय लेता है। इतिहास के पाठक तथा लेखक,दोनों ही चिर-सामान्यीकरण करने वाले है—वे इतिहासकार के निरीक्षण को अन्य ज्ञात ऐतिहासिक संदर्भो पर या कदाचित अपने युग पर लागू करते हैं। यह कहना वेहूदा होगा कि इतिहास मे सामान्यीकरण नहीं हो सकता,इतिहास सामान्यीकरण के आधार पर ही उभरता है।[3]

1. See E. H. Carr. What is History, Page 63.
"भापा के प्रयोग मात्र से ही इतिहासकार वैज्ञानिक के समान साधारणीकरण के प्रति प्रतिवद्ध हो जाते हैं। पेलापानिजियन युद्ध तथा द्वितीय विश्व युद्ध मे वहुत अन्तर था, तथा दोनो अनन्य थे। परन्तु इतिहासकार दोनो को युद्ध कहते हैं तथा केवल विद्याडवरी ही इसका विरोध करेगा। गिब्बन ने केस्टेनटाइन द्वारा ईसाई मत के सगठन तथा इस्लाम के उदय को क्रातियाँ कहा था। उमने दो अनन्य घटनाओं का सामान्यीकरण किया : आधुनिक इतिहासकार ब्रिटिश फ्रांसीसी, रूसी तथा चीनी क्रान्तियों के वारे में लिखते समय यही करते हैं।"
2. ऑकशाट के अनुसार, "सामान्यीकरण द्वारा व्याख्या करना कभी भी इतिहास की पद्धति नही है।" ऐतिहासिक समझ सदैव वृहत्तर तथा अधिक मुकम्मल विवरण द्वारा ही अधिक स्पष्ट होती है। Quoted in "Philosophy of History", W.H. Dray, Page 9.
3. E H. Carr : What is History, Page 63-64.
(What distinguishes the historian from the collector of Historical facts is generalization. Mr. Elton-'Cambridge Modern History,' ii (1958) Page 20.

सामान्यीकरण का वास्तविक विन्दु यह है कि हम इतिहास से कुछ शिक्षा लेते हैं। घटनाओं के एक समूह से प्राप्त की गई शिक्षाओं को घटनाओं के अन्य समूह पर लागू करते समय जब हम सामान्यीकरण करते हैं तो हम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामान्यीकरण करते है ।

इतिहास लेखन में इतिहास दर्शन के अन्तर्गत के सभी सार्वजनिक आचरणों का सामान्यीकरण किया जाता है तथा कुछ निरपेक्ष या सापेक्ष निष्कर्ष निकाले जाते हैं ।[1]

इतिहास लेखन में ही नहीं इतिहास के कलारूप में भी सामान्यीकरण किए जाते हैं। मानवीय अतीत का पुनः सृजन करते समय ऐतिहासिक रोमाँसकार मानवीय प्रवृत्तियों, विचारों, रुढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का भावावेगात्मक वर्णन करते समय सामान्यीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं। इस प्रकार वे आधुनिक तथा अतीत के मनुष्यों के लगभग सभी मौलिक एवं शाश्वत विचारों, कार्यकलापों तथा भावावेगों का सामान्यीकरण करते हैं। विवेच्य रोमाँसकारों ने मानवीय भावनाओं एवं कामनाओं का सामान्यीकरण किया है ।

(ख) **प्रवृत्तियाँ देखना (युग के मानदण्ड)**—इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत खोज की प्रक्रिया के समय अध्ययन किए जाने वाले युग की मुख्य प्रवृत्तियों का निश्चयन करते है। यह उस विशिष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड, जो स्थान तथा काल की एक निश्चित सीमा में बद्ध होता है कि जनता के जीवन यापन के मानदण्ड होते हैं, जो उसके सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा नैतिक जीवन का नियोजन करते है। "इतिहासकार अक्सर मनुष्यों के कार्यो को उनकी योजनाओं, स्कीमों व इरादों के संदर्भ में जाँचते हैं तथा इनको लागू करने पर क्या उपलब्धि होगी के आधार पर वे अक्सर इनकी व्याख्या करते है।[2] मनुष्यों ने अन्य संभावित कार्यों के स्थान पर एक निश्चित कार्य ही क्यों किया। इस मूल सिद्धान्त द्वारा रूपायित प्रवृत्तियों का अध्ययन, ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपनी सामग्री के प्रस्तुतिकरण मे वैज्ञानिकता तथा बुद्धिगम्यता लाने में सहायक होता है।

नियम एवं मानदण्ड यद्यपि परिस्थितियों द्वारा प्रतिबंधित होते है, तथापि एक विशिष्ट ऐतिहासिक युग का बहुमुखी अध्ययन करने के लिए इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार नियमों एवं मानदण्डों का निर्माण करते है। यह विवेच्य युग की मुख्य प्रवृत्तियों तथा लेखक के युग की मुख्य धारणाओं की अन्तर्प्रक्रिया तथा अन्तर्सम्बन्धों के सम्मिलन द्वारा निश्चित किए जाते है ।

1. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृष्ठ 339.
2. Alan Donagan. "Explanation in History." reprinted in 'Theories of History' ed. by Patrick Gardiner, Page 436.

ऐतिहासिक उपन्यासकार युग की प्रवृत्तियों के गहन अध्ययन के पश्चात्, अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा द्वारा ऐतिहासिक सत्यों का उद्घाटन करते हैं। इस सृजनात्मक कल्पना की सहायता से वे ऐतिहासिक युग की विशिष्ट प्रवृत्तियों को ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक अथवा,बहुधा,अनैतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं के अन्यान्य क्रिया-कलापों तथा विवरणों द्वारा युग का एक चित्र उपस्थित करते है—यही अतीत का पुनः प्रस्तुतिकरण अथवा पुनः सृजन होता है। विवेच्य उपन्यासों में मध्य युगीन भारत की धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, सौन्दर्य शास्त्र संबंधी तथा राजनैतिक प्रवृत्तियों का अध्ययन कतिपय मध्य युगीन एव लेखक-युगीन मानदण्डो के आधार पर किया गया है। इसी प्रक्रिया द्वारा ऐतिहासिक सत्यों का उद्घाटन एवं ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण उनकी उल्लेखनीय उपलब्धि है।

(ग) **नियम पाना**—ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया के पीछे क्या कोई विशेष नियम कार्यशील है। इतिहास-विचारक इस विषय पर, इतिहास प्रक्रिया की अर्थवत्ता के संदर्भ मे अध्ययन करते है। यदि मानवीय अतीत किसी विशिष्ट नियमपरक प्रतिबंधात्मक शक्ति द्वारा नियोजित अध्ययन का एक बुद्धिगम्य विषय है, तो निश्चय ही ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा इतिहासकार कुछ नियम पाते है। यह नियम मानवीय अतीत तथा इतिहास प्रक्रिया के नियामक तत्त्व होते है।

ऐतिहासिक परिवर्तनों को नियोजित करने वाले प्रबन्धों मे निश्चयवाद अथवा स्वेच्छावाद की दार्शनिक मान्यताएँ मुख्य है।

नियम पाने की समस्या, सामान्यीकरण की समस्या से गहन रूप में अन्तर्सबंधित है। ऐतिहासिक घटनाओ की अनन्यता तथा उनके सामान्यीकरण के विषय पर पहले ही विचार किया जा चुका है। जिस प्रकार प्रत्येक ऐतिहासिक घटना का सामान्यीकरण किया जा सकता है, उसी प्रकार इतिहास खोज की सामग्री के अत्यन्त विभिन्न रूपा होने पर भी कतिपय सामान्य नियमों की खोज की जा सकती है जिनके आधार पर इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने विषय का अर्थवान् अध्ययन कर सकते है। यह सामान्य नियम इतिहास की सामग्री मे से ही प्राप्त किए जा सकते है तथा ये ऐतिहासिक रूप से प्रतिबंधात्मक भी हो सकते हैं।

(घ) **निर्णय देना भविष्यवाणी करना**—ऐतिहासिक घटनाओं एव तथ्यों के एकत्रीकरण, चुनाव, विश्लेषण तथा सामान्यीकरण करने के पश्चात् उनका बहुमुखी अध्ययन किया जाता है, उनकी प्रवृत्तियों का निश्चयन एव युग के मानदण्डों का सिंहावलोकन किया जाता है। ऐतिहासिक प्रक्रिया के नियोजक प्रबन्धों तथा प्रणालियों को निर्धारित करके इतिहासकार समस्त उपलब्ध सामग्री को जाँचता है। इस प्रकार खोज करने के पश्चात् वह कई निर्णय करता है। स्पष्ट है कि यदि समस्त अध्ययन करके इतिहास-विचारक कोई निर्णय नही लेता तो उसका अध्ययन अपूर्ण रह जाता है।

इतिहासकार का ऐतिहासिक समस्याओं के सम्वन्ध में निर्णय देना, इतिहास दर्शन का अत्यन्त विवादास्पद विषय है। **सर इसाया वर्लिन** के मतानुसार[1] "हमें यह वताया गया है कि हम प्रकृति, परिवेश या इतिहास के उत्पादन हैं तथा यह हमारे स्वभाव (टेंपरामेंट), हमारे निर्णयों, हमारे सिद्धान्तों को प्रभावित करता (रंगता) है। प्रत्येक निर्णय सापेक्ष है। प्रत्येक मूल्यांकन व्यक्तिपरक है.... हमारा आशय है कि साक्ष्य के मूल्यांकन की उचित पद्धतियों की वहुत सीमा तक उपेक्षा की जाती है.... हमारे यह सोचने के कारण हैं कि इतिहासकार कुछ निश्चित निर्णय, साक्ष्य द्वारा औचित्यपूर्ण ठहराए गए कारणों के अलावा के कारणों से, उसके अथवा हमारे काल में निर्मित समझे जाने वाले वैध तर्क-साध्य ढंग के अनुसार स्थापित करता है तथा इसने उसे उसके क्षेत्र में तथ्यों के साक्ष्यांकन तथा निर्णयों को सिद्ध करने के मानदण्ड तथा पद्धतियों के प्रति (अन्वा) उपेक्षापूर्ण वना दिया है।.... साक्ष्यों की तुलना के नियम भी वदलते रहते हैं क्योंकि एक युग की स्वीकृत सामग्री उनके दूरवर्ती अग्रजों को कम अनुभव होती है।"

यह तथ्य इतिहासकारों के निर्णय की अल्पायु के संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि आने वाले युग के इतिहास-विचारकों के लिए पहले के युग के इतिहास-विचारकों के निर्णय कम महत्त्वपूर्ण हो जाएंगे।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इतिहासकार को निर्णय देने ही नहीं चाहिए प्रत्युत उसे ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं पर नैतिक निर्णय नहीं देने चाहिए।[2] **मैक्सवेवर** के मतानुसार इतिहासकार को संस्थाओं पर नैतिक निर्णय देने चाहिए न कि उसका निर्माण करने वाले व्यक्तियों पर।[3] ऐतिहासिक तथ्य व्याख्या के किसी मानदण्ड की पूर्व कल्पना को लेकर चलते हैं तथा ऐतिहासिक व्याख्याएं सदैव नैतिक निर्णय लिए होती हैं—अथवा, यदि आप अधिक तटस्थ पद चाहते हैं, तो इन्हें मूल्य निर्णय कह सकते हैं।[4] इतिहास संघर्ष की प्रक्रिया है, जो निर्णयों को जन्म देती है।

1. Sir Issiah Berlin, " The possibility of objective evaluations" reprinted in "Theories of History" ed by Patrick Gardiner, Page 324.
2. E. H. Carr "What is History" Page 76
   यहाँ प्रो० कार ने आर्नल्ड जोसेफ ट्वायनवी तथा इसाया वर्लिन का उदाहरण देते हुए लिखा है कि—"ट्वयानवी ने मुसोलिनी के 1935 में ऐवीसीनिया पर आक्रमण को जानवूझ कर किया गया 'व्यक्तिगत पाप' कहा है।" इसाया वर्लिन—"यह इतिहासकार का कर्त्तव्य है कि वह चार्लमागने या नैपोलियन या चंगेज खान या हिटलर या स्टालिन को उनके सामूहिक कत्लों के लिए जांचें।"
3. Max Waber : 'Essay in Sociology' (1947), Page 58.
4. See-E. H. Carr. What is History. Page 79.
   "The possibility of objective evaluation". Berlin reprinted in "Theories of History" Page 327. "It follows, that we must, if we are to judge fairly adequate evidence before us, possess sufficient imagination, sufficient sense of home institutions develop, how human beings act and think."

निर्णय करने के लिए **इसाया बर्लिन** उचित साक्ष्य, पर्याप्त कल्पना, ऐतिहासिक ज्ञान रखने तथा पूर्वाग्रही न होने की शर्तें रखते हैं। अपने निर्णय को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए इतिहासकार को प्रत्येक बिन्दु पर साक्ष्य प्रस्तुत करने चाहिए। विशेषतः नैतिक-मामलों पर अपना निर्णय देते समय इतिहासकार को अपने युग की ही नहीं प्रत्युत विवेच्य जनता के युग तथा देश की नैतिक मान्यताओं तथा विश्वासों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इतिहास में किये गये निर्णयों को "अच्छा" या "बुरा" के स्थान पर "उदार" अथवा "अनुदार" आदि कहा जा सकता है।

कतिपय इतिहास-विचारकों का मत है कि मनुष्य इतिहास का अध्ययन करके अपने मानस में मानवीय विकास की प्रक्रिया का एक प्रतिरूप बना लेते हैं, जिसकी सहायता से वे अतीत के प्रकाश में वर्तमान की बेहतर समझ प्राप्त करते हैं तथा भविष्य के प्रति अधिक जागरूक हो सकते है। कई बार कई इतिहास दार्शनिक भविष्य-वाणी को इतिहासकार का ही कार्य स्वीकार करते हैं। काण्ट इतिहासकार द्वारा भविष्यवाणी किए जाने के पक्ष में है, जबकि हीगल व शीलर इसके विरुद्ध हैं।[1]

विवेच्य उपन्यासकारों ने लगभग प्रत्येक बिन्दु पर ऐतिहासिक, नैतिक एवं राजनैतिक समस्याओं के संबंध में निर्णय दिये हैं। भविष्यवाणियाँ करने में भी ब्रजनन्दन सहाय, बलदेवप्रसाद मिश्र तथा किशोरीलाल गोस्वामी ने पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। परन्तु इन भविष्यवाणियों का स्वरूप एवं उद्देश्य इतना विविध रूपेण है कि उनकी भविष्यवाणी की ऐतिहासिक स्वरूप से समता करना कई स्थानों पर कठिन हो जाता है। उदाहरणतः बलदेवप्रसाद मिश्र, स्वप्नों तथा मनोविज्ञान द्वारा भविष्य की संभावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं, ब्रजनन्दन सहाय अन्त में बुराई पर भलाई की विजय होने की शक्ति द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की संभावित प्रक्रिया का अनुमानिक विवरण देते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी मुख्य पात्रों के संबंध में यह कह कर भविष्यवाणी करते हैं कि अमुक पात्र (रजिया) इस कर्म का फल भोगेगी। वे पात्रों द्वारा भी उसके पतन की भविष्यवाणी करवाते हैं। इसी प्रकार, अन्य उपन्यासकार भी स्वयं या पात्रों के माध्यम से भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओं के संबंध में भविष्यवाणी करते हैं।

(ङ) **लेखक का दृष्टिकोण-अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना बनाम सत्य की तथ्यात्मकता**— इतिहास-व्याख्या की प्रक्रिया में इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार का दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटक है। अतीत के संबंध में सर्वाधिक आवश्यक बिन्दु यह ही नहीं है कि अतीत में वास्तव मे क्या घटित हुआ था बल्कि महत्त्वपूर्ण यह भी

1. देखिए-"इतिहास-दर्शन", डॉ० बुद्धप्रकाश, पृष्ठ 170.
"किन्तु इतिहास दर्शन का उद्देश्य भविष्य का अनुमान करना नहीं है। यह वर्तमान के अनुसधान तक सीमित है। इस विषय मे हेगल, का न्तके विरुद्ध तथा शीलर के निकट पहुँच जाते है।"

है कि लेखक अतीत की ओर किस दृष्टिकोण से दृष्टिपात करता है। इस प्रकार लेखक की जीवन दृष्टि अथवा जीवन दर्शन उसके लेखन को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। इतिहास लेखन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में लेखक का दृष्टिकोण व्याप्त होता है, उसकी खोज तथा निर्णय इसी से अनुप्राणित होते हैं।

रोमाँसपरक इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक रोमाँसकार अतीत की घटनाओं को अतिशयोक्तिपूर्ण शैली द्वारा चित्रित करते हैं। प्रयोजनवादी (Positivists) तथा शैक्षणिक (Academic) स्कूल के इतिहासकार घटनाओं के यथातथ्य प्रस्तुतिकरण के पक्ष में हैं। लेखक के दृष्टिकोण की समस्या उसके द्वारा तथ्यों के सामान्य समूह में से ऐतिहासिक तथ्यों के चुनाव की समस्या से अन्तर्सवंधित है। अतीत खोज की प्रक्रिया में लेखक बहुत-सी सामग्री का चयन करने के पश्चात् जब ऐतिहासिक तथ्यों का चुनाव करते हैं, तो इस प्रक्रिया में लेखक का दृष्टिकोण चुनाव की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। चुनाव की स्वायत्तता[1] के पक्ष में वास्तुकलावादी तथा विरोध में प्राचीन इतिहास-लेखक तथा इतिहास को लोकप्रिय बनाने वाले थे। यदि इतिहासकार की चुनाव की स्वतन्त्रता पर रोक लगाई गई तो इतिहास की आत्मा उभर कर प्रकाश में नहीं आ सकेगी। अतीत की अन्यान्य घटनाओं के समूह कदापि इतिहास का निर्माण नहीं कर सकते। वे तभी इतिहास का स्वरूप प्राप्त करते हैं, जब इतिहासकार उनमें से आवश्यकता एवं महत्त्व के अनुसार तथ्यों का चुनाव करके उन्हें एक तर्क संगत एवं बुद्धिगम्य इकाई के रूप में प्रस्तुत करे। इस प्रकार इतिहास-लेखन लेखक के दृष्टिकोण द्वारा रूपायित होगा।

लेखक के दृष्टिकोण द्वारा इतिहास-लेखन के रूपायित होने के साथ ही इतिहास की निरपेक्षता अथवा निर्वैयक्तिकता की समस्या भी जुड़ी हुई है। जब इतिहासकार अपनी रुचि एवं जीवन दर्शन के आधार पर ही घटनाओं का चयन एवं संकलन करता है, तो वह नितान्त सापेक्ष तथा वैयक्तिक हो जाता है। इस विन्दु पर लेखक को चुनाव की प्रक्रिया में "कूटनीतिक औचित्य" को ध्यान में रखते हुए "भावनाओं तथा पक्षपात" की उपेक्षा करनी चाहिए तथा इतिहास लेखन के समय अपने व्यक्तिगत प्रेम, संवेग तथा मूल्यों को दवाना चाहिए। इस प्रकार कुछ सीमा तक ऐतिहासिक निर्वैक्तिकता प्राप्त की जा सकेगी।

विवेच्य उपन्यासकार आँशिक रूप में ही इस प्रकार की निर्वैयक्तिक इतिहास धारणा का प्रणयन कर पाए हैं। "पानीपत" की भूमिका में पंडित वलदेवप्रसाद मिश्र ने "बेलाग" रहने का दावा अवश्य किया है, परन्तु वे हिन्दू राष्ट्रीयता एवं सनातन हिन्दू धर्म की धारणाओं के प्रबल पोषक के रूप में ही अपनी इतिहास धारणा प्रस्तुत करते हैं।

1. "चुनाव की यह स्वायत्तता वास्तुकलावादियों द्वारा सुनिश्चित की गई थी, प्राचीन इतिहास लेखकों तथा इतिहास को लोकप्रिय बनाने वालों ने इसकी आलोचना की थी।"

—वी०वी० जोशी, पृष्ठ 62.

(4) खण्ड विश्लेषण

(क) **घटनाएँ**—ऐतिहासिक घटनाएँ अनियन्त्रित एवं परिवर्तनशील है। घटनाएँ घटित होते ही अतीत में सरक जाती है, इस प्रकार वे तथ्य तथा निर्णय बन जाती है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक घटनाएँ पुनः अघटनीय होने के कारण वैज्ञानिक ढग से परखी भी नही जा सकती। वे देशकालबद्ध होती है तथा उनमें एक-रूपता नही होती। वह विशिष्ट, स्व-परिस्थितिवश एवं स्वतः स्पष्ट है, तथा निश्चित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप घटित होती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाओं को इतिहासकार से भिन्न पद्धति से देखते है। ऐतिहासिक उपन्यास यद्यपि मानवीय अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड का अध्ययन करता है, तथापि वह मूलतः एक कलाकृति होती है। ऐतिहासिक घटनाएँ केवल ऐतिहासिक तथ्यों को ही प्रकाश में ला पाती हैं, परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण घटक ऐतिहासिक सत्य का निरूपण ऐतिहासिक उपन्यासकारों को करना होता है, इसके लिये वे ऐतिहासिक घटनाओं में गौण परिवर्तन करते है, कतिपय काल्पनिक घटनाओं का निर्माण करते है, अथवा कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ छोड़ जाते है। चूँकि ऐतिहासिक उपन्यास का एक स्वायत्त तंत्र स्वयं में मुकम्मल होता है, इसलिए वे एक सुनिश्चित थीम वाले कथानक का निर्माण करने के लिए घटनाओं का चयन करते समय अपने कौशल, प्रतिभा तथा युग दृष्टि को भी दृष्टिगत रखते है।

ऐतिहासिक घटनाओं पर कला-परक दृष्टिकोण अपनाना यदि ऐतिहासिक निश्चितता से कुछ हटना है, परन्तु ऐतिहासिक घटना की अधिक मुकम्मल समझ तथा उसकी मौलिक वृत्ति समझने के लिए यह आवश्यक है।

प्रेमचन्द-पूर्व के इन ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाएँ सामान्यत. इतिहास पुस्तकों से ली गई हे, परन्तु कल्पनात्मक उद्‌भावनाएँ भी की गई हैं। (इनकी प्रामाणिकता का अध्ययन चौथे अध्याय में किया जाएगा)।

(ख) **पात्र**—आज के व्यक्ति के समान अतीत के व्यक्ति-पात्र जीवत एव क्रियाशील थे। अपनी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप उनके भी विचार, भावनाएँ, भावावेग, संवेग, विश्वास तथा दृष्टिकोण थे। ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत के पात्रो का अध्ययन करते समय उन्हे "पुनर्जीवित" करते हैं।

पात्रों के प्रति भी इतिहासकार तथा उपन्यासकार के दृष्टिकोण मे अन्तर होता है। प्रयोजनवादी, निश्चयवादी तथा शैक्षणिक इतिहासकार पात्रो को ऐतिहासिक परिस्थितियों का निर्माण समझते हे।[1] मननशील (Contemplative

1. Karl Marx, "The materialistic conception of History." Reprinted in "Theories of History" Page 126-127, "The First premise of all human is, of course the existence of living human Individual. The first fact to be established, therefore is the physical constitution of these individuals."

and Speculative) इतिहास दार्शनिक ऐतिहासिक पात्रों को ऐतिहासिक एजेंट के रूप में देखते हैं और इतिहासकार का अपने अध्ययन के लोगों के साथ एक प्रकार का मानसिक अथवा बौद्धिक संबंध जोड़ने के पक्ष में हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकार पात्रों के सम्बन्ध में अत्यन्त सावधानी पूर्वक निर्णय करता है। मानवीय अतीत का पुनः सृजन एवं पुनः प्रस्तुतिकरण करते समय ऐतिहासिक उपन्यासकार के उपकरणों में उसके पात्र ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा सबल माध्यम होते हैं।[1] वह पात्रों के माध्यम से मानवीय अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड पर, जो कि एक निश्चित देश पर आधारित होता है, दृष्टिपात करता है। अतीत के पुनः सृजन की प्रक्रिया में वह अपने पात्रों द्वारा ही अन्यान्य ऐतिहासिक सत्यों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है। ऐसा करते हुए वह कई बार कतिपय काल्पनिक पात्रों का आश्रय लेता है अथवा कुछ ऐतिहासिक पात्रों को छोड़ भी देता है। उसके पात्र निश्चित देश में काल के प्रवाह के एक पूर्व-निर्धारित खण्ड में विचरित करते हुए संवेदनाशील, जीवंत एवं अपनी काल चेतना के प्रति प्रबुद्ध मनुष्य होते हैं, इसलिए जार्ज ल्यूकाक्स के मतानुसार, 'पात्रों को अपने चरित्रों की वैयक्तिकता अपने युग की ऐतिहासिक विशिष्टता से प्राप्त[2] करनी चाहिए।" संवेदनशील होने के कारण पात्र अपने चरित्र के अन्यान्य गुण अपने युग की परिस्थितियों से प्राप्त करते हैं। ऐसा करते हुए, वे अपनी स्वेच्छा तथा इच्छा शक्ति द्वारा भी ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा घटनाओं को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार परिस्थितियों, इतिहास के घटना-प्रवाह तथा तत्युगीन युगदृष्टि से पात्रों का अध्ययन करने के साथ-साथ पात्रों की मनः स्थिति, उनके विश्वास तथा उनकी सामाजिक धारणाओं के माध्यम से उस विशिष्ट कालखण्ड का अध्ययन करता है।

(ग) **विचार**—ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की व्याख्या एक विशिष्ट इतिहास-विचार अथवा इतिहास-बोध के आधार पर करता है। इस विशिष्ट विचार द्वारा अनुप्राणित होने के कारण ही ऐतिहासिक उपन्यास एक निश्चित दार्शनिक एवं साहित्यिक (कलात्मक) पृष्ठभूमि प्राप्त करता है। इतिहासकार सामान्यतः एक निश्चित इतिहास दर्शन के आधार पर इतिहास लेखन के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। यह दर्शन उनके पूरे अध्ययन में एकरूप एवं अपरिवर्तनीय रहता है। उपन्यासकार

1. देवराज उपाध्याय. "ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण" "ऐतिहासिक उपन्यास" डॉ. गोविन्द जी, पृष्ठ 46, "कथाकार को परकाया-प्रवेश-कला मे पूर्णरूप से प्रवीण होना चाहिए। उसे पात्रों तथा घटनाओं के शरीर में प्रवेश कर अपनी अभीष्ट सिद्धि की साधना करनी पड़ती है। परकाया-प्रवेश कठिन कार्य है और खतरे से खाली नहीं है।"
2. See Historical Novel "George Lukacs," English Translation by Hamah Stainley Mitchell (Merlin Press, London 1919, page 19) सर वाल्टर स्कॉट के पहले के ऐतिहासिक उपन्यासों की त्रुटि के सम्बन्ध में इंगित करते हुये ल्यूकॉक्स ने लिखा है—
"Precisely and specifically historical, that is derivation of the individuality of characters from the historical peculiarity of their age."

का दर्शन बहुधा परिवर्तनीय होता है, वह एकाधिक कृतियों में अलग-अलग भी हो सकता है। यदि एक ही कृति में यह दृष्टिकोण परिवर्तित होते रहें तो उन्हें जीवन दृष्टि कहा जायगा। ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपने 'विचार' अथवा 'बोध' का 'निश्चयीकरण' करने के लिए अपने युगबोध तथा विवेच्य युग की युगदृष्टि में तारतम्य स्थापित करना होता है।[1] यह इसलिए आवश्यक है कि इससे वह मानवीय अतीत के निश्चित युग की जनताओं के साथ न्याय करने के साथ-साथ अपने पाठकों के सम्मुख एक बुद्धिगम्य साहित्यिक कृति प्रस्तुत कर सकेगा। स्पष्ट है कि उपन्यासकार के विचार अथवा बोध की दोहरी प्रक्रिया है, जो समकालीन तथा अतीत युगीन विचारों के समन्वय से पूरी होती है। विवेच्य उपन्यासों में पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र का 'पानीपत', ब्रजनन्दन सहाय का 'लाल चीन' तथा मिश्रबन्धुओं का 'वीरमणि' उपन्यास विशिष्ट विचारों द्वारा अनुप्राणित हैं। यह जीवन दर्शन अथवा जीवन दृष्टियाँ इतिहास के कोर्स में घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया तथा उनकी व्याख्या करते समय स्पष्ट रूप से उभर कर आई है।

(घ) **परिवेश (विवरणात्मक-वातावरण)**—इतिहासकार केवल एक पूर्व-निश्चित ऐतिहासिक कालखण्ड का अन्यान्य दृष्टियों से अध्ययन ही करता है, परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार, ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों, विचारों, समस्याओं तथा परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ-साथ उस निश्चित कालखण्ड के परिवेश का जीवंत चित्रण करता है। इतिहास की व्याख्या करने की इस कला-परक व्याख्या की प्रक्रिया में वह पाठक के सम्मुख समस्त अतीत का एक चित्र उपस्थित करता है, जिसमें एक बुद्धिगम्य थीम तथा प्लाट होता है। ऐसा करने के लिए वह नगरों के प्रासादों, पूजागृहों, धार्मिक उत्सवों, बाजारों और सास्कृतिक क्रियाकलापों, तथा ग्रामों के खेतों, तालाबों, कुओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का विवरण प्रस्तुत करता है।

परिवेश को अधिक उभारने (अनुभव करवाने) के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार अन्यान्य ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, अथवा अनैतिहासिक, घटनाओं एवं पात्रों का आश्रय लेता हुआ, लोक-कथाओं, लोक-प्रथाओं, लोक-गीतों, लोक-भाषा, लोक-भूमि अथवा जन्म-भूमि प्रेम तथा प्रकृति के विवरण प्रस्तुत करता है। इससे वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण करता है। स्थानीय रंग अथवा आँचलिकता भी परिवेश निर्माण की प्रक्रिया मे सहायक होती है।

विवेच्य उपन्यासो में लेखकों ने ऐतिहासिक वातावरण एव परिवेश का पुनः निर्माण करने मे साहित्यिक कुशलता का परिचय दिया है।

(ङ) **समस्याएँ तथा परिस्थितियाँ**—ऐतिहासिक उपन्यासकार, इतिहासकार की अपेक्षा ऐतिहासिक परिस्थितियो तथा *विवेच्य युग की समस्याओं* को एक अलग परिप्रेक्ष्य में देखते है, तथा उनका विभिन्न शैली मे विवरण प्रस्तुत करते है। इतिहास-व्याख्या के रूप में ऐतिहासिक-उपन्यास का प्रणयन करते समय उपन्यासकार

1. *'Determinism Relativism and Historical Judgement' Issiah Berlin.* "Theories of History", Page 324-328.

ऐतिहासिक परिस्थितियों को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं, जिससे वे घटनाएँ परिणाम के रूप में परिणत हो जाती हैं। इस प्रकार विवेच्य कालखण्ड के लोगों की जीवन पद्धति का एक सजीव एवं मुकम्मल चित्र समस्याओं तथा परिस्थितियों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

वास्तविक ऐतिहासिक सत्यों को उद्घाटित करने तथा उन्हें अधिक भावनापूर्ण बनाने के लिए उपन्यासकार कई बार अर्द्ध-ऐतिहासिक अथवा अनैतिहासिक परिस्थितियों का सृजन कर समस्याओं का अधिक स्पष्ट स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया जाता है, तथा समस्याओं के प्रति पात्रों की प्रतिक्रिया द्वारा उनके जीवन-दर्शन अथवा जीवन दृष्टि स्पष्ट रूप से उभर कर आती है।

(ब) इतिहास और अति कल्पना इतिहास पुनर्रचना के रूप में एतिहासिक रोमांस

(क) इतिहास और रोमाँस के तत्त्व—ऐतिहासिक रोमांस इतिहास तथा रोमाँस के अन्यान्य तत्त्वों के मिलने से विकसित हुआ वह साहित्य रूप है, जो रोमांसिक इतिहास दर्शन तथा व्यक्तिपरक भावनाओं तथा भावावेगों का प्रतिपादन करता है।

ऐतिहासिक उपन्यास का वह स्वरूप, जहाँ मूलतः अतीत के प्रति रोमाँसिक दृष्टिकोण अपनाते हुए व्यक्तिपरक जीवन दर्शन का प्रणयन किया जाए तथा शौर्य, वीरता, भय एवं प्रेम आदि मानवीय भावों का प्रचुरता से चित्रण किया जाए, उसे ऐतिहासिक रोमाँस कहा जाएगा।

देशकाल का निरूपण तथा कार्यकारण शृंखला का बन्धन इतिहास को एक निश्चित स्वरूप तथा बुद्धिगम्यता प्रदान करते हैं। इसके विपरीत रोमाँस अतिमानवीय तथा अलौकिक विचारों और कार्यों का अतिकाल्पनिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। रोमाँस बौद्धिकता विरोधी. शास्त्रीयता विरोधी तथा समकालीनता विरोधी होते हैं। परस्पर विरोधी तत्त्वों का ऐतिहासिक रोमाँस में समन्वय होता है। इस तरह रोमाँन और रोमाँटिसिज्म के प्रत्ययों में पर्याप्त अन्तर है। हम तो केवल 'ऐतिहासिक रोमाँस' के क्षेत्र में ही अपने को केन्द्रित करेंगे। अस्तु।

इन तत्त्वों का समन्वय

(क) मानवीय प्रकृति और मानवीय स्वप्नों का योग—मध्ययुगीन रोमाँसों में मनुष्यों द्वारा असम्भव[1] दुष्कर कार्यों के किए जाने का चित्रण किया जाता था। यही प्रवृत्तियाँ मध्यकालीन निजन्धरों में जादू टोना, अतिमानवत्व तथा अति-दानवत्व[2] द्वारा उभारी जाती थी। इन प्रवृत्तियों मे स्वप्नो तथा अतिकल्पना का प्रयोग किया जाता था।

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी. द्वितीय संस्करण. स० 2010. पृष्ठ 154.
2. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृष्ठ 143.

मानवीय प्रकृति के मौलिक भावों-भावनाओं, भावावेगों, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य प्रेम, साहसिकता, शौर्य, प्रेम एवं भय का जब उपयुक्त मानवीय इच्छा स्वप्नों से समन्वय होगा तो इतिहास व रोमाँस का मिलन होने से 'ऐतिहासिक रोमाँस' का प्रादुर्भाव होगा।

ऐतिहासिक रोमाँस-लेखक इन प्रवृत्तियों का चित्रण करने के लिए इतिहास के स्वर्ण काल, अज्ञात काल अथवा रहस्य काल से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसों मे इतिहास तथा रोमाँस का समन्वय कलात्मक ढंग से किया गया है। भारतीय मध्य युगों के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में रोमाँसिक उपकरणों के प्रयोग द्वारा यह इतिहास कथा पुस्तकें अत्यन्त रोचक एवं आकर्षक बन पड़ी हैं।

इन रोमाँसों मे इतिहास के किसी काल खण्ड को पृष्ठभूमि में रख कर रोमाँसिक तत्त्वों एवं लोकातीत की अभिव्यक्ति की गई है।

(ख) **महापुरुष के स्थान पर सामान्य जनों का अतीत या किसी अज्ञात व्यक्ति का रहस्य रोमाँच**—ऐतिहासिक रोमाँसों में किसी विशेष महापुरुष राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक नेता, अथवा ऐतिहासिक[1] कर्त्ता की जीवनी को अपने कथानक का आधार बनाने के साथ-साथ जब मानवीय अतीत के करोड़ों सामान्य जनों के जीवन अथवा अतीत के किसी अज्ञात व्यक्ति के रहस्य-रोमाँच को अपना वर्ण्य विषय बनाते हैं, तो हम जन दृष्टि वाले ऐतिहासिक रोमाँसों को उभरते पाते है।

ऐतिहासिक रोमाँसकार अनेक अज्ञात एवं निजंधरी सहायक व्यक्तियों को सहायक पात्रों के रूप में लेकर (ट्रेविलियन) अतिमानवीय एवं अलौकिक घटनाओं का निरूपण करता है, जो बौद्धिकता विरोधी एवं शास्त्रीयता विरोधी भी हो सकती है। इस प्रकार के पात्रों के माध्यम से वह अन्यान्य ऐतिहासिक सत्यों का उद्घाटन करता है, जो केवल तथ्यों के निरूपण से संभव नही भी होता। यह काल्पनिक अथवा अर्द्ध-ऐतिहासिक पात्र ऐतिहासिक रोमाँसकार को अन्यान्य रोमाँसिक तत्त्वों एवं प्रवृत्तियों का निरूपण करने के लिए उपयुक्त भूमि तथा अवसर उपलब्ध करते है।

कई बार सामान्य जनों के अतीत का चित्रण करने के स्थान पर ऐतिहासिक रोमाँसकार निश्चित ऐतिहासिक स्थितियों में किसी अज्ञात व्यक्ति का रहस्यमय अथवा रोमाँसकारी वर्णन करते है। इस प्रकार उन्हें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हत्या एवं हिंसा आदि से युक्त तिलिस्मी वातावरण का निर्माण करने का अवसर प्राप्त होता है। यह मानवीय अतीत का एक नितान्त नवीन आधार पर पुनर्सृजन होता है। रहस्य तथा रोमाँच की यह प्रवृत्तियाँ गोथिक रोमाँसों से ही ऐतिहासिक-रोमाँसों मे आई है।

1. कालिंगवुड इतिहास-लेखन की प्रक्रिया मे ऐतिहासिक एजेंट की मानसिक प्रक्रिया के पुनर्निर्माण को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करते है। देखिए 'History as reenactment of Past experience.'—"Theories of History", Page 254-57.

विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसों में मध्य युगीन भारत के जनजीवन के सुन्दर चित्र उपलब्ध होते हैं। गोस्वामी जी के 'हृदयहारिणी', 'लवंगलता व मल्लिका देवी', गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुवरसिंह सेनापति', 'वीर जयमल वा कृष्णकाँता', जयरामदास गुप्त के 'मायारानी', 'प्रभात कुमारी', एवं 'किशोरी वा वीर बाला,' कार्त्तिक प्रसाद खत्री के 'जया', आदि इसके सुन्दर उदाहरण हैं। रहस्य, रोमाँच एवं तिलिस्म की दृष्टि से गोस्वामी जी के 'लखनऊ की कब्र,' 'मल्लिका देवी', व 'गुलबहार' आदि उल्लेखनीय हैं।

(ग) ताल एवं प्लाट रहित इतिहास को कथा के प्लाट एवं पात्र का कलेवर—इतिहास में कोई ताल अथवा प्लाट नहीं होता जबकि सर्जनात्मक कल्पना द्वारा ऐतिहासिक रोमाँसकार इतिहास को कथानक के प्लाट तथा पात्रों का कलेवर प्रदान करता है। यद्यपि समस्त मानवीय अतीत में एक ताल एवं प्लाट नहीं है, परन्तु उसमें कथाओं का अक्षय भण्डार है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसकारों ने मध्ययुगीन भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि पर उत्तम रोमांसों की रचना की है। यद्यपि कई बार युग पूर्णरूपेण ऐतिहासिक भी होता है तथापि पात्र एवं उनके क्रियाकलाप कल्पना प्रसूत होते हैं। इस प्रकार ताल एवं प्लाट रहित इतिहास को सुन्दर कथानकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरणतः, किशोरीलाल गोस्वामी के 'कनक कुसुम वा मस्तानी' में मस्तानी अत्यन्त सजीव रूप में उभरी है। इसी प्रकार 'हृदयहारिणी व आदर्श रमणी' में कुसुम कुमारी, नरेन्द्र एवं चंपा का व्यक्तित्व इसके उत्तम उदाहरण हैं। 'लखनऊ की कब्र' तथा 'लालकुंवर वा शाही रंगमहल' में गोस्वामी जी ने इतिहास का विरल आश्रय लेते हुए पात्रों एवं प्लाट की रचना अत्यन्त रोमाँसिक ढंग से की है। जयरामलाल रस्तोगी ने 'ताजमहल व फतहपुरी बेगम' में शाहजहाँ तथा ताजमहल की शादी की घटना को एक उत्तम कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। गंगाप्रसाद गुप्त ने 'कुंवरसिंह सेनापति', 'नूरजहाँ वा संसार सुन्दरी' तथा 'वीर जयमल वा कृष्णकान्ता' आदि मे ऐतिहासिक घटनाओं को प्लाट एवं पात्रों का कलात्मक कलेवर प्रदान किया है। जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह' में भी नवाब के विलासमय जीवन के आधार पर एक अत्यन्त रोचक ऐतिहासिक रोमांस के कथानक का ताना बाना बुना गया है।

(ख) ऐतिहासिक रोमांस में अतिकल्पना के कार्य

(क) देशकाल के बन्धन ढीले, अतिकल्पना द्वारा ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने से देशकाल की कठिनाई दूर होने के साथ-साथ रिक्त स्थान भरे जाते हैं—इतिहास देश (स्थान) तथा काल के बन्धनों में आबद्ध होता है। ऐतिहासिक रोमांसों में अतिकल्पना के प्रयोग के कारण यह बन्धन ढीले हो जाते हैं। सामान्यतः तथ्यात्मक इतिहास का उपयोग बहुत कम किया जाता है। अति कल्पना तथा

असामान्य रुचि के कारण वे अद्भुत, विचित्र, असाधारण सौन्दर्य प्रेम, भय, आतंक, रहस्य, शौर्य वीरता एवं साहसिकता का निरूपण करते हैं। यह सभी प्रवृत्तियाँ आज के दैनिक जीवन के नितांत विपरीत हैं।[1] इस प्रकार वह पाठकों के सम्मुख यह विचित्र विचार एवं प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत करता है, जिन्हें वे अपने युग में न तो पा सकते है, न ही जो वर्तमान में विश्वसनीय हो सकती है, इसके लिए इतिहास के किसी चिर अतीत के युग में इनका घटित होना सत्य मान कर वे रोमांचित हो सकते हैं। देश व काल के बन्धनों को अतिकल्पना स्वीकार नहीं करती।

विज्ञानपरक इतिहास-लेखन में अज्ञात युगों को सर्जनात्मक कल्पना से भरे जाने का कतिपय हेतुवादी एवं प्रयोजनवादी इतिहास-दार्शनिकों ने विरोध किया है, परन्तु ऐतिहासिक रोमांसों में अतिकल्पना द्वारा इतिहास की खाइयों को पूरा किया जाता है। अतिकल्पना अतीत को और भी आकर्षक, मादक और उत्तेजक रूप में प्रस्तुत करती है, इसके फलस्वरूप ऐतिहासिक रोमांस अत्यन्त लोकप्रिय होते हैं।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में तिलिस्म तथा जासूसी वातावरण की उत्पत्ति तथा रहस्य रोमांचपूर्ण घटनाओं द्वारा पाठक की भावनाओं को उत्तेजित करने का सफल प्रयास किया गया है। गोस्वामी जी के 'लखनऊ की कब्र', 'लालकुंवर' व 'मल्लिका देवी' तथा जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह' में लंबी लंबी गुफाओं, भयानक कोठरियों, अजीब पुतलों एवं सामन्ती अपराधों का लोमहर्षक वर्णन किया गया है। अवध के दो विलासी बादशाहों नसीरुद्दीन हैदर तथा वाजिदअली शाह के विलास, क्रीड़ा एवं मधुचर्या का चित्रण रसिकता पूर्ण पद्धति से किया गया है। ऐतिहासिक आभासों को कल्पना के माध्यम से अत्यन्त चित्ताकर्षक रूप में चित्रित किया गया है।

(ख) इतिहास मूलतः तथ्याश्रित : अतिकल्पना पर तथ्य और प्रामाणिकता के बन्धन नहीं हैं—मानवीय अतीत का लेखा जोखा मूलतः ज्ञात तथ्यों के आधार पर किया जाता है। इसलिए इतिहास तथ्याश्रित होता है परन्तु रोमांसिक काल्पनिकता के सम्बन्ध में तथ्यों तथा प्रामाणिकता का उल्लंघन भी किया जा सकता है। **क्लारारीव** ने अपनी पुस्तक 'प्राग्रेस ऑव रोमांस में लिखा है—उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है न घटमान"।[2] रोमांस का यही गुण जब वाष्पित होकर ऐतिहासिक

1. David Daiches: "Literary Essays" London 1956 'Scott's Achievement as a Novelist' Page 90.
   यहाँ लेखक ने ऐतिहासिक उपन्यास के तीन सम्भावित स्वरूपों की चर्चा की है जिनमें से एक 18 वी सदी के गोथिक रोमासों की प्रकार का है--
   "It can be essentially an attempt to illustrate those aspects of life of a privious age which most sharply distinguish from our own."
2. साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 154.

आचार्य चतुरसेन ने 'वैशाली की नगर वधू' में, वृन्दावनलाल वर्मा ने 'मृगनयनी' में क्रमशः वेश्या समस्या तथा विजातीय विवाह की समस्या को उभारा है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसों में गोस्वामी जी के 'हृदयहारिणी,' 'लवंगलता', 'गुलबहार वा आदर्श भ्रातृस्नेह' में मानवीय प्रकृति, गंगाप्रसाद गुप्त के 'नूरजहाँ', तथा 'वीर जयमल व कृष्णकान्ता' में भावुकता परक प्रेम, जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह' में नवाब की विलासिता व राजकीय षड्यन्त्रों आदि ऐतिहासिक सत्यों का निरूपण किया गया है।

गोस्वामी जी के 'लालकुंवर' तथा 'लखनऊ की कब्र' में वर्णित मुसलमान शासकों का खुला यौनाचार एक स्वीकृत ऐतिहासिक सत्य है।

(घ) **ऐतिहासिक रोमाँस में स्वेच्छाधर्मी अतिकल्पना**—मानवीय विकास का अध्ययन करते समय निश्चयवाद तथा मानवीय स्वेच्छा दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त हमारे सम्मुख आते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास में कार्यकारण शृंखला के अत्यन्त सुदृढ़ होने से वहाँ सामान्यतः निश्चयवाद का भान होता है। इसके विपरीत समस्त रोमाँसिक धारा व्यक्तिपरक जीवन दर्शन को लेकर चलती है। वह स्थिरता, स्पष्टता, व व्यवस्था के स्थान पर भावना, स्वप्निलता, विप्लवं व विद्रोह को मान्यता प्रदान करती है। एक व्यक्ति को केन्द्र में रख कर चलने के कारण ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की कारण-परिणाम शृंखला भंग हो सकती है।

ऐतिहासिक रोमाँसों की व्यक्तिपरक प्रवृत्ति तथा व्यक्ति की स्वेच्छा का स्वरूप लगभग अनिश्चित होने के कारण, इनकी अतिकल्पना स्वेच्छाधर्मी होती है। यह कारण-परिणाम-शृंखला से विमुक्त भी हो सकती है।

विवेच्य इतिहास-कथापुस्तकों में व्यक्तिपरक जीवन दृष्टि तथा स्वेच्छाधर्मी अतिकल्पना के उत्तम उदाहरण उपलब्ध होते हैं। गोस्वामी जी के 'लखनऊ की कब्र' 'लालकुंवर वा शाही रंगमहल' तथा जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान' में क्रमशः बादशाह नसीरुद्दीन हैदर, शाहजादे जहाँदार, तथा नवाब वाजिदअली शाह की विलासिता एवं अदमनीय यौन-लालसा के वर्णन एवं चित्रण में अतिकल्पना का स्वेच्छाधर्मी प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार 'लवंगलता' 'हृदयहारिणी' में भी गोस्वामी जी नरेन्द्र व मदनमोहन द्वारा किए गए कार्यों की व्यक्तिपरक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुंवरसिंह सेनापति', व 'नूरजहाँ वा संसार सुन्दरी', जयरामदास गुप्त के 'कलावती', 'प्रभात कुमारी' व 'रानी पन्ना', कार्तिकप्रसाद खत्री के 'जया' तथा बलदेवप्रसाद मिश्र के 'अनारकली' में अतिकल्पना को स्वेच्छापूर्वक प्रयुक्त किया गया है।

(ग) ऐतिहासिक पुनर्रचना के रूप में ऐतिहासिक रोमाँस

(क) **इतिहास के पुनः सृजन के रूपों में ऐतिहासिक रोमाँस अलिखित रूप के निकट है**—लैंगलाइस ने दस्तावेजों द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर

जनजीवन के संबंध में जानकारी प्राप्त करने में आने वाली कठिनाई की ओर इंगित किया है तथा आधुनिक उपन्यासों में वर्णित जीवन के महत्त्व को स्वीकार किया है। 'अलिखित दस्तावेज सम्बन्धी साक्ष्य जो सामाजिक व प्राकृतिक दृश्यमान जगत् द्वारा प्राप्त होते हैं, तथा इसी रूप में, लिखित दस्तावेजों के विचार-हीन साक्ष्य' ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। रीतिरिवाज, समाज का आर्थिक गठन, तथा इसके सामाजिक एवं धार्मिक कार्य, लिखित साक्ष्यों अथवा मौसमी परिवर्तनों, भूगर्भीय बनावटों तथा वास्तुकला के अवशेषों से प्राप्त साक्ष्यों से अधिक ग्राह्य है।[1]

ऐतिहासिक रोमांस इतिहास के इसी अलिखित रूप के अत्यन्त निकट है। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा संस्थाओं के माध्यम से तथा प्रकृति एवं देश अथवा मौसमी परिवर्तनों, भूगर्भीय बनावट तथा वास्तुकला अवशेषों द्वारा प्राप्त जानकारी पर ही ऐतिहासिक-रोमांस अधिकांशतः आश्रित होते हैं। अलिखित होने के कारण इस प्रकार की सामग्री में कोई कठोरता नहीं होती। उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किए जा सकते हैं तथा उसे इच्छानुसार विभिन्न रूप भी दिए जा सकते हैं। इससे ऐतिहासिक रोमांसकार को अपनी व्यक्तिवादी दृष्टि, उर्वर कल्पना, उत्कट भावना, सौन्दर्य-प्रेम, प्रकृति प्रेम, साहसिकता व शौर्य का प्रस्तुतिकरण करने का उपयुक्त अवसर प्राप्त होता है तथा कतिपय असंभव एवं दुष्कर कृत्यों का चित्रण करने के लिए भी पर्याप्त स्थान रहता है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र का 'अनारकली' अलिखित रोमांस का उत्कृष्टतम उदाहरण है। यहाँ न केवल लिखित इतिहास को ही चुनौती दी गई है, प्रत्युत लोकाश्रित कथानक में भी आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया गया है। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता', 'हृदयहारिणी', 'मल्लिका देवी' तथा 'गुलबहार वा आदर्श भ्रातृस्नेह' में भी मुख्यतः पात्र एवं घटनाएँ अलिखित अथवा लोकाश्रित हैं।

(ख) **मिथकों निजंधरों, लोककथाओं, व लोकप्रथाओं का उपयोग जो देशकाल के कठोर अनुशासन से विमुक्त है**—तथ्यपरक इतिहास व्याख्या के स्थान पर ऐतिहासिक-रोमांसकार अतिकल्पना द्वारा अति-मानवीय तथा अलौकिक तत्त्वों के आधार पर इतिहास का पुनः निर्माण करते हैं। इसके लिए वे ऐतिहासिक कथानकों के ढाँचे में मिथकों, निजंधर कथाओं, व लोक कथाओं का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः यह सभी कथातत्व देशकाल के कठोर बंधन से विमुक्त होते हैं, ऐसी विलक्षण स्थिति में लेखक को उर्वर कल्पना का प्रयोग करने तथा अन्यान्य मानवीय संवेगों तथा आवेगों का चित्रण करने का सुअवसर पर प्राप्त होता है।

1. See—"The Problem of History and Historiography", pp 56–57.

मिथक तथा लोककथाएँ[1] क्रमश देवताओ के अलौकिक कृत्यों, सृष्टि की उत्पत्ति, जातियो, वंशों, स्वर्ग एवं नरक तथा मानवीय समाज की अति कल्पनापरक एव अतिशयोक्तिपूर्ण कथाओ को लिए हुए चलती है। ऐतिहासिक रोमॉसों मे मिथको का लोकाश्रित के स्थान पर कल्पनाश्रित स्वरूप अधिक बुद्धिगम्य होता है । एक विशिष्ट ऐतिहासिक युग का पुन. निर्माण करते समय लेखक कई मिथकों का निर्माण करते है तथा लोक कथाओं का प्रयोग करते है।

निजधरो[2] की स्थिति भी लगभग मिथकों के समान ही है। परन्तु निजंधरो मे कतिपय प्रागैतिहासिक पात्रो, उनके अत्यन्त शौर्यतापूर्ण, साहस एवं रोमॉस-परक प्रेम का भी चित्रण रहता था। इन्ही से लोक गाथाएँ (बैलेडस) जन्मी थी। ऐतिहासिक रोमॉस मे ये दोनो प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती है।

स्पष्ट है कि मिथक, निजंधर, लोक कथाएँ, लोक गाथाएँ तथा लोक प्रथाऍ सभी रोमॉटिक प्रवृत्तियों-कल्पना, भावना, भय एव प्रेम आदि के लिए अनुकूल भूमि एव परिस्थितियाँ उपलब्ध करती है। देशकाल के कठोर अनुशासन से विमुक्त होने के कारण ये लेखक को मानवीय स्वप्नो की एक मनोरम मनोभूमि प्रस्तुत करने के लिए उपकरण उपलब्ध करते है, जो इतिहास से ऐतिहासिक वातावरण मिलाकर एक विशिष्ट ऐतिहासिक रस का[3] परिपाक करने मे सहायक होते है।

1. 'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक रूढियाँ' डॉ० व्रजविलास श्रीवास्तव, वाराणसी, 68, पृष्ठ 31-32 "अवदानो (मिथक) और लोककथाओ की उत्पत्ति आदिम मानव समाज मे समानान्तर रूप से हुई थी। अवदान-कथाएँ देवताओ के आश्चर्यजनक और अलौकिक कार्यों की कहानियाँ हैं पर उनमे सृष्टि की उत्पत्ति, जातियों और वशो, स्वर्ग नरक आदि बातो का भी वर्णन होता है। किन्तु लोककथाएँ मुख्यत: मानव-जीवन की घटनाओ, मानवीय आवेगो और सवेगो तथा आचरणगत पाप पुण्य की बातो का वर्णन करती हैं। ये घटनाएँ मूलत: यथार्थ पर आधारित होते हुए भी प्राय: कल्पना जनित अतिशयोक्ति से भरी होती हैं। उनमे यथार्थ मानवीय अनुभूतियो को ही कल्पना द्वारा अतिरजित करके इस रूप मे उपस्थित किया गया रहता है कि आधुनिक तर्कशील व्यक्ति के लिए वे असम्भव और अमान्य प्रतीत होती हैं।"--जनरल ऐंथ्रोपोलॉजी, पृष्ठ 610.
2. प्राचीन निजन्धरी आख्यानो और लोक-गाथाओ का रूप कुछ तो वास्तविक घटनाओ और ऐतिहासिक चरित्रो के आधार पर हुआ परन्तु अधिकतर पूर्ववर्ती अवदानो (मिथकों) और लोककथाओ के सादृश्य पर अथवा उनकी सामग्री लेकर विकसित हुआ।
3. देखिए : वर्मा जी का ऐतिहासिक रोमाँस--श्रीचन्द्रदान चारण, साहित्य सन्देश का ऐतिहासिक उपन्यास अक जनवरी-फरवरी पृष्ठ 323, 1959 है।
विश्वकवि रवीन्द्र के अनुसार तो यदि उपन्यास मे ऐतिहासिक रस के लिए ऐतिहासिक सत्य मे भी परिवर्तन करना पडे, तो अनुचित नही। उन्होने लिखा है-"उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने से जो एक विशेष रस सचारित हो जाता है, उपन्यासकार एक मात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हे कोई विशेष परवाह नही होती।" लेखक चाहे इतिहास को अखण्ड रख कर रचना को या तोड फोड कर, यदि वे ऐतिहासिक रस की अवतारणा कर सके, तो उन्हे अपने उद्देश्य मे कृतकार्य समझना चाहिए।"

विवेच्य उपन्यासों में मिथकों, निजंधर कथाओं, लोककथाओं, लोक गाथाओं तथा लोकप्रथाओं का विपुलता से प्रयोग किया गया है। गोस्वामी जी के 'हृदय-हारिणी,' 'लवंगलता,' 'गुलवहार वा आदर्श भ्रातृ स्नेह', 'कनक कुसुम,' 'मल्लिकादेवी, व 'लालकुँवर' आदि ऐतिहासिक रोमाँसों में लोक कथाओं, लोक गाथाओं एवं लोक प्रथाओं का प्रयोग किया गया है। गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुँवरसिंह सेनापति', 'वीर जयमल वा कृष्णकान्ता', जयरामदास गुप्त के 'किशोरी व वीर बाला', 'प्रभात कुमारी', 'रानीपन्ना वा राजललना', तथा मेहता लज्जाराम शर्मा के 'जुझार तेजा' में लोक तत्त्वों का समावेश कलात्मक ढंग से किया गया है।

(ग) विवरणों की बहुलता—ऐतिहासिक रोमाँसों में अन्यान्य विवरणों की बहुलता होती है। इतिहास का पुनः सृजन करने में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है जिससे ऐतिहासिक रोमाँसकार अतीत का एक सजीव चित्र पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। विवरणों की चित्रात्मकता तथा कला अतीत का कल्पनात्मक पुनः निर्माण करने तथा वातावरण निर्माण में सहायक होती है।

सामान्यतः विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसों में एक अज्ञात घुड़सवार का तेजी से एक लक्ष्य (मंजिल) की ओर जाने का विवरण उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति तथा नारी के सौन्दर्य के साथ पुरुषों के शौर्य के लम्बे विवरण भी ऐतिहासिक पुनः निर्माण में सहायक हो पड़े हैं। प्राचीन महलों, किलों, नगरों, गुफाओं, खण्डहरों के साथ-साथ तिलस्मी तथा ऐयारी के भी विवरण किए गए हैं।

(घ) 'अति' उपसर्ग की प्रधानता, अति मानवीय, अति प्राकृतिक, अति लौकिक जादू टोना आदि—मध्ययुगीन निजंधरों, मिथकों, लोककथाओं एवं गाथाओं तथा रोमाँसों के बहुत से तत्त्वों व प्रवृत्तियों का इतिहास से समन्वय होने पर रोमाँसों के जादू, टोना, अतिमानवत्व तथा अतिदानवत्व आदि तत्त्व क्रमशः अंधविश्वास, अति रोमाँचक कार्य (प्रेम, वीरता) तथा प्रबल संघर्ष (त्रास, भय) के रूप में ऐतिहासिक रोमाँसों में आए।[1]

रोमाँस यथार्थ से परे होता है, इसलिए उसमें अतिमानवीय, अतिप्राकृतिक तथा अलौकिक कृत्यों अथवा घटनाओं के लिए स्थान होता है। ऐतिहासिक रोमांस में इनका स्वरूप कुछ सीमा तक बदल जाता है। इनका यह परिवर्तित स्वरूप इतिहास के ढाँचे में ठीक से बैठाया जा सकता है। मध्ययुगों के कथानक, रीति रिवाज़ तथा विश्वास इन प्रवृत्तियों के लिए एक उपयुक्त भूमि प्रदान करते हैं। नायक, नायिका को प्राप्त करने के लिए लगभग असम्भव अथवा दुष्कर कार्यों का संपादन करते है। नायिका, नायक की विजय कामना के समय कठिन व्रत रखती है एवं कष्ट भोगती है। नायक अतिप्राकृतिक ढंग से भयानक युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं, इसके विपरीत नायिकाएँ अत्यन्त कोमल तथा भावनामयी होती है। स्पष्ट है कि ऐतिहासिक

1. डॉ० रमेशकुन्तल मेघ, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृष्ठ 343.

रोमाँसों में, अतिमानवीय तत्त्व[1] प्रेम व वीरता के अतिरोमाँचक कार्यों द्वारा अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। अतिप्राकृतिक[2] एवं जादू टोना[3] आदि अंधविश्वासों के रूप में उभर कर आते हैं। लगभग सभी विवेच्य रोमाँसों मे अति प्राकृतिक शक्तियाँ यथा भगवान, अल्लाह, एवं भवानी माँ आदि अदृष्ट रूप में ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने के कारण के रूप में स्वीकार किए गए हैं। इसके साथ ही यह शक्तियाँ ऐतिहासिक पात्रों के विचारों तथा विश्वासों को प्रभावित करती है और उन्हें एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। लगभग सभी उपन्यासों में यह दैवी शक्तियाँ प्रेरणा का प्रबल स्रोत है।

इस प्रकार ऐतिहासिक रोमाँसों में ऐतिहासिक घटनाओं अथवा ऐतिहासिक पात्रों का अतिशयोक्ति पूर्ण शैली मे वर्णन एवं विवरण किया जाता है। भय हो या प्रेम रोमाँच हो या विह्वलता, कुटिलता हो या कोमलता, सौन्दर्य हो या शौर्य सभी का अतिरंजित वर्णन ही ऐतिहासिक रोमाँसों मे 'अति' उपसर्ग की प्रधानता का श्रेय दिलाता है।

(ङ) **असामान्य एवं अनपेक्षित प्रसंगों तथा संदर्भों द्वारा चमत्कार एवं कुतूहल की सृष्टि**—ऐतिहासिक रोमाँस सामान्यतः अलिखित इतिहास, मिथकों, निजधरों, लोक कथाओं एव लोक-गाथाओं आदि से अपनी सामग्री प्राप्त करता है इसलिए उसमें असामान्य तथा अनपेक्षित प्रसंग तथा परिस्थितियां प्रस्तुत करना स्वाभाविक है। कथानक को गति तथा प्रवाह के अनुरूप स्थान-स्थान पर अद्भुत

1. 'अतिमानवो में देवता, दैत्य, 'यक्ष, किन्नर, अप्सरा, पिशाच, विद्याधर, नाग आदि ऐसी ही जातियां थी जो हिमालय और विंध्याचल के भूभागो में रहती थी। इनमे से कुछ नृत्यगान, शृंगार आदि कलाओं में पारंगत थीं और कुछ मन्त्र-तंत्र और रसायन विद्या में निष्णात थी।... कामदेव प्रजापति दक्ष, कुबेर, शेषनाग आदि उनके कुछ पूर्व रूप देवता थे. जो परवर्ती आर्यो द्वारा अधम या मध्यम कोटि के देवता के रूप मे स्वीकार कर लिये गये।'--
'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक रूढ़ियाँ,' पृष्ठ 59.
2. वही पृष्ठ 56-57 सर्वचेतनवाद के सिद्धान्त के अनुसार आदिम मानव द्वारा प्राकृतिक वस्तुओ–' वृक्ष, वन, नदी, पर्वत, समुद्र, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, वर्षा, बादल आदि में देवत्व की प्रतिष्ठा की गयी। यह माना गया कि ये देवता मनुष्य से कही अधिक शक्तिशाली होते है, वे इच्छानुसार अपना रूप परिवर्तित कर सकते हैं, प्रसन्न होकर मनुष्यों का हित और अप्रसन्न होकर अहित कर सकते है।...लोक-साहित्य और शिष्ट साहित्य में भी सर्वत्र देवी-देवताओ से सबधित ऐसी कथाएँ मिलती है, जिनमें वे मानवों के कार्यों में दखल देते, उनका भावी जीवन क्रम निर्धारित करते उनके प्रेम में आसक्त होते, क्रुद्ध होकर उनका अहित करते और प्रसन्न होकर हित करते है।"
3. वही. पृष्ठ 71 "...ऋषि. मुनि, योगी, सिद्ध, तान्त्रिक, जादूगर, डाइन, वरदान प्राप्त मनुष्य आदि असामान्य व्यक्ति ऐसे कार्यों के कर्ता होते थे जिन्हें समाज अत्यधिक आदर या भय की दृष्टि से देखता था। तपस्या, मन्त्रसाधना, देव, यक्ष या प्रेत की साधना, योग-साधना, तंत्र साधना, तथा जादू-टोना आदि गुप्त विद्याओं की प्राप्ति द्वारा मानव को इस प्रकार की अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है, मध्यकाल तक के लोगों का ऐसा विश्वास था।"

परिस्थितियाँ उत्पन्न करके उनके द्वारा चमत्कार तथा कुतूहल की सृष्टि की जाती है। घटना-प्रवाह में पाठक की उत्सुकता सदा बनी रहती है, प्रेम व भय जनित घटनाओं के वर्णनों तथा अति-प्राकृतिक एवं अतिमानवीय कृत्यों का विवरण उसे रोमांचित भी करता है। इस प्रकार, चमत्कार, कुतूहल, औत्सुक्य तथा रोमांच, ऐतिहासिक रोमांस के वे अनिवार्य गुण हैं, जो ऐतिहासिक पुनर्रचना के रूप में उसे प्रतिष्ठित करते हैं।

विवेच्य उपन्यासों में सामान्यतः यह सभी रोमांसिक प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। विशेषतः गोस्वामी जी के 'लखनऊ की कब्र' व 'लालकुँवर' तथा जयरामदास के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअलीशाह' में चमत्कार एवं कुतूहल की सृष्टि अन्यतम बन पड़ी है।

(च) ऐतिहासिक रोमांस का प्रधान रूप—एक साहित्यिक विधा के रूप में ऐतिहासिक–रोमांस के स्वरूप का अध्ययन एवं निर्धारण करने के लिए सर वाल्टर स्काट द्वारा किए गए रोमांस, इतिहास और उपन्यास के समन्वय पर दृष्टिपात करना उचित होगा। "स्काट एक ऐसा ही प्रतिभा सम्पन्न कलाकार था जिसने अंग्रेजी साहित्य में प्रथम बार "रोमान्स" और उपन्यास का परिणय किया। इतना ही नहीं कि उसने रोमान्स और उपन्यास को मिलाया अपितु उसने विभिन्न प्रवृत्तियों का ऐसा अद्भुत मिश्रण तैयार किया जो उपन्यास 'साहित्य के लिए एक स्वस्थकर रसायन बन गया और आश्चर्य तो यह है कि उसने रोमान्स तथा यथार्थवाद सदृश विरोधियों का समझौता करा दिया जिससे उनकी शक्ति द्विगुणित हो उठी।"[1]

उपन्यास मूलतः यथार्थाश्रित साहित्य रूप है, इसलिए ऐतिहासिक रोमांस में नितान्त काल्पनिक अतीत को ही कथानक का आधार नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार नितान्त कल्पना तथा ऐतिहासिक यथार्थ के मध्य एक सेतु का निर्माण करना, ऐतिहासिक रोमांस को अधिक बुद्धिगम्य बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि रोमांस के अन्यान्य तत्त्व एवं प्रवृत्तियाँ ऐतिहासिक रोमांसों में भी उपलब्ध होती हैं तथापि उनका स्वरूप एवं चरित्र पर्याप्त मात्रा में परिवर्तित हो जाता है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में यह बात और भी स्पष्ट रूप में उभरी है।

ऐतिहासिक रोमांसों के स्वरूप-निर्धारण के लिए हमें कुछ बिंदुओं को ध्यान में रखना होगा। यदि इनके पात्र एवं घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं हैं, तो इनका वातावरण ऐतिहासिक हो। वातावरण द्वारा अतीत का पुनःसृजन अत्यन्त कलात्मक सिद्ध होता है। उदाहरणतः कार्तिक प्रसाद खत्री के "जया", तथा राम नरेश त्रिपाठी के "वीरांगना" में घटनाओं तथा पात्रों के ऐतिहासिक न होने पर भी ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की गई है।

पात्र ऐतिहासिक न होने की स्थिति में कुछ घटनाएँ ऐतिहासिक होनी चाहिएँ, जिससे इतिहास का पुनर्सृजन हो सके। इसी प्रकार यदि घटनाएँ ऐतिहासिक न हों तो कुछ प्रमुख पात्र ऐतिहासिक होने चाहिएँ।

---

1. 'हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास,' पृष्ठ 126.

ऐतिहासिक उपन्यास
बनाम
ऐतिहासिक रोमांस

मानव के अतीत की औपन्यासिक अभिव्यक्ति के दोनों गद्यात्मक रूप—उपन्यास तथा रोमांस—जनजीवन तथा उच्च वर्ग के जीवन को उपजीव्य बनाते हैं। किन्तु दोनों में ही मूल्यचक्र तथा जीवन दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। हम आगे इनका विवेचन करेंगे।

(1) ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस : तुलना

मानवीय अतीत की औपंन्यासिक अभिव्यक्ति के संबंध में, अन्यान्य साहित्य रूपों के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

कार्ल बेकसन व आर्थर गैंज के मतानुसार[1] ऐतिहासिक उपन्यास एक विवरण (दृष्टांत) है, जो काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक अथवा दोनों प्रकार के पात्रों का प्रयोग करते हुए, घटनाओं के कल्पनात्मक पुनर्निर्माण के लिए इतिहास का प्रयोग करता है। जब कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को काफी छूट होती है, वह सामान्यतः कई बार पर्याप्त शोध की सहायता लेता हुआ कुछ यथातथ्यात्मकता के साथ, उन घटनाओं का अलंकृत एवं नाटकीय ढंग से पुनः सृजन करता है, जो उसके विषय से संबंधित होती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्यों तथा शोध के साथ-साथ कल्पनात्मकता तथा अलंकारिक शोभा की सहायता से अतीत का पुनः सृजन करते है। ऐतिहासिक रोमांसकार अतीत का प्रस्तुतिकरण करते समय काल्पनिकता तथा विवरणों की अधिकता का आश्रय लेता है, जिससे वह देश-काल के कठोर बंधनों से आंशिक रूप में विमुक्त हो जाता है।

1. "A Readers Guide to Literary Terms" By Karl Beckson and Arthur Ganz (Thames and Hudson, London 1st edition 1961) page 82. "Historical Novel. A narrative which utilizes history to present an imaginative reconstruction of events, using either fictional or historical or both while considerable latitude is permitted to historical novelist, he generally attempts, sometimes aided by considerable research, to recreate, with some accuracy, the pagentry and drama of the events he deals with."

साहित्यकोशकार के मतानुसार "ऐतिहासिक उपन्यास के लिए तो इतिहास की रक्षा करने के साथ-साथ उसके स्वरूप को अपनी कल्पना के द्वारा स्पष्ट करना भी आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिए कि उपन्यास इतिहास का अन्धानुकरण नहीं हो सकता, सब से पहले यह उपन्यास है—साहित्यिक कथावस्तु। साथ ही वह इतिहास भी है, जिसकी मर्यादा को भी रक्षा करनी पड़ती है। अतः यहाँ कल्पना अनियंत्रित नहीं हो सकती। अकबर और शिवाजी दोनों को एक साथ नहीं बिठा सकती। अतः इसमें अन्य प्रकार के उपन्यासों से अधिक सतर्क प्रतिभा की आवश्यकता पड़ती है।"[1]

जब ऐतिहासिक उपन्यास में रोमांस[2] के तत्त्व मिल जाते हैं, तो वह ऐतिहासिक रोमांस बन जाता है। ऐतिहासिक रोमांस की मुख्य प्रवृत्तियों में अतीत-प्रेम, साहसिकता, शौर्य, प्रेम की प्रधानता, कल्पना, भावनाएँ-आवेग एवं संवेग, सौन्दर्य तथा प्रकृति आदि का चित्रण एवं विवरण मुख्य हैं। उसके पात्र सामान्यतः "टाइप" (प्रकार) होते हैं, परन्तु उनके नायकों का चरित्र लगभग प्रत्येक ऐतिहासिक-रोमांस में नवीनता लिए हुए होता है। उनके अन्तर देश (स्थान) तथा काल की दूरी के साथ बढ़ते जाते हैं। उनकी जीवन दृष्टियाँ, प्रेरणा स्रोत, उद्देश्य तथा वस्तुओं के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तमान होते हैं। नायिकाएँ यद्यपि सौन्दर्य की दृष्टि से अद्वितीय ही रहती हैं, परन्तु उनकी मनःस्थिति तथा चारित्रिक मौलिकता विभिन्न होती है। पात्रों के साथ-साथ उपन्यास की बनावट तथा ढाँचा भी विभिन्न प्रकार तथा स्वरूप का होना है।

डेविड डेचिस के मतानुसार ऐतिहासिक उपन्यास को तीन श्रेणियों में विभक्त करने से ही स्काट के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा उनकी स्थिति के संबंध में न्याय

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पेज 163.
2. रोमांस शब्द "रोमन" से निकला है, जिसका अर्थ है असाधारण। अर्थात् रोमांस (उपन्यास) में जो पात्र होंगे, वे ऐसे तो न होंगे, जो इस पार्थिव जगत् में पाए ही न जा सकें, पर वे लाखों में एक होंगे और उनका दर्शन विरल होगा। रोमांस (उपन्यास) में कथा काव्य के उपकरणों के सहारे अपने स्वरूप को प्रकट करती है। "उसमें कथा थोड़ी-बहुत जटिल हो जाती है। पात्रों की अधिकता रहती है। अनेक कथाएँ आकर जुड़ने लगती हैं, पर कवित्व-पूर्ण और भावपूर्ण वातावरण भी बना रहता है। वीरों की अलकृत साज-सज्जा की, रणक्षेत्र-प्रमाण की तथा युद्ध की झंकार की विस्तृत विवृत्ति पाठक की कल्पना को तृप्त करती रहती है। रोमांस उपन्यासों की वर्ण्य वस्तु बहुत ही सीमित होती है। पात्र व्यक्ति नहीं "टाइप" होते हैं। नायक उच्च वंशोत्पन्न राजा अथवा धर्मात्मा होता है तथा नायिका सुन्दरता की देवी-देखने वालों के हृदय में शौर्यभाव को जागरित करने वाली। पात्र किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु की खोज में रहते हैं वीरव्रती होते हैं, विपन्नों विशेषतः नारियों का उद्धार करना तथा प्रेम की कठिन परीक्षा में अपने प्रतिद्वन्द्वी को मात देना उनका व्रत होता है। क्रीड़ा, समारोह, रणप्रयास, श्मशान-यात्रा के दृश्य, धार्मिक युद्ध इत्यादि का वर्णन होता है। इन सबके बीच एक सुन्दरी कन्या की प्रतिष्ठा होती है। यही रोमांस के उपकरण हैं।"

—हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पेज 167.

किया जा सकता है। "एक ऐतिहासिक उपन्यास मूलतः साहसिक कार्यों की एक गाथा हो सकती है, जिसमें ऐतिहासिक तत्त्व केवल रुचि एवं वर्णित कार्यों के साथ महत्ता की भावना जोड़ने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अथवा यह अनिवार्य रूप से एक अतीत युग के जीवन के उन पक्षों को चित्रित करने का प्रयत्न है, जो हमारे अपने युग के जीवन से नितान्त विपरीत हैं, अथवा यह, (ऐतिहासिक उपन्यास) एक ऐतिहासिक स्थिति का प्रयोग किसी मनुष्य के भाग्य (फ़ेट) के किसी पक्ष को चित्रित करने का प्रयत्न भी हो सकता है, जो कि ऐतिहासिक स्थिति से अलग महत्त्व तथा अर्थ रखता हो।[1] स्टीवेंसन तथा ड्यूमा के उपन्यास प्रथम श्रेणी में, अठारहवीं शताब्दी का गोथिक रोमांस द्वितीय श्रेणी में तथा स्काट के उपन्यासों का सर्वोत्तम तीसरी श्रेणी के अन्तर्गत आता है। कई बार स्काट तीनों श्रेणियों को मिला भी देते है। उन्होंने प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों को मिला कर पिक्चरेस्क उपन्यासों की भी रचना की है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों की स्थिति में यह वर्गीकरण अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रथम श्रेणी को ऐतिहासिक रोमांस, द्वितीय श्रेणी को तिलस्म एवं रहस्य-रोमांच प्रधान ऐतिहासिक रोमांस तथा तृतीय श्रेणी को ऐतिहासिक उपन्यासों की संज्ञा दी जा सकती है। यह वर्गीकरण उपन्यासों की मौलिक एवं प्रधान प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया जा सकता है क्योंकि लगभग सभी उपन्यासों में तीनों श्रेणियों की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ अधिक अथवा कम मात्रा में उपलब्ध होती है।

उदाहरणतः किशोरीलाल गोस्वामी के 'हृदय हारिणी', 'लवंगलता', 'गुलबहार', 'कनक कुसुम', 'हीरावाई', व 'मल्लिका देवी' प्रथम श्रेणी में, 'लखनऊ की कब्र' तथा 'लालकुँवर' द्वितीय श्रेणी में तथा 'तारा' व 'रजिया' तीसरी श्रेणी के उपन्यास हैं परन्तु उनमें कई बार कई स्थानों पर अन्य श्रेणियों की प्रवृत्तियाँ भी स्थान पाजाती है। पहली तथा दूसरी श्रेणियाँ एक ही मूल प्रवृत्ति की दो भिन्न शाखाएँ है, और वह है—रोमांस-परकता। इसका और अध्ययन अगली पंक्तियों में किया गया है।

(क) **इतिहास-उपचार के दो कोण**—अतीत के साहित्यिक पुनः निर्माण में इतिहास उपचार को दो भिन्न कोणों से देखा जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास मूलतः यथार्थपरक होता है जबकि ऐतिहासिक रोमांस फ़ैण्टैसी[2] पर आधारित होता है। ऐतिहासिक उपन्यास तथ्य केन्द्रित होता है, लेखक अधिक से अधिक ऐतिहासिक तथ्यों

1. Literary Essays by David Daiches(Oliver and Boyd; 1st ed. 1956. Edinburgh, Tineddale Court London), Page 90.
2. "Fantasy-Mental image-preoccupation with thoughts associated with unobtainable desires."
   Chamber's Twentieth Century Dictionary ed. by W. Geddie, M. A , B. Sc. (Allied Publishers 1966).

पर आश्रित रह कर ही उपन्यास-रचना में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास पात्र एवं घटना आश्रित सत्य का प्रतिपादन करते हैं। मूलतः एवं मुख्यतः पात्र इतिहास-सम्मत होते हैं तथा घटनाएँ भी इतिहासकारों द्वारा मान्यता प्राप्त होती हैं। कल्पनात्मक पात्रों एवं घटनाओं का भी सृजन किया जा सकता है परन्तु वे इतिहास की मूल प्रवृत्ति के विपरीत नहीं होने चाहिएँ। कई बार कल्पनात्मक पात्र एवं घटनाएँ ऐतिहासिक सत्यों को तथ्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट करते हैं।

ऐतिहासिक रोमांस प्रवृत्ति केन्द्रित होते हैं। रोमांस-परक अन्यान्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ एवं उपकरण इतिहास की पृष्ठभूमि[1] में रखे जाते हैं। इनमें मुख्यतः मध्ययुगप्रेम, मध्ययुगीन विचार सामाजिक, धार्मिक-राजनैतिक विश्वास, रीतिरिवाज़ परम्पराएँ तथा रूढ़ियाँ लेखक को अतीत के पुनःनिर्माण के लिए उपयुक्त सामग्री तथा रोमांसिक उपकरणों के प्रयोग का अवसर प्रदान करती हैं। मध्ययुगों के वर्णन तथा विवरण से एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण होता है, इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांस में वातावरण सत्याश्रित होता है।

(i) तथ्यात्मक ऐतिहासिकता : भावात्मक ऐतिहासिकता—ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिकता का स्वरूप तथ्यात्मक होता है। उपन्यासकार सामान्यतः इतिहासपरक कल्पना[2] का आश्रय लेकर ही मानवीय अतीत की औपन्यासिक अभिव्यक्ति करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में कल्पना का उपयोग इतिहास की टूटी हुई या लुप्त हो गई कड़ियों के जोड़ने के लिए किया जाता है। इस संबंध में वृन्दावनलाल वर्मा का मत उल्लेखनीय है—"जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके, उपन्यास-लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है। उनमें वही चमक-दमक आ जाती है, जो इतिहास के जाने-माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है, पर है यह कि उन तथ्यों या

1. इस संबंध में जी० सौमित्र के विचार दर्शनीय हैं "मोटे तौर पर ऐतिहासिक उपन्यासों को दो प्रकारों में बाँटा गया है—पहले प्रकार के वे उपन्यास जिनमें पात्र एवं घटनाएँ पूरी तरह काल्पनिक होते हैं। उनमें इतिहास सिर्फ पृष्ठभूमि का काम करता है।...दूसरी प्रकार के उपन्यास वे होते हैं, जिनकी पृष्ठभूमि ही नहीं, अधिकांश पात्र, घटनाएँ एव तथ्य भी ऐतिहासिक होते हैं। वर्माजी के उपन्यास इसी प्रकार के हैं। काल्पनिक पात्र, घटनाएँ या तथ्य भी वे आवश्यकता होने पर लेते हैं, पर कुछ इस ढंग से कि उनसे इतिहास की सच्चाई को हानि नहीं पहुँचती।"
2. वृन्दावन लाल वर्मा ने "माधवजी सिंधिया" में लिखा था कि—"मैंने कल्पना को भी इतिहास-मूलक रखा है।" हमारा मत है कि इस इतिहास-परक कल्पना का संबंध कॉलिंगवुड की ऐतिहासिक समझ तथा ऐतिहासिक रूप से सोचने से है। उनके मतानुसार इतिहासकार निश्चित दस्तावेज़ों तथा अवशेषों के आधार पर उस अतीत के संबंध में सोचता है, जिसने उन दस्तावेज़ों तथा अवशेषों को छोड़ा। इस प्रकार इतिहास-विचार का गम्भीर स्वरूप इतिहास की पुनर्व्याख्या के रूप में ऐतिहासिक उपन्यास में उभरता है। देखिए:—History as Re-enactment of Past Experience, Collingwood; "Theories of History", P. 254-255.

परम्पराओं को ताश के पत्तों का महल या क्लबघर न बना दिया जाए।[1]" स्पष्ट है कि कल्पनात्मक पुनः सृजन के बावजूद ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यात्मकता के प्रति अपेक्षाकृत अधिक वफादार होते है।

भावात्मक ऐतिहासिकता से ऐतिहासिक रोमांस का जन्म होता है। चूँकि रोमांस में असाधारण, अतिमानवीय, अतिप्राकृतिक तथा अलौकिक पात्रों एवं घटनाओं को मुख्य स्थान प्राप्त रहता है, इसलिए इतिहास की पृष्ठभूमि में इन सभी रोमांस-परक तत्त्वों एवं उपकरणों का भावात्मक चित्रण किया जाता है। ऐतिहासिक रोमांस के लेखक भावावेगमय भाषा-शैली में अतीत के मानवों के आवेगों तथा संवेगों को मूर्तिमान करने का प्रयत्न करते है। ट्रेविलियन ने कहा था कि यदि अतीत भावावेग पूर्ण था तो उसका पुनः निर्माण भी भावावेगपूर्ण हो सकता है। रोमांसिक उपकरणों एवं तथ्यों की अभिव्यक्ति करने क लिए यहाँ कल्पना का उपयोग भावों के मादक चित्रण, विवरणों के मोहक प्रस्तुतिकरण, वर्णनों के आकर्षक एवं कलात्मक चित्रण तथा पात्रों और घटनाओं के मनोवांछित निरूपण के लिए किया जाता है। यहाँ लेखक की स्वेच्छाचारिता ऐतिहासिकता पर छा जाती है और कई बार इतिहास न केवल पृष्ठभूमि में ही चला जाता है प्रत्युत इतिहास केवल भ्रम मात्र के रूप में ही रह जाता है।

भावात्मक ऐतिहासिकता में ऐतिहासिक तथ्यों तथा ऐतिहासिक सत्यों की अपेक्षा शाश्वत मानवीय सत्यों को अधिक महत्ता प्रदान की जाती है। कई समस्याएँ आने पर लेखक इतिहास की उपेक्षा करके कल्पना का ही आश्रय लेते है। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक तथ्य गौण हो जाते है। इस संबंध में किशोरी लाल गोस्वामी का यह कथन उल्लेखनीय है—"हमने अपने बनाए उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को मुख्य रक्खा है, और कहीं-कही तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से प्रणाम भी कर दिया है। इसलिए हमारे उपन्याम के प्रेमी पाठक लोग हमारे अभिप्राय को भलीभाँति समझ लें कि यह उपन्यास हे, इतिहास नहीं, यहाँ कल्पना का राज्य है, यथेष्ट लिखित इतिहाम का नहीं··· इसलिए लोग इसे इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासों में खोजने का उद्योग भी न करें। किन्तु हाँ, जो विद्वजन कल्पनाप्रिय हैं, वे हमारी कल्पना की छाया में इतिहास की वास्तविक ज्वलंत मूर्ति अवश्यमेव अंकित देखेंगे, इसमें संदेह नहीं।"[2]

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक रोमांसों तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में 'कल्पना की छाया में इतिहास की ज्वलंत मूर्ति' का निःसन्देह उपस्थिति होना उन्हें अतीत तथा अतीत के व्यक्तित्व की महत्ता के प्रति प्रतिबद्ध कर देता है। भावात्मक ऐतिहासिकता की स्थिति में शाश्वत मानवीय वृत्तियों यथा प्रेम, घृणा, सौन्दर्य-प्रेम, शौर्य एवं साहसिकता प्रदर्शन आदि को मुख्य स्थान दिया जाता है।

1. ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण—नए पत्ते, जनवरी-फरवरी, 1953.
2. किशोरीलाल गोस्वामी, "तारा" निवेदन पृ० ग।

स्पष्ट है कि भावात्मक ऐतिहासिकता यद्यपि तथ्यात्मक ऐतिहासिकता के नितान्त विपरीत नहीं है तथापि यहाँ ऐतिहासिक तथ्यों के स्थान पर मानवीय भावनाओं तथा भावावेगों को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

(ख) प्रेमचन्द पूर्व युग में दोनों प्रवृत्तियों में सामान्य विशेषताएँ

(i) **जनजीवन के प्रति उपेक्षा का भाव**—प्रेमचन्द-पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस दोनों में सामान्य रूप से उपन्यास के युग के जन-जीवन के चित्रण एवं निरूपण के प्रति लेखकों में उपेक्षा का भाव था। सामान्यतः लेखक राजाओं, बड़े जमींदारों, रजवाड़े अथवा कबीले के मुखिया को केन्द्र में रख कर उपन्यास की कथावस्तु का निरूपण करते थे। सामान्य व्यक्तियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा जीवन-यापन के साधनों की ओर कम ध्यान दिया गया था।[1] इस प्रकार के इतिहास-पुनर्निर्माण का डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने खण्डन किया है।[2] ऐतिहासिक उपन्यास इसके अपवाद हैं परन्तु यह प्रवृत्ति सामान्यतः ऐतिहासिक रोमाँसों में अधिक उभरी है। ऐतिहासिक उपन्यासों में स्थान-स्थान पर जन-जीवन की सुन्दर झलकियाँ उपस्थित की गई हैं। उदाहरणतः 'पानीपत' में 'पार्वती जी का मंदिर' (पृष्ठ 29-35), 'शयन गृह,' 'छावनी में कुतूहल' ('पृष्ठ 133-146) तथा 'मोक्षपुरी मथुरा' (पृष्ठ 209-231) आदि अध्यायों में सामान्य जनों तथा राजपरिवारों के जीवन तथा जीवन-दर्शन का यथोचित वर्णन किया गया है, जो समस्त सामाजिक संस्कृति का स्वरूप पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है। इसके अतिरिक्त, इसी उपन्यास में 'अहमदशाह दुर्रानी' (232-239) अध्याय में पड़ोसी देश अफगानिस्तान के निकट अतीत का अध्ययन तथा दुर्रानी के उत्कर्ष की ऐतिहासिक कहानी का वर्णन किया गया है। 'रजिया' तथा 'तारा' में जनजीवन के अन्यान्य चित्र उपलब्ध होते हैं। 'रजिया' में हिन्दू देवमंदिर, पंडित हरिहर शर्मा की रजिया द्वारा सहायता, रजिया की अदालत, न्याय तथा हिन्दुओं के पक्ष मे निर्णय तद्युगीन जनजीवन की अच्छी झलकी प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार 'तारा' में तारा तथा जहाँनारा का हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों–रामायण, महाभारत, गीता आदि पर वार्तालाप, तारा के पिता की प्राचीन क्षात्र्यवृत्ति आदि मुगलकालीन हिन्दू समाज तथा संस्कृति का उत्तम चित्रण

1. V V. Joshi, "The problem of History and Historiography" page 75, "Indian History of 16th or 17th century was chiefly interested in the activity and the will of the king and his court,...the common people did not participate in creative and eventful activity."

2 डॉ० मेघ : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृष्ठ 337
"जो इतिहास केवल राजाओं की वंशावलियाँ या घटनाएँ पेश करता है, तथा पड़ोसी राष्ट्रों के इतिहास से अनभिज्ञ होता है, वह जनता को खंडित दृष्टि दान करता है तथा केवल किताबी होता है। इतिहास केवल महान् व्यक्तियों की जीवनियाँ ही नहीं है, बल्कि इसमें उन लाखों करोड़ों गुमनाम लोगों के जीवनखण्ड भी शामिल है, जिन्होंने इतिहास की मानवीय चेतना के क्षितिजों का विकास किया था।"

होने के साथ-साथ मुसलमानों की कामुकता व भ्रष्टाचार के विपरीत हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता को भी सिद्ध करता है।

स्पष्ट है कि ऐतिहासिक रोमांसों में ही मुख्यतः जनजीवन के उपयुक्त चित्रण का अभाव है। इसका एक कारण यह भी है कि एक विशिष्ट ऐतिहासिक युग अथवा पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक रोमांसकार को रोमांस के अन्यान्य उपकरणों एव तत्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करनी होती है, सामान्य जनजीवन का चित्रण इन उपकरणों एव प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं है।

(ii) भावना या धर्म के मुकावले यथार्थ का परित्याग—इस शताब्दी के पहले दो दशकों मे हिन्दी-उपन्यास मोटे तौर पर भावना-प्रधान अथवा धर्म-परक (धर्माश्रित) था, और इन्ही दोनों प्रवृत्तियो का प्राधान्य होने के कारण यथार्थ का पूरा निर्वाह नहीं किया जा सकता था। लगभग यही स्थिति ऐतिहासिक उपन्यासों एव ऐतिहासिक रोमांसों की भी थी। विशेषतः ऐतिहासिक रोमांसों मे तथा सामान्यतः ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत युगों का चित्रण करते समय लेखक भावना के प्रवाह में वह जाते थे। प्रकृति-चित्रण, नारी सौन्दर्य चित्रण, रोमांसिक प्रेम-मिलन तथा विछोह आदि का चित्रण करते समय उनकी भावना-प्रवणता उनकी इतिहास-बुद्धि पर आच्छादित हो जाती थी और वे अपने वर्णनों एवं विवरणों को सामान्यतः यथार्थ से दूर (उसके विपरीत नही) ले जाते थे। उदाहरणतः जंगलों मे नायक-नायिका का प्रथम मिलन, और प्रथम-दृष्टि जन्य-प्रेम, नायक द्वारा युद्धो एवं साहसिक कार्यों में प्रदर्शित वाहुवल का अतिरंजित चित्रण, पात्रों को कठपुतली के समान एक दूसरे से अलग कर देना तथा आवश्यकता पड़ने पर फिर एकत्रित कर देना आदि कई वार पाठक को यथार्थ से दूर जान पडते हैं।

मध्ययुगीन भारत में धर्म एक अत्यन्त शक्तिशाली सामाजिक संस्था थी जो समस्त भारत पर अद्वितीय रूप से हावी थी। अधिकांश मनुष्य, वे शासक हों अथवा प्रजा, धर्म से ही कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त करते थे। धर्म का मानों समस्त मध्ययुग पर एकछत्र साम्राज्य हो। भारतीय धार्मिक विश्वासो के अनुसार काल प्रवाह विभिन्न चक्रों द्वारा रूपायित होता था। कर्मचक्र, नियतिचक्र, कालचक्र तथा पुरुषार्थ चक्र ही भारतीय इतिहास धारणा एवं कालधारणा के आधारभूत उपकरण हैं। प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा ऐतिहासिक रोमांसकार भी सामान्यतः धर्म एवं काल की इस धारणा के प्रति प्रतिवद्ध थे। अधिकाश पात्र ईश्वरीय प्रेरणा से ऐतिहासिक कार्य करने को प्रवृत्त होते हैं, फल की स्थिति मे विजय हो अथवा पराजय, सफलता हाथ लगे या असफलता, सवके लिए एक अलौकिक शक्ति को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है। मध्ययुगो के अन्यान्य धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति के कारण भी कई वार यथार्थ से दूर होने का आभास प्राप्त होता है।

व्रजनन्दन सहाय का 'लालचीन' भावना व धर्म के मुकावले यथार्थ का परित्याग करने की प्रवृत्ति का सर्वाधिक सशक्त एव महत्त्वपूर्ण अपवाद है। यह ऐतिहासिक

उपन्यास इतिहासाश्रित ही नहीं अत्यन्त यथार्थपरक भी है। पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में भावना तथा धर्म को तो अपनाया गया है परन्तु यह दोनों प्रवृत्तियाँ यथार्थ का उल्लंघन नहीं करतीं। ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ एवं कलापूर्ण चित्रण इस उपन्यास की विशेषता है। यद्यपि पंडित किशोरी लाल गोस्वामी के 'रजिया' में रोमांस के अन्यान्य उपकरण एवं तत्त्वों को स्थान दिया गया है परन्तु समस्त कथानक मूलतः यथार्थ के निकट ही रहता है। इसी प्रकार 'तारा' में भी तद्युगीन दरबारी षडयन्त्रों, मुसलमान शाहजादियों के यौन-सम्बन्धों, शाहजादों की कामुकता व सत्ता-लोलुपता आदि का यथार्थ परक चित्रण किया गया है।

स्पष्ट है कि भावना व धर्म के लिए यथार्थ का परित्याग मुख्यतः ऐतिहासिक रोमांसों तथा गौणतः ऐतिहासिक उपन्यासों में किया गया है।

(iii) **अतिप्राकृतिक व अन्धविश्वासों का ग्रहण**—विवेच्य उपन्यासों में अति प्राकृतिक तत्त्वों एवं उपकरणों का प्रयोग भी किया गया है। अन्यान्य प्राकृतिक शक्तियाँ यथा जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य व वन आदि के क्रमशः वरुण, मरुत, अग्नि, द्यौस, रुद्र और आरण्यानी देवताओं की वैदिककाल में मान्यता थी।[1] यह देवता मानवीय कार्यों तथा लौकिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया में रुचि लेते थे तथा उनकी दिशा को प्रभावित करते थे। विशेषतः "शिव और पार्वती भारतीय लोककथाओं में प्रायः नायक की सहायता के लिए पहुँच जाते हैं। देवताओं के वरदान या शापसे भी कथाओं में गति उत्पन्न होती या उनकी दिशा मुड़ जाती है।"[2]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में 'भगवान् की इच्छा' अथवा 'खुदा की रजा' अधिकांश ऐतिहासिक, घटनाओं के घटित होने का कारण बनती है। इसी के द्वारा, कथानक के स्वरूप का निश्चयन किया जाता है, पात्रों का विचार प्रवाह इसी के द्वारा नियंत्रित होता है। कार्य-कारण शृंखला भी बहुत सीमा तक अति प्राकृतिक शक्तियों द्वारा प्रभावित होती है।

मध्ययुगीन अन्धविश्वासों को भी ऐतिहासिक उपन्यासों एवं रोमांसों में ग्रहण किया गया। मध्ययुग का पुनः प्रस्तुतिकरण करते समय तद्युगीन अन्धविश्वासों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों का उपन्यासों में आ जाना स्वाभाविक भी है। वैसे स्वयं लेखक भी उन अन्धविश्वासों में विश्वास रखते हैं। उदाहरणतः 'पानीपत' तथा 'भीमसिंह' में विधवा नारी के सती होने पर स्वर्ग की प्राप्ति, युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग की अप्सराओं द्वारा अभिनन्दन किया जाना आदि, 'रजिया' में स्वामी ब्रह्मानन्द का योगविद्या की सहायता से रजिया के रंगमहल में पहुँच जाना, विष्णु शर्मा द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्मानन्द का योग के सम्बन्ध में विचार आदि उल्लेखनीय हैं।

1. देखिए—'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ'—डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव पृष्ठ 56.
2. देखिए—'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ', डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृष्ठ 57.

(iv) कथा-संयोजन में बर्बरता व कामुकता का समावेश—प्रेमचन्द-पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के कथा-संयोजन में बर्बरता तथा कामुकता की भावनाओं का समावेश उपलब्ध होता है। इन उपन्यासों में नायकों के शत्रु अथवा प्रतिनायक बर्बर अथवा कामुक होते हैं। इनकी बर्बरता तथा कामुकता का अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत किया जाता ह। यद्यपि यह 18वीं शताब्दी के रहस्य-पूर्ण गौथिक रोमान्सों की मूल प्रवृत्तियाँ हैं[1] तथापि यह बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों के ऐतिहासिक उपन्यासों व रोमांसों मे समान रूप से उपलब्ध होती है।

किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक-रोमांसों में बर्बरता तथा कामुकता दोनों वृत्तियाँ समान रूप से उपलब्ध होती हैं। 'रजिया' तथा 'तारा' दोनों उपन्यासों के मुख्य पात्र सामान्यतः कामुक वृत्ति के है। 'मल्लिका देवी,' 'हृदयहारिणी', 'लवगलता' 'लखनऊ की कब्र' मे प्रतिनायकों की बर्बरता को उभारा गया है। 'लालकुँवर' में कामुकता का अतिरंजित चित्रण किया गया है।

ब्रजनन्दन सहाय के 'लालचीन' में लालचीन व उसकी पत्नी का गयासुद्दीन के विरुद्ध षडयंत्र तथा निष्ठुरता-पूर्वक उसकी आँखे निकालना बर्बरता की प्रवृत्ति का उत्तम उदाहरण है।

सामान्यतः अधिकांश विवेच्य उपन्यासों में प्रतिनायक के माध्यम से बर्बरता तथा कामुकता की वृत्तियों का कथानक में सयोजन किया गया है।

(ग) ऐतिहासिक उपन्यास : गंभीरता और विश्लेषण तथा ऐतिहासिक रोमांस (रहस्य और रोमांच)

ऐतिहासिक सामग्री के विश्लेषण की इस प्रक्रिया मे अतीत में मनुष्यों द्वारा किए गए कार्यों, ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने के कारणों, कारण-परिणाम श्रृंखला, इतिहास-प्रवाह की बुद्धिगम्यता, तथा उपन्यास मे वर्णित युग की सामाजिक, धार्मिक एव राजनीतिक मान्यताएँ, विश्वास, परम्पराएँ व रूढियाँ आदि पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत खोज के फलस्वरूप प्राप्त परिणामो को कलात्मक ढंग से उपन्यासों में चित्रित करते है। डॉ० रमेश कुंतल मेघ के मतानुसार 'ऐतिहासिक उपन्यास मानव के सातत्य जीवन की धारा और समाज के अनुभवों को संचित करता है। यहाँ वर्तमान को भुला कर अतीत में पहुँचा जाता है और पुनः प्रच्छन्न रूप से काल-प्रवाह द्वारा वर्तमान की यथार्थ भूमि पर लौटा जाता है जहाँ अतीत वर्तमान मे एक क्रम है। भविष्य का निर्देश हे। अतः यह दूरी को निकटता में परिणत कर देता है।'[2]

ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत को वर्तमान के अधिक निकट लाने का प्रयास किया जाता है। ऐतिहासिक रोमांस में इसके विपरीत अतीत की दूरी का लाभ

1. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ 111.
2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृष्ठ 341.

उठाया जाता है।[1] रहस्यमय वातावरण निर्माण तथा रोमांचक घटनाओं के घनीभूत विवरणों से अतीत को वर्तमान के ठीक विपरीत रूप में उभारा जाता है। जिसके कारण मनुष्य अतीत के रहस्यों में कुछ समय तक खो जाना चाहते हैं। हीरोइक रोमांस, गोथिक रोमांस तथा पिक्चरेस्क आदि से ही यह प्रवृत्तियाँ ऐतिहासिक रोमांसों में आई हैं। डेविड डेचिस के मतानुसार, अतीत[2] का अनुचित लाभ उठाना अथवा अतीत का वर्तमान के नितान्त विपरीत रूप में पुनः प्रस्तुत करना कम महत्वपूर्ण है। यह इतिहास उपचार की सर्वाधिक अगंभीर पद्धति है।

किशोरीलाल गोस्वामी का उपन्यास 'लखनऊ की कब्र' इसका उत्तम उदाहरण है।

(घ) ऐतिहासिक उपन्यास : शास्त्रीय परम्परा : ऐतिहासिक रोमांस शास्त्रीयता विरोध

सामान्यतः विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास आंशिक रूप से शास्त्रीय[3] परम्परा का अनुसरण करते हैं तथा ऐतिहासिक रोमांस शास्त्रीयता के विरोध में भावुकता, रहस्य तथा वीरपूजा की भावना द्वारा अनुप्राणित होते हैं। भारतीय आर्य विश्वास, विचारधाराएँ, हिन्दू धर्म के प्रति गहन प्रतिबद्धता, हिन्दू राष्ट्रीयता का धर्माश्रित-स्वरूप, आर्यावर्त (समस्त भारत व रूस और श्याम) पर एक छत्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना और इस ध्येय को पूरा करने के लिए एक महान् एवं शक्तिशाली सेना का गठन एवं प्रयाण आदि विषय सीधे महाकाव्यों से अथवा आंशिक रूप से रासो काव्यों की शास्त्रीय परम्परा से ही ग्रहण किए गए हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र के "पानीपत" में शास्त्रीयता की इस परम्परा का अन्यूनतम अनुकरण उपलब्ध होता है। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के 'रजिया बेगम' में स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा राजस्थान के राजाओं को एकता के सूत्र में बाँध कर भारत में हिन्दू-राज्य की स्थापना का प्रयास लेखक की इसी शास्त्रीय वृत्ति का उदाहरण है। जयरामदास गुप्त के "काश्मीर पतन" में महाराजा रणजीतसिंह की सेनाओं द्वारा काश्मीरी ब्राह्मणों को मुसलमान शासक जब्बार खाँ के अत्याचारों से त्राण दिलाना तथा सिख सेनाओं की विजय भी शास्त्रीयता के इसी क्रम में आती है। इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के 'तारा',

1. स्काट की कृतियों पर टिप्पणी करते हुए डेविड डेचिस ने लिखा था—
   "The work by which he must be judged for it is only fair to judge a writer by his most characteristic achievement avoids the picturesque and seeks rather to bring the past nearer than to exploit it." Literary Essays, page 90.
2. वही, पेज 90.
3. "Classical–of the highest class or rank, esp. in literature and music: Originally and chiefly used of the best Greek and Roman writers (as opposed to romantic). like in style to the authors of Greece and Rome or the old masters in music"—Chambers's Twentieth Century Dictionary, Page 195.

गंगाप्रसाद गुप्त के "हम्मीर", हरि चरण सिंह चौहान के "वीर नारायण" रामजीवन नागर के "बारहवीं सदी का वीर जगदेव परमार", जयन्ती प्रसाद उपाध्याय के "पृथ्वीराज चौहान", हरिदास माणिक व कालिदास माणिक के "महाराणा प्रतापसिंह की वीरता", "राणा सांगा और बाबर", "मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता", ठाकुर बलभद्र सिंह के "सौन्दर्य कुसुम वा महाराष्ट्र का उदय" और "सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी," सिद्धनाथ सिंह के "प्रण पालन", अखौरी कृष्ण प्रकाश के "वीर चूड़ामणि" तथा मिश्रबन्धुओं के "वीरमणि" में महाकाव्यों तथा रासो काव्यों की शास्त्रीय परम्पराओं का आंशिक रूप से निरूपण किया गया है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में शास्त्रीय परम्परा का स्वरूप शास्त्रीयवाद के सामान्य अर्थ से कुछ भिन्न है। यह शास्त्रीयता लेखकों की हिन्दू धर्म में अतीव निष्ठा तथा इसके प्रति गहरी प्रतिबद्धता से उत्पन्न होती है और योरोपीय इतिहासों तथा टॉड के राजस्थान तथा फार्बस के "रासमाला" आदि से ऐतिहासिक प्रामाणिकता प्राप्त करती है। अधिकांश उपन्यासकारों की मौलिक जीवन दृष्टि के स्वच्छन्दतावादी होने के कारण शास्त्रीय परम्परा का स्वरूप कहीं-कही अस्पष्ट अथवा विकृत भी हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि शास्त्रीय आदर्श को केन्द्र में रख कर यहाँ भी विवेच्य उपन्यासकार उपन्यास में मौलिक एवं शाश्वत मानवीय भावनाओं का तानाबाना बुनते है, अथवा कई बार शास्त्रीय आदर्शो के साथ-साथ रोमांसिक उपकरणों का भी प्रयोग करते है। इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई का मत उल्लेखनीय है, शास्त्रीयवाद की "तृतीय श्रेणी वह है जो नवीन जीवन और नवीन प्रेरणाओं को पूरी तरह आत्मसात् करती हुई प्राचीन ग्रीक कला का आदर्श अपने सामने रखती है। इस श्रेणी के विधायकों का कहना था कि आधुनिक कविता काव्य और ग्रीक कला अनुकरण का आधार नहीं, वह नवीन कवियों के लिए एक उपयोगी दिशा इंगित या आलोचक स्तम्भ का काम कर सकती है।"[1]

ऐतिहासिक रोमांसों में शास्त्रीयता-विरोध—ऐतिहासिक रोमांस का जन्म गौथिक रोमांस, पिक्चरेस्क और हीरोइक रोमांस आदि रहस्य रोमांच प्रधान कथारूपों से हुआ है। असाधारण, अतिमानवीय, अतिप्राकृतिक तथा अलौकिक तत्त्वों एवं उपकरणों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रयुक्त किए जाने के फलस्वरूप ऐतिहासिक रोमांसों मे शास्त्रीयवाद की सरलता, सहजता, गरिमा, स्पष्टता, वस्तुनिष्ठता, सुनिश्चितता तथा रचना की पूर्णता[2] आदि विशेषताओं का अभाव रह जाता है।

ऐतिहासिक रोमांसों में शास्त्रीयता विरोध के रूप में भावुकता तथा व्यक्तिवादी जीवनदृष्टि का निरूपण किया जाता है। "कला की क्लासिकल कृति मे कही भी

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, 2013 वि०, पृष्ठ 442.
2. The Encyclopedia of Americana, 1945.

भावों एवं माध्यम में सामंजस्य की कमी देखने को नहीं मिलती और न कभी ऐसी अभिव्यक्ति का जो व्यक्त न की जा सके, संकेत या प्रस्ताव मिलता है अर्थात् उसकी अभिव्यक्ति विषय की पूर्ण स्पष्टता तथा रूपात्मकता होती है। परिणामस्वरूप कलाकार के व्यक्तित्व का प्रदर्शन नहीं होता, वह अपनी रचना में खो जाता है, जो कि व्यक्ति निरपेक्ष होती है। वह हमें विषय के प्रति अपना दृष्टिकोण अपना भावात्मक संघर्ष तथा जीवन की झाँकी नहीं देता। दूसरी ओर रोमांटिक कलाकार स्वयं को रचना में सम्मिलित करता है अर्थात् अपने व्यक्तित्व को शास्त्रीय कलाकार की भाँति रचना में तिरोहित नहीं करता। वह केवल सौन्दर्य की निष्पक्ष भावना ही नहीं, जिसे वह व्यक्त करना चाहता है, अपितु उसका स्वयं का व्यक्तित्व, कामनाएँ, आशाएँ तथा आदर्श ऐसी आत्मा को जो असीम की ओर प्रेरित रहने के कारण स्वयं को कभी भी सीमित एवं वास्तुनिष्ठ माध्यम द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती, व्यक्त करती है।[1]

रहस्य-रोमांच तथा वीरपूजा भी शास्त्रीय परम्परा से भिन्न प्रकृति की रोमांसिक प्रवृत्ति है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसों में रहस्य-रोमांच की प्रवृत्ति का बहुलता से निरूपण किया गया है। तिलिस्म के माध्यम से किशोरी लाल गोस्वामी ने 'लखनऊ की कब्र' में रहस्य-रोमांच का उत्तम वातावरण प्रस्तुत किया है। उनके अन्य ऐतिहासिक रोमांसों 'लालकुंवर,' 'मल्लिकादेवी,' 'गुलबहार,' 'कनक कुसुम' आदि में रहस्यमय एवं रोमांचक घटनाओं का अच्छा वर्णन किया गया है। जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान' में भी लखनऊ के नवाबी महलों के तिलिस्म-परक चित्रण द्वारा इन प्रवृत्तियों को उभारा गया है।

(ङ) ऐ० उ० : मूल्यों की बौद्धिक परम्परा : ऐ० रो० बौद्धिक मूल्यों के विरोध में भावावेश

साहित्य के क्षेत्र में मूल्यों की परिभाषा लागू नहीं होती। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में मूल्यों की स्थिति एकदम बदल जाती है। इन विधाओं में मानवीय अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड का पुनः निर्माण किया जाता है। अतीत के उस युग विशेष के लोगों के अपने कुछ मूल्य होते हैं, जो उनकी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थितियों द्वारा अपना स्वरूप प्राप्त करते है। विशेषतः मध्ययुगों के मूल्य धर्म, नैतिकता तथा अलौकिक-सत्ता में दृढ़ विश्वास पर आधृत थे। इन्हीं मूल्यों अथवा प्रतिमानों द्वारा तत्युगीन मानव-समाज की वैचारिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं शैक्षणिक पद्धतियाँ नियोजित होती थीं।

मध्ययुयों की पुनः व्याख्या की स्थिति में आधुनिक तथा मध्ययुगीन मूल्यों की टकराहट की स्थिति उभरती है। यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासकार अथवा

1. The Encyolopedia of Americana, 1945.

इतिहासकार अतीत के मूल्यों की पूर्णतः अवहेलना नहीं कर सकते, तथापि सभी ऐतिहासिक तथ्य लेखक के युग के प्रतिमानों द्वारा प्रभावित होकर उनकी व्याख्यात्मक रुचि के फलस्वरूप ही[1] कृति में स्थान पाते हैं। परन्तु कई बार अध्ययन के युग के मूल्य ही कृति के स्वरूप को अधिक प्रभावित करते है,[2] क्योंकि आधुनिक मूल्यों के आधार पर अतीत के मनुष्यों की आलोचना करनी अयुक्तियुक्त होगी।

अच्छा और बुरा की भावना इतिहास की सीमारेखा में नहीं आती। गणित और तर्क के फार्मूले भौतिक विज्ञानों में जो कार्य करते है, वही यह भाव ऐतिहासिक नैतिकता के अध्ययन में करते हैं। यह विचारों के अनिवार्य स्तर (डिग्रियाँ) हैं, परन्तु जब तक उन्हें निश्चित अर्थ न दिया जाए, उन्हें कही लागू नहीं किया जा सकता।[3] ऐतिहासिक उपन्यासों में, हमारे मतानुसार, मूलतः अध्ययन के युग के मूल्यों का ही प्रतिपादन किया जाता है। अप्रत्यक्ष रूप से लेखक के युग के मूल्य एक सीमा तक उसमें स्थान तो पा सकते हैं। जार्ज ल्यूकाक्स ने इसकी भर्त्सना की है।[4] ऐतिहासिक उपन्यासों में, इस प्रकार अतीत युगीन तथा आधुनिक मूल्यों के समाहार द्वारा उत्पन्न एक बौद्धिक परम्परा का पालन किया जाता है।

'लालचीन', 'पानीपत', 'रजिया बेगम' तथा 'तारा' इसके उत्तम उदाहरण हैं। 'लालचीन' में मानवीय स्वतन्त्रता के आधुनिक व गुलामी के मध्ययुगीन मूल्य, 'पानीपत' में भारत की स्वतन्त्रता का लेखक युगीन विचार एवं नारियों के सम्बन्ध में आधुनिक धारणा, तथा स्वामीभक्ति, धर्मनिष्ठा और सतीप्रथा के प्राचीन मूल्य, 'रजिया' मे स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा राजस्थान के राजाओं के एकीकरण से भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना का प्रयास आधुनिक स्वातन्त्र्य आन्दोलनों का अतीत में प्रतिबिम्ब है, तो गुलशन सौसन व जोहरा का रजिया के प्रति व्यवहार मध्ययुगीन परम्पराओं का परिणाम है, इसी प्रकार 'तारा' में जहाँनारा तथा तारा के मुख से प्राचीन भारतीय धर्म-ग्रन्थों की स्तुति लेखक के युग के धार्मिक पुनर्जागरण के

1. E. H Carr, "What is History". *All historical facts come to us as a result of interpretative choices by historians influenced by the standards of their age.*
2. Issiah Berlin : "Theories of History" page 327. "We will not condemn the middle ages simply because they feel short of the moral or intellectual standard of the revolle intelligentia of Paris in eighteenth century or denounce these later because in their turn they earned the disapprobation of moral bigot in England in the nineteenth, or in America in the twentieth century."
3. See–"What is History" E H. Carr, Page 84
4. George Lukacs : "The historical Novel" P. 19 "The so called historical novels of the seventeenth century *Scudery*, Calpranede etc. are historical *only as regards their purely* external choice of theme and costume. Not only the psychology of the characters, but the manners depicted are entirely those of writers' own day."

प्रभाव-स्वरूप है, तो मुगल शाहजादे शहजादियों की विलास-क्रीड़ाएँ व षड्यन्त्र तद्युगीन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं।

इस प्रकार, ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक युगीन तथा अतीत युगीन मूल्यों का एक मिश्रित स्वरूप अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

ऐतिहासिक रोमाँसों में बौद्धिक मूल्यों का विरोध, मूलतः रोमांसिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के कारण किया जाता है। व्यक्ति-चेतना परक होने के कारण ऐतिहासिक रोमांसों में स्वच्छन्द मानवीय कामनाओं, इच्छाओं, भावनाओं, भावावेगों तथा भावावेश को मुख्य स्थान प्राप्त रहता है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में मानवीय आवेगों तथा संवेगों के साथ-साथ तिलिस्म का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। रहस्य-रोमांच परक इन प्रवृत्तियों का प्राधान्य होने के कारण मूल्यों का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

(च) ऐ० उ० : सामयिक चेतना का बोध :
ऐ० रो० समसामयिकता के विरोध में मध्ययुगों में पलायन

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने युग की प्रमुख इतिहास-चेतना एवं इतिहास-धारणा के अनुसार मानवीय अतीत का गम्भीरता पूर्ण विश्लेषण करते हैं, इसलिए उनकी अतीत की व्याख्या में उनका समसामयिक बोध ही मूलतः एवं मुख्यतः अधिक महत्त्वपूर्ण रहता है। इस प्रकार वे वर्तमान की दृष्टि से अतीत पर दृष्टिपात करते हैं। इसी कारण राऊस ने कहा था कि "सारा इतिहास समसामयिक है।"[1] उनके मतानुसार अतीत को केवल उन्हीं प्रमाणों द्वारा जान सकते हैं, जो वर्तमान में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत की जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने युग की मान्य ऐतिहासिक सामग्री तथा उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास समसामयिक चेतना के बोध को लेकर चलते हैं, यह अतीत को वर्तमान के निकट लाने की प्रक्रिया है।

ऐतिहासिक रोमांसों में चूँकि एक स्वप्निल-लोक की कल्पना होती है, यह लोक अन्यान्य रोमांसिक तत्त्वों एवं उपकरणों के योग से बनता है, इस प्रकार का विचित्र वातावरण एवं रुचियाँ समसामयिक चेतना पर आधारित नहीं हो सकतीं। इस सम्बन्ध में डा० कमल कुमारी जौहरी का मत उल्लेखनीय है—'इन रोमांसों में इतिहास का प्रयोग केवल भ्रम उत्पन्न करने के लिए किया जाता था क्योंकि अपनी उर्वर कल्पना और अपनी विचित्र रुचियों के कारण वर्तमान दैनिक जीवन से भिन्न जिस अद्भुत, अलौकिक, असाधारण, सौन्दर्य, भय, आतंक, रहस्य तथा वीरता का अंकन लेखक करना चाहता था उसकी प्रतीति वह पाठक को वर्तमान युग में नहीं करा सकता था किन्तु शताब्दियों पूर्व के जीवन में यदि वह उनको घटित करना,

1. "Use of History" by A. L. Rouse, page 44

जो आज की जनता के चर्म चक्षुओं के सामने नहीं है, तो आज जनता सरलता से, उन पर विश्वास कर, उनके किसी युग मे वास्तविक होने का आनन्द ले सकती थी।'[1]

इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसकार समसामयिकता का सामना न कर पाने के कारण मध्ययुगो में पलायन करते है।

(छ) ऐतिहासिक रोमांसों में मर्यादावादी नैतिकता का विरोध

सामान्यत. ऐतिहासिक रोमासो के नायक तथा नायिका का प्रेम प्रथम-दृष्टि-जन्य होता है। मानवीय मन की स्वच्छन्दता-पूर्ण कामनाओं, इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को ऐतिहासिक रोमासो मे अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। रोमांसिक प्रेम ही इन कथारूपों के स्वरूप को रूपायित करता है। इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में मर्यादावादी नैतिकता का विरोध स्वाभाविक मानवीय प्रेम के स्तर पर किया जाता है।

मर्यादावादी नैतिकता का विरोध ऐतिहासिक उपन्यासो मे एक नितान्त भिन्न धरातल पर नैतिकता के विरोध मे शारीरिक, कामुकता-पूर्ण प्रेम तथा अश्लील यौन सम्बन्धों के वर्णन द्वारा किया जाता है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों मे से किशोरीलाल गोस्वामी के 'हृदयहारिणी', 'लवगलता', 'मल्लिकादेवी' आदि, गगाप्रसाद गुप्त के 'कुँवरसिह सेनापति', 'वीरजयमल वा कृष्णकान्ता,' 'नूरजहाँ', जयरामदास गुप्त के 'किशोरी वा वीरबाला', 'प्रभात कुमारी', 'रानीपन्ना', 'कलावती', जयराम लाल रस्तोगी के 'ताजमहल या फतहपुरी बेगम' आदि मे इसी प्रकार के रोमाँसिक प्रेम के लिए नैतिकता का विरोध किया गया है।

गोस्वामी जी के 'तारा' व 'रजिया' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों मे मर्यादावादी नैतिकता का विरोध कामुकता पूर्ण यौन सम्बन्धों के चित्रण द्वारा किया गया है। 'तारा' मे जहाँनारा, रोशनारा आदि शाहजादियो का शाहजादो तथा गुलामों से गुप्त यौन सम्बन्ध तथा रजिया का याकूब पर और उसकी बाँदी जोहरा का अयूब पर आसक्त होना इसी के उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के 'लखनऊ की कब्र' तथा 'लालकुँवर' आदि तथा जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअलीशाह' आदि ऐतिहासिक रोमासो मे मर्यादावादी नैतिकता का विरोध नवाबों की अतिविलासिता, वेश्यावृत्ति या कुटनीकर्म के विस्तृत विवेचन के माध्यम से किया गया है।

(ii) ऐ० रो० में अतिप्राकृतिक सशक्तता—ऐतिहासिक रोमासो मे पात्र अतिप्राकृतिक रूप से सशक्त प्रदर्शित किए जाते है। मध्ययुगीन 'नाइट्स' के समान वे कई बार नायिका अथवा किसी अन्य स्त्री का उद्धार करने के लिए दर्जनों व्यक्तियों

1. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ 119.

का अकेले ही सामना करते हैं अथवा युद्ध में इसी प्रकार की असाधारण वीरता का प्रदर्शन करते हैं। यह तत्त्व रोमांसों तथा बैलेड गीतों के माध्यम से ऐतिहासिक रोमांसों में आया है।

विवेच्य उपन्यासों में गोस्वामी जी के 'कनक कुसुम वा मस्तानी' में पेशवा बाजीराव द्वारा केवल पच्चीस सवारों के साथ निजाम के दो हज़ार सिपाहियों से जूझना इसका उत्तम उदाहरण है।

(iii) ऐ० रो० में उग्रता और अतिशयता पर जोर—रोमांसों में नायक, सेनापति, मुखिया अथवा सामान्य पात्र परिस्थितियों के प्रति उग्र रवैया अपनाते है। मानवीय चरित्र के उदात्त एवं उद्धत दो छोरों के दूरतम् बिन्दुओं की दूरी को और अधिक स्पष्ट रूप से उभारा जाता है। अतिमानवीय एवं अतिदानवीय प्रवृत्तियों की अतिशयता पर जोर दिया जाता है। इस उपकरण को उभारने के लिए युद्धों की भयावहता का अतिरंजित चित्रण किया जाता है। अतिमानवीय तथा अतिदानवीय प्रवृत्तियों के नायक और खलनायक की प्रबल संघर्षमय टकराहट का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन करके रोमाँच एवं त्रास की भावनाएँ उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में से किशोरीलाल गोस्वामी के "हृदय हारिणी" व "लवंगलता" में नवाब सिराजुद्दौला के क्लाइव तथा नरेन्द्र से युद्धों का वर्णन, "कनक कुसुम" में पेशवा बाजीराव व निजाम के युद्ध की भयावहता, आदि उल्लेखनीय है। सामान्यतः मुसलमान शासकों के व्यभिचार, यौनाचार एव जुल्मों के प्रति हिन्दू राजाओं की प्रतिक्रिया अत्यन्त उग्र एवं व्यक्तिपरक जीवनदृष्टि द्वारा रूपायित हुई है।

(ज) ऐ० उ० तथा ऐ० रो० में कुल व जाति का अभिमान

मध्ययुगीन कथानकों में जिस सामन्ती समाज का चित्रण किया जाता है, वह सामान्यतः पौराणिक कथाओं पर आश्रित अन्यान्य धर्मो एवं जातियों पर आधारित था। विशेषतः ऐतिहासिक रोमांसों में सामन्ती समाज की कुलाभिमान एवं जातीय-दर्प की प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से उभर कर आई है। कुलाभिमान अधिकांशतः नायकों तथा मुख्य पात्रों के कार्यो एवं गतिविधियों को प्रभावित करता है। जातीय दर्प कई बार अनिवार्य युद्धों का कारण बनता है। सामान्यतः नायकादि पात्र अग्निवंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, परमार वश, बुन्देले, प्रतिहार और यादव आदि जातियों से संबंधित होते हैं, ये जातियाँ पौराणिक कथाओं, मिथकों एवं निजन्धरों से मध्ययुगीन सामन्ती समाज में आई थीं। यही कारण है कि पात्र जातीय चेतना (Caste consciousness) के प्रति अत्यन्त सजग है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों में कुलाभिमान तथा जातीय दर्प की मध्य युगीन सामन्ती धारणा का सजीव चित्रण किया गया है।

(झ) ऐ० उपन्यासों में लोकतत्त्वों का क्रियात्मक स्वरूप

मध्ययुगीन लोक-कथाएँ, लोक-प्रथाएँ, लोकगीत, लोक-भाषा, लोकभूमि, अर्थात् जन्मभूमि प्रेम आदि लोकतत्त्व ऐतिहासिक उपन्यासों में अपना स्वरूप कुछ सीमा तक बदल लेते हैं। अपेक्षाकृत अधिक इतिहास-परक एवं तथ्यपरक होने के कारण ऐतिहासिक उपन्यास में लोकतत्त्व एक परिवर्तित रूप में ही आते हैं।

मध्ययुगीन अंधविश्वास अथवा जादूटोना आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में सामान्य जनजीवन तथा राजाओं की राज्यसभाओं की परम्पराओं के रूप में आते हैं। ऐतिहासिक रोमांसों के अतिरोमांचक कार्यों एवं तीव्र प्रेम भावना ऐतिहासिक उपन्यासों में पौराणिक आदर्श, धार्मिक चरित्र, वर्तमान बोध अथवा व्यक्तिगत शील का रूप ले लेते हैं।

इसी प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में वर्णित प्रबल संघर्ष द्वारा उत्पन्न भय और त्रास की भावनाएँ ऐतिहासिक उपन्यासों में दुर्धर्ष प्रकृति युद्ध, ऐतिहासिक आततायी एवं जनसंघर्ष के माध्यम से उभारी जाती है।[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में लोकतत्त्वों का प्रयोग अतीत को वर्तमान से दूर कर अतिरंजित वर्णन करने के स्थान पर मध्य युगों की सामंती व्यवस्था का सामाजिक विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। मुंशी देवीप्रसाद का "रूठीरानी" इसका उत्तम उदाहरण है।

(ii) प्रेरणा के रूप में ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस रूपों के अभ्युदय के लिए अपेक्षित प्रेरणाएँ—मनुष्यों की अतीत के प्रति एक भावावेगात्मक रुचि होती है। अपने परिवार, जाति, प्रान्त, देश अथवा राष्ट्र के अतीत के प्रति एक अदम्य जिज्ञासा की भावना द्वारा प्रेरित होकर मनुष्य अतीत का अध्ययन एव विश्लेषण करने के लिए प्रवृत्त होता है। मानवीय अतीत के विभिन्न अध्ययन-क्षेत्रों मे, ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस अतीत के कलात्मक एवं भावावेगात्मक पुर्ननिर्माण एवं उसकी पुनर्व्याख्या करने वाले साहित्य रूप हैं। अतीत के प्रति भावावेग के साथ-साथ लेखक के युग की अन्यान्य सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विचारधाराएँ तथा समस्याएँ भी ऐतिहासिक उपन्यास के माध्यम से अतीत की पुनः व्याख्या की प्रबल प्रेरक शक्तियां होती हैं।

कई बार किसी विशिष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड, महान् व्यक्ति अथवा घटना मे असाधारण रूप से प्रभावित[2] होकर भी मनस्वी उपन्यासकार ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने को प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार की प्रेरणा एक विशिष्ट ऐतिहासिक स्थिति की "इतिहास-रस" से परिपूर्ण औपन्यासिक अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त उपयुक्त होगी।

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, डॉ० रमेशकुन्तल मेघ, पेज 343.
2. ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास, गोपीनाथ तिवारी, पेज 61.
   ऐतिहासिक उपन्यास : डॉ० गोविन्द जी संपादित।

विचारधारा तथा जीवन-दर्शन के प्रभाव से उन्होंने भारतीय अतीत के हिन्दू-गौरव के कालखण्डों को अपने उपन्यासों के कथानक का आधार बनाया। पुनरुत्थानवादी हिन्दू दृष्टिकोण एक मुख्य एवं मौलिक प्रेरक शक्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

सनातन-हिन्दू धर्मपरक जातीय गौरव तथा हिन्दू-राष्ट्रीयता की पुनः-स्थापना की आकांक्षा प्रबल प्रेरणाओं के रूप में विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करती है। पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र के "पानीपत" में मूलतः हिन्दू धर्म एवं हिन्दू राष्ट्रीयता की पुनःस्थापना के बालाजी बाजीराव पेशवा के महत्त्वाकांक्षी कार्यों को ही "थीम" के रूप में वर्णित किया गया है। पं० किशोरीलाल गोस्वामी के "तारा व क्षत्रकुल कमलिनी" में जातीय गौरव के लिए अमरसिंह राठौर का बलिदान क्षत्रियों के जातीय गौरव की गौरव-गाथा है। जयरामदास गुप्त के "काशमीर पतन", गंगाप्रसाद गुप्त के "हम्मीर", रामजीवन नागर के "जगदेव परमार", जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के "पृथ्वीराज चौहान", माणिक बन्धुओं के "महाराणा प्रतापसिंह की वीरता" एवं "मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता" और ठाकुर बलभद्रसिंह के "सौंदर्य कुसुम वा महाराष्ट्र का उदय" तथा "सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी" आदि ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन की मुख्य प्रेरणा सनातन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू राष्ट्रीयता की पुनःस्थापना के इतिहास-विचार से ही प्राप्त की गई है।

भारतीय इतिहास के इन विशिष्ट कालखण्डों को अपने उपन्यासों का आधार बनाने तथा उनमें हिन्दू धर्म, जातीय गौरव तथा हिन्दू-राष्ट्रीयता के सिद्धांतों के प्रतिपादन की पृष्ठभूमि में आदर्श-हिन्दू-राष्ट्र की भारत में पुनः स्थापना की महत्त्वाकांक्षा क्रियाशील थी और यही आकांक्षा उनकी रचना के लिए एक प्रेरणा थी। प्राचीन भारतीय धर्म-ग्रन्थों में वर्णित नैतिक-सिद्धान्तों एवं आदर्शों की पुनः व्याख्या तथा पुनःप्रस्तुतीकरण विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

स्रोत—इतिहासकार के समान ऐतिहासिक उपन्यासकार को भी मानवीय अतीत का अध्ययन करते समय अन्यान्य इतिहास पुस्तकों, विदेशी यात्रा-पुस्तकों, संस्करणों, पुरातात्त्विक खोजों व सिक्कों आदि का गहन अध्ययन करना पड़ता है। इस कार्य की कठिनता एवं जटिलता की ओर अनेक विद्वानों ने इंगित किया है।[1]

विशिष्ट अतीत के सम्बन्ध में उपलब्ध आधुनिकतम् सामग्री का इतिहासकार को पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। ऐतिहासिक सामग्री का हलके दिल से अध्ययन करना लाभदायक नहीं है, इससे लेखक "आधा तीतर आधा बटेर पैदा करने में

1. राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार, ऐतिहासिक उपन्यास के लिए, किसी यूनिवर्सिटी के लिए लिखी जाने वाली अच्छी थीसिस से इस सामग्री-संचयन में कम मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। पकी-पकाई सामग्री आपके लिए तैयार शायद ही मिले।
"ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप', "ऐतिहासिक उपन्यास," पृष्ठ 22.

समर्थ होगा जोकि और भी उपहासास्पद बात होगी। ऐतिहासिक कथाकार को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारी एक-एक पंक्ति पर एक बड़ा निष्ठुर मर्मज्ञ समूह पैनी दृष्टि से देख रहा है। हमारी जरा भी गलती वह बरदाश्त नहीं करेगा, वह हमारी भारी भद्द कराएगा।"[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, "उपन्यास का लेखक वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह अतीत का चित्रण करते समय भी पुरातत्त्व, मानव तत्त्व और मनोविज्ञान आदि की आधुनिकतम् प्रगति से अनभिज्ञ रह कर थोथी कल्पना का आश्रय ले उपहासास्पद बन जाता है।........ऐतिहासिक लेखक का वक्तव्य, इतिहास की उत्तम जानकारी तथा उस युग की प्रामाणिक पुस्तकों, मुद्राओं और शिलालेखों के आधार पर जाँची हुई होनी चाहिए।"[2]

यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास, साहित्य की एक विधा है, परन्तु इतिहास के विविध उपकरण उपन्यास के कथा-तन्तुओं को बहुत दूर तक प्रभावित करते हैं। विभिन्न स्रोत, जिनके माध्यम से उपन्यासकार को मानवीय अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त होती है, के सम्बन्ध में विवेच्य उपन्यासकारों ने उपन्यास के आरम्भ में संकेत दिए हैं।

(i) विदेशी इतिहासकारों की कृतियाँ—मध्ययुगीन राजस्थान अथवा राजपूताना के क्षत्रीय राणा तथा दिल्ली के मुसलमान शासकों के प्रति उनके वीरतापूर्ण व्यवहार तथा जातीय गौरव एवं नारी-उद्धार के लिए जीवन-बलिदान करने की ऐतिहासिक घटनाएँ विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा अभीष्ट कथन के लिए उपयुक्त प्रेरणा प्रदान् करती हैं। पुनरुत्थान के इस युग में कर्नल टॉड, जो कि विदेशी शासकों का प्रतिनिधि था, ने हिन्दुओं, विशेषतः राजपूतों के जातीय गौरव का वर्णन अपनी पुस्तक ऐनल्स एंड एंटीक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (1829) में किया। इस इतिहास पुस्तक ने अधिकांश विवेच्य उपन्यासकारों को ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन के लिए प्रेरित करने के साथ-साथ विपुल सामग्री तथा ऐतिहासिक सत्य-निष्ठा एवं विश्वास भी प्रदान किया। इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि टॉड जब मेवाड़ के सम्बन्ध में लिखता है तो वह एक भावप्रवण कवि जैसा बन जाता है। टॉड स्वयं को स्पष्ट रूप से राजपूत जाति का वकील तथा प्रशंसक समझता था।[3] टाड की यह सब उपलब्धियाँ विवेच्य उपन्यास-कारों के लिए एक महान् प्रेरणा थीं।

1. वही पृष्ठ 21. राहुल सांकृत्यायन।
2. "ऐतिहासिक उपन्यास क्या है" हजारीप्रसाद द्विवेदी—"ऐतिहासिक उपन्यास" डॉ॰ गोविंद जी, पृष्ठ 17-19.
3. "Tod candidly avowed himself to be an advocate and apologist of the Rajput race though he was not blind to the miseries of the Rajput society of his days. he loved to celebrate its past virtues even at their worst, the Rajputs of his day were not worthless"—Dr G. S Grewal, 'British Historical writing on Muslim India' page 329 (Ph. D. thesis from London University.)

चित्तौड के राणा लक्ष्मणसिह, उनके चाचा भीमसिंह व चाची पद्मिनी की सौन्दर्य लालसा मे अलाउद्दीन का चित्तौड पर दो बार आक्रमण, छल-कपट, और अन्त मे चित्तौड का विनाश तथा स्त्रियो द्वारा जौहर व्रत किया जाना टॉड के इतिहास मे वर्णित ऐतिहासिक तथ्य है। इन्ही से प्रेरणा प्राप्त कर चन्द्रशेखर पाठक ने "भीमसिंह", बसन्तलाल शर्मा ने "महारानी पद्मिनी", रामनरेश त्रिपाठी ने "वीरागना" तथा गिरिजानन्दन तिवारी ने "पद्मिनी" उपन्यासो की रचना की।

चन्द्रशेखर पाठक के मतानुसार, "टॉड साहब लिखित राजस्थान का इतिहास, बाबू क्षीरोदप्रसाद बी० ए० तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ राय लिखित 'पद्मिनी' नामक ग्रन्थो से इसमे विशेष सहायता ली गयी है।"[1] पद्मिनी को राणा लक्ष्मणसिह के चाचा भीमसिंह की पत्नी स्वीकारने के बारे मे गिरिजानन्दन तिवारी ने लिखा था—"टॉड साहब भी इसे भीमसिह की स्त्री बताते है। हमने भी टॉड साहब की बात को सच मान कर यह उपन्यास लिखा है।"[2]

मुगल सम्राट शाहजहाँ के राज्यकाल के अन्तिम वर्षो तथा औरगजेब के राज्यकाल के आरभिक वर्षो मे मेवाड के राजकुमार व बाद मे राणा राजसिह का औरगजेब के साथ प्रबल सघर्ष का टॉड ने उत्तम शब्दो मे विवरण दिया है।[3] इस विवरण मे टॉड ने राजपूतो की वीरता एव शौर्य की प्रशसा करते हुए उनके पक्ष को नैतिक एव उचित ठहराया है।[4] इस अश से प्रेरणा प्राप्त कर किशोरीलाल गोस्वामी ने "तारा", बाबूलालजी सिंह ने "वीर बाला" तथा बाबू युगलकिशोर नारायणसिह ने "राजपूत-रमणी" नामक ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना की।

बाबू युगलकिशोर नारायणसिह ने टॉड द्वारा राजपूत दृष्टिकोण, जीवन-पद्धति के उनके नैतिक, धार्मिक एव सामाजिक सिद्धातो के प्रति न्याय करने के लिए आभारी अनुभव करते है। उनके अनुसार "वीरप्रसु क्षत्रिय जाति को जागृति, शक्ति और उसके उच्च आदर्श के इतिहास के लिए क्षत्रिय जाति टॉड साहब की चिरकाल तक ऋणी रहेगी। लेखक ने भी राजस्थान की एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर कल्पना का सहारा लेकर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है, जिसे वह कृतज्ञ हृदय से स्वीकार करता है।"[5]

1. भीमसिंह, चन्द्रशेखर पाठक, ललित प्रेस, कलकत्ता, 1915.
   'अपना वक्तव्य' से उद्धृत।
2. 'पद्मिनी', गिरिजानन्दन तिवारी, 1905.
   भारत जीवन प्रेस काशी, 'सूचना' से उद्धृत।
3. देखिए-टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास,' अनुवादक केशवकुमार ठाकुर, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1962, पृष्ठ 222 से 227.
4. वही, पृष्ठ 232-233.
5 'राजपूत रमणी" युगलकिशोर नारायणसिह भारतभूषण प्रेस लखनऊ, सन् 1916 ई० (सम्वत् 1973) प्राक्कथन से उद्धृत।

संवत् 1952 (सन् 1895) में हरिचरणसिंह चौहान ने टॉड के इतिहास[1] से प्रेरणा प्राप्त कर "वीर नारायण" नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की। उनके अनुसार, "यह एक छोटा-सा ऐतिहासिक उपन्यास बूंदी के राव नारायण का जो कि सम्वत् 1548 मे बून्दी के राज्यसिंहासन पर सुशोभित हुए थे। टॉड साहब के प्रसिद्ध ग्रन्थ "टॉड्स राजस्थान" नामक इतिहास के आशय से लेकर बड़ी कठिनाई से बनाया है।"[2]

टॉड कृत "राजस्थान का इतिहास" विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों के अभ्युदय के लिए एक महान् प्रेरणा स्रोत था।

रामजीवन नागर के मतानुसार, "राजपूताने के इतिहासो मे टॉड साहब का "राजस्थान" जैसे मुख्य माना जाता है, गुजरात के इतिहासो मे फार्बस साहब की "रासमाला" भी वैसा ही मान पाती है। उसी के आधार पर मैंने यह पुस्तक लिखी है।"[3]

वार्गस के अतिरिक्त फिच, सर टामस रो, बर्नियर, म्यानिसी तथा ग्राटडफ आदि अंग्रेज इतिहासकारो की ऐतिहासिक कृतियों से भी किशोरीलाल गोस्वामी तथा प० बलदेवप्रसाद मिश्र ने "तारा" तथा "पानीपत" के निर्माण के लिए प्रेरणा तथा सहायता प्राप्त की है। अंग्रेज इतिहासकारो की सत्यनिष्ठा तथा ऐतिहासिक निर्वैयक्तिकता के संबंध में लिखते हुए गोस्वामी जी कहते है—"उन महात्माओ मे फिच, सर टामस रो, बर्नियर, म्यानिसी आदि लेखक प्रधान है और हमने ऐतिहासिक घटना मे विशेषकर इन्ही महात्माओं के लेख से सहायता भी ली है।"[4] पं० बलदेव प्रसाद मिश्र के मतानुसार, "पानीपत के निर्माण मे ग्रांटडफ साहब की अंग्रेजी किताब तथा फारसी के कई पुराने इतिहासों से भी सहायता ली गई है।"[5]

मुसलमान इतिहासकारों के विरुद्ध अंग्रेज इतिहामकारों की ऐतिहासिक कृतियो से विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों तथा ऐतिहासिक रोमामकारों ने प्रेरणा प्राप्त की तथा भारतीय अतीत के पुन निर्माण एव उसकी पुन:व्याख्या की प्रक्रिया मे इन कृतियो से सहायता भी ली।

"इडियन शिवलरी" नामक अंग्रेजी पुस्तक के आधार पर जयरामदास गुप्त ने तीन ऐतिहामिक उपन्यासों की रचना की है। उनके मतानुमार इस पुस्तक मे वास्तविक बातो को छिपाने का प्रयत्न किया गया है। इन्ही शौर्यपूर्ण कहानियो को

1. टॉड कृत "राजस्थान का इतिहाम", पेज 742–745
2. 'वीरनारायण' हरिचरणसिंह चौहान, मथुरा भूषण प्रेस, मथुरा, सन् 1895 ई० निवेदन से उद्धृत।
3. "बारहवीं सदी का वीर-जगदेव परमार," रामजीवन नागर, खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, संवत् 1969 (सन् 1912 ई०) भूमिका से उद्धृत।
4. "तारा" निवेदन, पेज 'घ'।"
5. "पानीपत" प्रस्तावना से उद्धृत।

अन्यान्य इतिहास-ग्रन्थों की सहायता से "शुद्ध" कर उपन्यास-लेखन का कार्य किया। उनके मतानुसार, "अंग्रेजी भाषा में 'इंडियन शिवलरी' नामक एक पुस्तक है। इसमें वीरवर राजपूतों से संबंध रखने वाली कई एक छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। उन कहानियों को पढ़ने से जहाँ तक मालूम हो सका, यही जान पड़ा कि असली बातों को भी छिपाने की चेष्टा की गई है।.......अतएव, हमने भी उन कहानियों को उपयोगी और ऐतिहासिक देख इतिहासों से शुद्ध करके उन्हीं के आधार पर उपन्यासों की रचना प्रारंभ कर दी है। उनमें की दो कहानियों के सहारे 'कलावती' और 'वीरवीरांगना' नामक पुस्तक आगे हम प्रकाशित कर चुके हैं।"[1]

इसी प्रकार एक अनाम ब्रिटिश लेखक द्वारा प्रणीत पुस्तक "द लाइफ ऑफ एन ईस्टर्न किंग" में लखनऊ के नवाब नसीरुद्दीन हैदर के जीवन की राजनैतिक एवं व्यक्तिगत घटनाओं का आँखों देखा चित्रण किया गया है। इसी पुस्तक का ठाकुर-प्रसाद खत्री ने हिन्दी में अनुवाद किया था। इसी के आधार पर गोस्वामी जी ने "लखनऊ की कब्र" नामक ऐतिहासिक रोमांस की रचना की।

(ii) प्राचीन भारतीय इतिहास ग्रन्थ व रासो काव्य ग्रन्थ—पुनरुत्थानवादी हिन्दू जीवन दृष्टि तथा सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन दर्शन से प्रेरित हो उसकी पुनःस्थापना के लिए विवेच्य ऐतिहामिक उपन्यासकारों एवं ऐतिहासिक रोमांसकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास-ग्रन्थों यथा कल्हण की राजतरंगिणी तथा पृथ्वीराज रासो को आधार बना कर भी उपन्यासों की रचना की।

भारतीय नारी के सतीत्व की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिए बाबू व्रजविहारीसिंह ने ऐतिहासिक घटनावलम्वी उपन्यास "कोटारानी" का निर्माण किया। इसके लिए उन्होंने कल्हण की राजतरंगिणी के एक अंश को कथानक का आधार बनाया। उनके मतानुसार, "इसका मूल आख्यान राजतरंगिणी के (जो काश्मीर देश का एक वृहत् इतिहास है जिसे कल्हण कवि ने शके 1070 में बनाया था) मध्य भाग से लिया गया है। इस इतिहास के विषय में विशेष जानने के लिए बाबू हरिश्चन्द्र कृत राजतरंगिणी की समालोचना अथवा भारतमित्र प्रेस से प्रकाशित इसका भाषानुवाद देखना चाहिए।"[2]

जयन्तीप्रसाद उपाध्याय कृत 'पृथ्वीराज चौहान' में 'पृथ्वीराज रासो' से प्रेरणा एवं सामग्री ली गई है। लगभग सारे उपन्यास का कथानक 'रासो' पर ही आधारित है।

हरिचरणसिंह चौहान कृत "पृथ्वीराज परमाल अर्थात् पृथ्वीराज महोबा संग्राम" भी पृथ्वीराज रासो के ही आधार पर रचा गया था। लेखक के अनुसार,

1. "रानीपन्ना वा राजललना", जयरामदास गुप्त, उपन्यास बहार ऑफिस, काशी, 1910, भूमिका।
2. "कोटारानी" व्रजविहारीसिंह, खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, संवत् 1959 (सन् 1902 ई०) भूमिका से उद्धृत।

उपन्यास में वर्णित "विषय प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ चंदवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रायसा' से सरल सुगम भाषा में तैयार किया है, आशा है कि, यह ऐतिहासिक विषय सर्व हिन्दी रसिकों को रुचिकर होगा।"[1]

(iii) समकालीन भारतीय भाषाओं के इतिहास-ग्रन्थ—20वीं शताब्दी के आरंभ में बंगाली, मराठी तथा गुजराती भाषाओं में इतिहास तथा ऐतिहासिक-उपन्यासों का प्रणयन आरंभ हो चुका था। भूदेव मुखर्जी, बंकिमचन्द्र चटर्जी, रखालदास बंद्योपाध्याय, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीशरण सेन, ननीलाल बंद्योपाध्याय, हरिसाधन मुखोपाध्याय आदि ऐतिहासिकों ने भारतीय अतीत को आधार बना कर उपन्यासों की रचना की। इनमें से अधिकांश की कृतियाँ तब तक हिन्दी में अनूदित हो चुकी थीं।[2] यह इतिहासाश्रित कथा पुस्तकें विवेच्य उपन्यासकारों के लिए एक प्रभावी प्रेरणा स्रोत के रूप में उभर कर आईं।

बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह कृत "राजपूत रमणी" की भूमिका में कात्यायनी दत्त ने लिखा था,—"राजस्थान" के आधार पर कल्पना के सहारे इस की रचना हुई है; राना राजसिंह और रूप नगर की कन्या के पाणिग्रहण और महाराना की औरंगजेब से शत्रुता का विषय नवीन नहीं. बंगभाषा के औपन्यासिक श्रेष्ठ श्रीयुत् बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी० आई० ई० ने कल्पना के सहारे इसी विषय को लेकर "राजसिंह अथवा चंचलकुमारी" नामक उपन्यास की रचना की है।[3]

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने "पानीपत" की रचना के लिए गुजराती तथा मराठी पुस्तकों को आधार बनाया। उनके मतानुसार, "यह पुस्तक देशाई बीरजमल निर्भयराम वकील की गुजराती पुस्तक पानीपत का युद्ध तथा मराठी भाषा की कई एक पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है।"[4]

चन्द्रशेखर पाठक ने "भीमसिंह" उपन्यास की रचना के लिए टॉड के राजस्थान के अतिरिक्त "बाबू शीरोप्रसाद बी.ए. तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ राय लिखित "पद्मिनी" नामक ग्रन्थों से विशेष सहायता प्राप्त की है।[5]

हिन्दी भाषा में सन् 1905 ई० से पूर्व कई इतिहास-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यास 'रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल' की रचना करने के लिए कई समकालीन इतिहास-पुस्तकों से सहायता

1. "पृथ्वीराज परमाल अर्थात् पृथ्वीराज महोबा संग्राम" हरिचरणसिंह चौहान. खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई, संवत् 1966. (सन् 1909 ई०) भूमिका से उद्धृत।
2. बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र चण्डीशरण, ननीलाल, हरिसाधन तथा अन्य लेखकों के अनूदित ऐतिहासिक उपन्यासों के विवरण के लिए देखिए—हिन्दी उपन्यास कोश, डॉ० गोपालराय, ग्रन्थ निकेतन, पटना-6. 1968. पेज 305 से 330.
3. "राजपूत रमणी". भूमिका से उद्धृत।
4. "पानीपत," प्रस्तावना से उद्धृत।
5. "भीमसिंह," अपना वक्तव्य से उद्धृत।

प्राप्त की थी। 'रज़ियाबेगम' के कृतज्ञता स्वीकार में उन्होंने लिखा,—"हमने इस उपन्यास में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'इतिहास तिमिरनाशक,' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'बादशाह दर्पण', तथा बंगाली लेखक बाबू नरेन्द्रनाथ मित्र प्रणीत "रज़िया बेगम" नामक एक छोटे से प्रबंध से भी कुछ सहायता ली है, अतएव उक्त महाशयों के भी हम कृतज्ञ है।"[1]

(iv) **विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त**—समय-समय पर आने वाले विदेशी यात्रियों ने भारत की तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के साथ-साथ कई भौगोलिक पक्षों का भी अपने यात्रा-वृत्तांतों में विवरण दिया है। इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्त ऐतिहासिक युग के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी होते है। विदेशी होने के कारण यात्री सामान्यतः निरपेक्ष एवं निर्वैयक्तिक ढंग से घटनाओं एवं व्यक्तियों का वर्णन करता है। सामान्यतः राजा अथवा राजकुमारों के अत्यन्त निकट रहने अथवा शासकों के व्यक्तिगत संपर्क में रहने के कारण इस प्रकार के यात्री भारतीय अतीत के अन्यान्य युगों का अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय वृत्तान्त प्रस्तुत कर पाए है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं ऐतिहासिक रोमांसकारों ने इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्तों का उपन्यासों की रचना में उपयोग किया है।

बाबू बलभद्रसिंह ने 'वीरबाला वा जयश्री' उपन्यास के आरम्भ में दी गई 'ऐतिहासिक विवेचनाएँ' में इब्न बैतुत की भारत-यात्रा के वृत्तान्त को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। उनके मतानुसार, "सन् 1341 ई० में एक अफ्रिका के पर्यटक ने दिल्ली में आगमन किया। इसका नाम इब्न बैतुत था। उसका दरबार में बड़ा आदर सम्मान हुआ और बादशाह ने उसे 'जज' बनाया। परन्तु मुहम्मद तुगलक का दुष्ट, सन्देहयुक्त तथा निर्दय स्वभाव देख कर उसने वह पद परित्याग कर दिया। बादशाह ने इसका बुरा न मान कर उसे चीन मे अपना एलची बना कर भेज दिया और इस सुहावनी चाल से उसे दिल्ली से टाल दिया। उसके Travel अर्थात् 'प्रवास निबन्ध-माला' मे जिनका अनुवाद अंग्रेजी तथा फ्रेंच मे है भारतवर्ष का बहुत-सा बहुमूल्य वृत्तान्त है।"[2]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने वेनिस के डाक्टर म्यानिसी जो लगभग पचास वर्ष तक मुगल दरबार मे रहा, के इतिहास-वृत्तान्त से अपने उपन्यास 'तारा वा क्षत्रकुल कमलिनी' के निर्माण में सहायता प्राप्त की। इस वृत्तान्त ने कदाचित गोस्वामी जी को शाहजहाँ व दारा के जहाँआरा से गुप्त-सम्बन्धो तथा शाही महल के आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में बहुत सीमा तक सामग्री उपलब्ध की। गोस्वामी जी ने 'तारा' के आरम्भ में म्यानिसी के बारे मे लिखा है,—'म्यानिसी वेनिस नगर का एक डाक्टर

1. "रजिया बेगम", दूसरा भाग, कृतज्ञता स्वीकार मे उद्धृत।
2. "जयश्री वा वीरबाला" बाबू बलभद्रसिंह, उपन्यास बहार ऑफिस, काशी, दूसरा संस्करण, सन् 1923 ई०।

था, और इसने लगभग आधी शताब्दी शाहजहाँ के दरबार में बिता दी थी। दारा का यह बहुत ही प्यारा मुसाहब था और इसकी गति शाही महल तक भी थी। यह उस समय का इतिहास अपनी भाषा में बहुत ही सुन्दर रीति से लिखा गया है। यह बर्नियर का समकालीन होने पर भी बर्नियर की अपेक्षा इसे उस समय के इतिहास लिखने का बहुत ही सुभीता मिला था क्योंकि दारा का प्यारा मुसाहब होने के कारण दारा के साथ बराबर छाया की भाँति रहता था। क्या लड़ाई के मैदान में, क्या विलास-कानन में, सभी समय यह दारा के साथ ही साथ रहता था। दारा के साथ आधी शताब्दी तक शाही दरबार में रहने के कारण इसने शाही घराने की बहुत सी गुप्त और रहस्यमय घटनाओं का उल्लेख किया है।'[1] इन रहस्यमय घटनाओं आदि का गोस्वामी जी ने खुल कर प्रयोग अपने उपन्यास 'तारा' में किया है।

इसी प्रकार जयरामदास गुप्त ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'काश्मीर पतन' में एक फ्रांसीसी यात्री द्वारा काश्मीर की डल झील के वर्णन का उल्लेख किया है। परन्तु उसका नाम नहीं दिया गया है। झील के मध्य एक स्थल-अंश था जिसे 'रूप लंका' कहा जाता था। लेखक के युग में झील के मध्य यह भूभाग दृष्टिगोचर नहीं होता था, हाँ कुछ पेड़ों के अतिरिक्त अब वहाँ और कुछ नहीं है। एक फ्रांसीसी यात्री का संदर्भ देते हुए पाद-टिप्पणी में उन्होंने लिखा है—"सन् 1835 ई० में एक फ्रांसीसी यात्री ने काश्मीर का भ्रमण करते हुए जब इस स्थान को देखा था तो वहाँ पर एक छोटे से मन्दिर के देखने का बयान करता है यद्यपि इस समय उसका कोई निशान नहीं है पर किनारे पर कहीं पत्थर के चुने लगे हुए मिलने वाले टुकड़े किसी मकान का चिह्न प्रगट करते हुए उसके बयान को पुष्ट करते हैं।"[2]

(४) पुरातात्त्विक खोजें—बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में कई पुरातात्त्विक खोजें की जा चुकी थीं। स्मिथ ने इस सम्बन्ध में अपने इतिहास में लॉर्ड कर्जन द्वारा पुरातात्त्विक खोजों को एक सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने के लिए सराहा है।[3] स्पष्ट है कि इस शताब्दी के आरम्भिक दशकों में तथा उससे पहले भी पुरातत्त्व की ओर विद्वानों तथा शासकों का ध्यान आकर्षित हो चुका था। इसी प्रकार कई स्वदेशीय एवं विदेशी विद्वानों द्वारा प्राचीन भारतीय ग्रन्थों तथा उनके माध्यम से सभ्यता एवं संस्कृति के अन्यान्य आयामों की खोज की जा चुकी थी।

1. "तारा" निवेदन, पृष्ठ 'ङ' से उद्धृत।
2. "काश्मीर पतन" जयरामदास गुप्त, राजघाट, काशी 1907 ई०, पृष्ठ 74-75।
3. "India is full of memorials of olden times. Lord Curzon not only passed an Act for the preservation of Ancient monuments but worked out a well concieved scheme for both the conservation of buildings which had escaped destruction and the exploitation of the treasures of antiquity buries in sites where everything above ground had perished."—Oxford History of India by V. A. Smith, Page 355-357.

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं रोमांसकारों ने सामान्यतः पुरातात्त्विक एवं पुराने ग्रन्थों की खोज से बहुत सीमा तक प्रेरणा प्राप्त की। टॉड कृत राजस्थान तथा कनिंघम के सिख इतिहास आदि के माध्यम से पुरातत्त्व का अंश इन ऐतिहासिक कथाकृतियों मे आया है। मुख्यतः किलों एवं नगरों के चित्रण में तथा गौणतः महलों एवं दरबारों की आन्तरिक सजावट के सम्बन्ध में पुरातात्त्विक खोजों से सहायता प्राप्त की गई है।

पुरातात्त्विक खोजों एवं प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त सामग्री के प्रयोग का अध्ययन भूचित्रों तथा भौगोलिक वर्णनों के शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। इस प्रकार हम यही पाते है कि ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस दोनों ही एक प्रकार से सांस्कृतिक इतिहास तथा सांस्कृतिक पैटर्न का प्रतिविधान करते है। इस दृष्टिकोण से इतिहास के उपर्युक्त दोनों कलारूप ऐतिहासिक बोध की भी कसौटी बन जाते हैं।

4 हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक रोमांस: परिस्थितियाँ तथा प्रवृत्तियाँ

कई दृष्टियों से हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों तथा रोमांसों की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ विशिष्ट हैं, तथापि वे सामान्य प्रवृत्तियों की भी एक अंग हैं। अतः हम इनमें सप्रमाण इतिहास दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों को भी स्थापित कर सकते हैं।

प्रेमचन्द पूर्व के युग में पुष्पित हुई इस प्रवृत्ति में कई संस्कृतियाँ, कई सामाजिक व्यवस्थाएँ तथा कई प्रवृत्तियाँ टकरा रही हैं और समन्वित भी हो रही हैं। इस वजह से नए-नए कलारूप और नई-नई सांस्कृतिक आवश्यकताएँ मिलकर नए जीवनबोध विकसित करती हैं। नए जीवनबोध तथा नए समाज की परिकल्पना पंडित किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर महता लज्जाराम शर्मा तक में मिलती हैं। अस्तु।

(अ) सामाजिक स्थिति

(1) सांप्रदायिक मतभेद

सांस्कृतिक पुनर्जागरण की इस प्रक्रिया में सांप्रदायिक मतभेद वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था जिसने विवेच्य उपन्यासकारों की जीवन दृष्टि तथा इतिहास धारणा को गहराई तक प्रभावित किया। यद्यपि इस शताब्दी के आरंभिक दशकों में सांप्रदायिक एकता तथा भारत के एक राष्ट्र के सिद्धान्त की धारणा जोर पकड़ती जा रही थी तथापि अधिकांश जनता गहरे सांप्रदायिक मतभेदों तथा धार्मिक असहिष्णुता की पुरानी लकीर पर ही विश्वास करती थी। लगभग सभी विवेच्य लेखक मुसलमान-विरोधी धारणा को आधार बना कर उपन्यास रचना के कार्य में प्रवृत्त हुए थे।

सांप्रदायिकता का स्वरूप—सांप्रदायिकता की समस्या तथा उसके मौलिक स्वरूप तथा विवेच्य कथारूपों में वर्णित सांप्रदायिकता में सूक्ष्म अन्तर आ गए। हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई तीन धर्मों एवं संप्रदायों में आपसी टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी।

राष्ट्रीय धारणा के विचारक वे हिन्दू हों अथवा मुसलमान, अंग्रेज विरोधी एवं ईसाई विरोधी सांप्रदायिक मतवाद के पक्षपाती थे क्योंकि दोनों ही धर्मो पर ईसाई धर्म के प्रसारवाद का भयानक प्रभाव पड़ा था।[1] इन विचारकों ने अतीत के महान् धार्मिक विचारों एवं विश्वासो को पुन.प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

आध्यात्मिक जागृति तथा शुद्धिकरण के प्रयत्न के लिए मनुष्य का मानस स्वभावतः आदिम युग की ओर मुड़ता है, जबकि उनके विश्वास अपने स्रोतों से उभरे थे, तथा जो देदीप्यमान तथा सुस्थिर थे।....परन्तु जिस प्रकार अतीत का पुनः स्थापन एक असंभाव्य है, तथा जिस प्रकार अतीत निश्चित रूप से उस मानस की निर्मिति है, जो इसके बारे मे सोचते है, सुधारकों ने अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि के अनुसार मूल विश्वास के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किए तथा उन्हे पुनः जीवित करने के लिए विभिन्न ढंग सम्मुख रखे।[2]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो एवं ऐतिहासिक रोमांसों में जिस सांप्रदायिक मतभेद का चित्रण किया गया है, वह अग्रेज विरोधी होने के स्थान पर मुसलमान विरोधी था। सामान्यतः कोई भी उपन्यासकार अग्रेज विरोधी एवं ईसाई विरोधी सांप्रदायिक विचारों का प्रतिपादन नही करता : पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने एकाध स्थान पर अग्रेजों के व्यवहार पर आक्षेप किया है। इस पर भी वे ऐतिहासिक रूप से अग्रेजो को मुसलमानो से बेहतर समझते थे।

आक्रमणकारी मुसलमानों के लिए तुर्क, यवन[3] तथा मलेच्छ[4] शब्दों का ही

1. महर्षि दयानन्द द्वारा बुद्ध-पूर्व के प्राचीन हिन्दू विश्वासो के पुनःस्थापन के प्रयत्नो पर टिप्पणी करते हुए रोमारोला ने इस ओर इगित किया था—"यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस समय दयानन्द के मन का निर्माण हो रहा था, उस समय भारत की उच्चतम, धार्मिक चेतना इतनी दुर्बल हो चुकी थी, कि योरोप की धार्मिक चेतना इसका स्थान ग्रहण करने मे असमर्थ होते हुए भी उसकी क्षीण दीपशिखा को बुझाने के लिए प्रयत्नशील थी।" "रामकृष्ण परमहस" रोमारोला, पेज 154.
2. History of Freedom Movement V II. p 391-392.
3. "Communalism and Ancient Indian History" Page 8—
"Thus the Turks are described as Turushkas, and the Arabs as Yavans. The word Yavan was used traditionally for all persons coming from West Asia and the Mediterranean irrespective of whether they were Greek, Roman or Arab The word itself, Yavans in Sanskrit is a back formation of the Prakrit Yona and derives ultimately from Ionia, the IoniansGreeks who had the earliest and closest contacts with Western Asia".
4. 'Ibid' Page 8—"Another term used for Turks, Persians and Arabs was Mlechha. This word again has an ancient Ancestry, first occuring in the Rig Veda. The term was primarily for those people who spoke a non-Aryan language and therefore were unfamiliar with Aryans' culture.Later and by extention the term was used by foreigners. Here, again 'malechha' was not a religious term but more often a term with a cultural connotation."

प्रशंसा की है तथा यवन शासन की तुलना में उसे अत्युत्तम बताया है।[1] इसी प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी ने भी अंग्रेजों को मुसलमान शासकों से बेहतर बताया है।

इस काल खण्ड में पुरातात्त्विक खोजों की ओर ध्यान दिया जाना आरम्भ हो चुका था। बहुत से भारतीय एवं विदेशी इतिहासकारों एवं ऐतिहासिक द्रष्टाओं ने भारतीय अतीत की खोजें कीं तथा उसके उज्ज्वल पक्षों का उद्घाटन किया। इस ऐतिहासिक स्थिति का विवेच्य लेखकों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। अपने सिद्धान्तों धारणाओं एवं मान्यताओं के अनुरूप उपयुक्त सामग्री एवं ऐतिहासिक स्थिति के प्रभाव-स्वरूप इन ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की रचना की गई।

(i) **पुरातात्त्विक खोजें**—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में प्राचीन भारत के कलात्मक एवं साँस्कृतिक अवशेषों की खोज तथा उनके सरक्षण के कार्यों की ओर ध्यान दिया जाने लगा था। इस सम्बन्ध मे विदेशी शासकों ने भी कई स्तुत्य कदम उठाए। विंसेट ए० स्मिथ ने इस के लिए लार्ड कर्जन की प्रशंसा की है।[2] पहले तो केवल योरोपीय विद्वान् ही इस क्षेत्र में रुचि लेते थे, परन्तु इस शताब्दी के आरम्भ से भारतीय विद्यार्थियों ने भी इस कार्य में अपना योगदान देना आरम्भ कर दिया था।

वास्तुकला के अवशेषों के साथ-साथ प्राचीन भारतीय ग्रन्थों एवं संस्कृत साहित्य पर भी मैक्समूलर, एम० विंटरनिट्ज, एलबर्ट वेबर तथा ए-बी-कीथ प्रभृति विद्वानों ने स्तुत्य खोजें की। इस प्रकार सस्कृत साहित्य के महान् पक्षों का योरोपीय विद्वानों द्वारा उद्घाटन किया गया।

1. "ब्रिटिश राज्य के प्रभामय शासन में डाकू, चोर तथा ठग इत्यादि का लेशमात्र भी भय नहीं है। क्या यवन और ब्रिटिश शासन में काँच और कचन का अतर नहीं है?" वीरबाला व जयश्री' उपन्यास बहार ऑफिस, काशी दूसरा सस्करण, सन् 1923 ई० पेज 45-46.

2. "Lord Curzon not only passed an Act for the preservation of Ancient Monuments, but worked out a well conceived scheme...Both duties..conservation and exploration...were entrusted to a skilled Director......General of Archaeology, aided by a staff of expert assistants in the provnices, and supplied liberally with funds. The Department thus organised in manner for superior to the crude arrangements previously in operation.... The field for research is practically unlimited ... The scientific study of the antiquities of India *was for many years* confined almost exclusively to European scholars, but since about the begining of the current century numerous Indian born students have recognised that the investigation of the history of their native land should not be abandoned to foreigners and have been doing their duties in making additions to the world's store of historical knowledge".—Vincent Adam Smith, "Oxford History of India", Page 357.

यद्यपि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं ऐतिहासिक रोमांसकारों ने इन पुरातात्विक एवं ग्रन्थ-खोजों से प्रत्यक्ष रूप में कोई संबंध व्यक्त नहीं किया है तथापि अतीत की खोज तथा भारतीय अतीत के स्वर्णिम युगों के अनावरण की इस विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उन पर अनिवार्य प्रभाव पड़ा जो उनकी कृतियों में परिलक्षित होता है।

(ii) भारतीय इतिहासकार—यद्यपि विवेच्य काल-खण्ड में अधिकांश इतिहास-पुस्तकें योरोपीय विद्वानों द्वारा ही लिखी गईं तथापि बहुत से भारतीय विद्वानों ने भी इतिहास-लेखन के कार्य में अपना योगदान किया।

आर० सी० मजूमदार ने—'राष्ट्रीय इतिहासकार'[1] नामक निबन्ध में भारतीय अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा किए गए अन्याय का अध्ययन किया है तथा उसके प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय विद्वानों एवं इतिहासकारों द्वारा प्रणीत इतिहासों की प्रवृत्तियों का वर्णन किया है। इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दयानन्द सरस्वती, राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी, चन्द्रनाथ वसु, बंकिमचन्द्र चटर्जी आदि द्वारा भारतीय अतीत के स्वर्णिम पक्षों का उद्घाटन किया गया। रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की पुस्तक "Civilization in Ancient India" तथा आर० के० मुखर्जी की "A History of Indian Shipping and Maritime Activity" आदि में राष्ट्रीय विचारों का प्रतिपादन किया गया था।

भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक निकाय की नियोजक-शक्ति के रूप में हिन्दू-धर्म तथा उसके सर्व-भारतव्यापी स्वरूप को आर०के० मुखर्जी के "The Fundamental Unity of India"[2] में प्रतिपादित किया गया, जबकि, ब्रिटिश लोग भारत को विपरीत जातियों व छोटे-छोटे रजवाड़ों का जमघट बता रहे थे।

यद्यपि विवेच्य लेखक ब्रिटिश-विरोधी रवैया नहीं अपनाते फिर भी भारतीय अतीत के स्वर्णिम पक्षों तथा हिन्दू धर्म के उदात्त स्वरूप की इन धारणाओं का उन पर प्रभाव उल्लेखनीय है। प्राचीन भारत की हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के मौलिक स्वरूप को आदर्श स्वीकारने, मुसलमानी आक्रमणकारियों को सभी बुराइयों के मूल में देखने तथा हिन्दू-धर्म के मौलिक एवं सनातन रूप के पुनर्स्थापन की धारणाएँ इस विशिष्ट ऐतिहासिक स्थिति के परिणाम स्वरूप ही अस्तित्व में आयीं।

अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी में भी कई विद्वानों ने भारतीय इतिहास की कई पुस्तकों का निर्माण किया जिनसे विवेच्य उपन्यासकारों ने प्रेरणा तथा सहयोग प्राप्त किया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का 'इतिहास तिमिर नाशक' तथा भारतेन्दु

1. "Nationlist Historians" by R. C. Majumdar reprinted in "Historians of India, Pakistan and Ceylon", edited by C. H. Phillips, pp. 416–427.
2. वही, पृष्ठ 422.

विवेच्य उपन्यासकारों पर भण्डारकर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रभाव यह था कि वे मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम रखते हुए भी ब्रिटिश-विरोधी नही थे ।[1] उनका इतिहास के प्रति रवैया उन्नीसवीं शताब्दी जैसा था । वे कदाचित् रैंके के इस मत से सहमत थे कि अतीत का वैसा ही पुनः प्रस्तुतिकरण किया जाना चाहिए जैसा कि वह वास्तव में था ।[2]

इसके अतिरिक्त विवेच्य युग में भूदेव मुखर्जी, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीशरण सेन, ननीलाल बद्योपाध्याय तथा हरिसाधन मुखोपाध्याय आदि के ऐतिहासिक उपन्यासों अथवा ऐतिहासिक रोमांसों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका था ।

यद्यपि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों एवं रोमांसकारों ने इन इतिहास-द्रष्टाओं की इतिहास-धारणाओं को ठीक उसी रूप में नहीं लिया है तथापि इनकी ऐतिहासिक कृतियों द्वारा ऐसी ऐतिहासिक स्थिति का निर्माण हो चुका था जिसके प्रभावान्तर्गत विवेच्य ऐतिहासिक कथा-पुस्तकों का प्रणयन किया गया ।

(II) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की प्रवृत्तियाँ
(सामान्य परिचय)

हिन्दी साहित्य के आरंभिक ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की मौलिक प्रवृत्तियों को पुनरुत्थानवादी पर्यावरण के साथ मध्ययुगीन हिन्दू विश्वासों, परंपराओं तथा रूढ़ियों ने प्रभावित किया । इन उपन्यासों की प्रवृत्तियों के स्वरूप का निर्धारण एवं निश्चयन करने में तद्‌युगीन अन्यान्य औपन्यासिक-उपकरणों का भी महत्त्वपूर्ण योग था । उस युग के औपन्यासिक-उपकरणों में रहस्य-रोमांच, सेक्स के माध्यम से मनोरंजन, तिलिस्म तथा किस्सा कहना मुख्य थे। अल्पाधिक मात्रा मे ये विवेच्य उपन्यासों में भी उपलब्ध होते है । रीतिकालीन शृंगार वर्णन तथा रासोकालीन वीरता एवं शौर्य वर्णन इन उपन्यासों की विशिष्ट प्रवृत्ति है ।

(क) जनता से कटकर अन्तःपुर एवं राजसभाओं की ओर—सामान्यतः विवेच्य उपन्यासकार करोड़ों सामान्य जनों की अतीत युगीन स्थिति एवं जीवन का चित्रण करने के स्थान पर शासकों,राजाओं एवं सम्राटों के अन्तःपुरों एवं राजसभाओं को अधिक महत्त्व प्रदान करते है । कहीं-कही सामान्य-जनों के जीवन की ओर भी दृष्टिपात किया गया है, परन्तु वह गौण रूप में है तथा वीरता एवं शौर्य-पूर्ण नायकों के व्यक्तित्व को निखारने के उपकरणों के रूप मे । उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवी शताब्दी के आरंभिक दो दशकों मे भारतीय इतिहास-लेखन की सम्पूर्ण धारा ही सामान्य जनता से कट कर शासकों, उनके प्रेम एवं युद्धों के चित्रण को ही अधिक

1. "Bhandarkar evidently loved his native land, but his more popular writings show no trace of anti-British feeling"
"Modern Historians of Ancient India" reprinted in "Historians of India, Pakistan and Ceylon" Page 281.
2. वही, पृष्ठ 281.

महत्व प्रदान करती थी। इसका विवेच्य उपन्यासकारों की इतिहास-धारणा पर प्रभाव अपरिहार्य था।

राजमहलों के दो पक्ष ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिक उभर कर आते हैं। राज-पुरुषों एवं राजकुमारियों के प्रेम-कक्ष तथा राजनैतिक उथल-पुथल एवं षड्यंत्रों से संबंधित राजसभायें। जनता से कट कर इन दोनों पक्षों का विशद् चित्रण करने की प्रवृत्ति पर मध्ययुगीन भारतीय परंपराओं, रूढ़ियों एवं विश्वासों का प्रत्यक्ष प्रभाव है। राजा को देव-तुल्य माना जाता था और राजभक्ति भारतीयों की प्रकृतिवान विशेषता थी।[1]

अन्तःपुरों का वर्णन करने में विवेच्य उपन्यासकारों की विशेष रुचि थी। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेवप्रसाद मिश्र, जयरामदास गुप्त, गंगाप्रसाद गुप्त, जयन्तीप्रसाद उपाध्याय, अखौरी कृष्ण प्रकाश, बाबू युगल किशोर नारायणसिंह आदि उपन्यासकारों के उपन्यासों में अन्तःपुरों के विविध पक्षों का विवरण दिया गया है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' तथा 'रजिया बेगम' उपन्यासों में मुसलमान शाहजादियों तथा सम्राज्ञी के अन्तःपुरों का विशद् वर्णन किया गया है। यह वर्णन गोस्वामी जी की सेक्स के माध्यम से मनोरंजन करने की प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। 'रजिया बेगम' में याकूब जब रजिया को रात के समय एकांत में मिलने के लिए जाता है, उस समय रजिया की ख्वाबगाह का वर्णन उल्लेखनीय है,—'हिन्दुस्तान की सुलताना, रजिया बेगम की ख्वाबगाह का वर्णन हम, झोंपड़े के रहने वाले क्योंकर, कर सकते हैं।.........सुलताना की ख्वाबगाह एक चालीस हाथ लम्बी-चौड़ी बारहदरी थी, जो देखने से बिल्कुल संगमर्मर से बनी हुई मालूम पड़ती थी। वह चिकनी-चिकनी संगमर्मर की पटिया से पटी हुई थी और तरह-तरह के नक्शे बने हुए थे, जिनकी लागत का अन्दाजा करना मानों अपनी अकल से हाथ धोना था। बिल्लौरी झाड़ और हाँडियाँ छत की सुनहली कड़ियों मे सोने की जंजीर के सहारे लटक रही थी और दीवारों में सोने की जड़ाऊ शाखों मे बिल्लौरी फानूस चढ़े हुए थे, जड़ाऊ ब्राकेट में जड़ाऊ गुलदस्ते सजे हुए थे। दीवारों मे चारों ओर सुनहले जड़ाऊ चौखटे मे जड़ी हुई बहुत बड़ी और खूबसूरत तस्वीरे लटकाई हुई थी। कमरे में उतना ही लम्बा चौड़ा मिसर का बना हुआ बेशकीमत और दलदार रेशमी गद्दा बिछा हुआ था, जिसमें शिकारगाह बडी ही खूबी के साथ बनाई गई थी। उस गद्दे पर पैर रखने में एक-एक बालिश्त पैर उसमें धँस जाता.......[2]। याकूब व रजिया का इस ख्वाबगाह में-मिलना, रजिया द्वारा याकूब के अमीर उल-उमरा व हकीको बिरादर

1. "ऐतिहासिक उपन्यास : दिशा एव उपलब्धि" पदमलाल पुन्नालाल बख्शी "ऐतिहासिक उपन्यास" पृष्ठ 78.
2. "रजिया बेगम", पहला भाग, पृष्ठ 106-107.

बनाना तथा फिर अप्रत्यक्ष रूप मे यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अनुग्रह करना[1] अन्त.पुरों के वर्णन की प्रवृत्ति के ही अंग है ।

इसी प्रकार 'तारा' में भी गोस्वामी जी जहानआरा, रोशनआरा, मोती बेगम तथा सौसन रण्डी के अन्त पुरों का महत्त्वपूर्ण ढंग से विवरण प्रस्तुत करते है। लगभग समस्त उपन्यास अन्त:पुर के आन्तरिक षड्यन्त्रों तथा शाहजादियों की यौन-लीला के विस्तृत विवरणों से आच्छादित है। जहानआरा का दारा[2] शाहजाहाँ[3] और इनायतुल्ला[4] के साथ अप्रत्यक्ष सम्बन्ध, जहानआरा की औरंगजेब के साथ साँठ-गाँठ, मोतीबेगम के सलावत खाँ के साथ अवैध यौन सम्बन्ध, मुगल बादशाहों के अन्त:पुरों की लगभग वास्तविक स्थिति का पुन. प्रस्तुतिकरण करते है।

इसी प्रकार 'लालचीन' में ब्रजनन्दन सहाय ने अन्त:पुरों को उनके वास्तविक रूप मे चित्रित किया है। सम्राट गयासुद्दीन लालचीन की पुत्री के साथ रात्रि बिताने के लिए उसके आमन्त्रण पर उसके दीवानखाने में जाता है,—"दीवानखाने में बादशाह के लिए रत्नजटित सिहासन एक अति सुन्दर स्वर्णतार खचित चन्दवे के नीचे बिछा हुआ था।—गान-वाद्य की भी कमी न थी। सुगंधित पुष्प पुष्पदान में सजे थे। विविध रग के सुमनों के गुच्छे दीवार से दरवाजे मे छत से लटक रहे थे। सुगध द्रव्य से भरे कृत्रिम फौआरे मृदुमंद शब्द के साथ उद्भसित होकर चारों ओर सुगध फैला रहे थे। सुखमामयी नर्तकियों के कलकण्ठ-नि.सृत सगीत के काकलीमय उच्छ्वास से कक्ष गूँज रहा था।'[5]

मुसलमानी शासकों एवं शाहजादियो की ख्वाबगाहों के साथ राजपूतों एवं मराठों के अन्त:पुरों को भी विवेच्य उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। अन्त पुरों अथवा ख्वाबगाहो से उपन्यासकारों का आशय केवल शासकों के निवास-स्थान अथवा शयनगृह का चित्रण करने अथवा उनका विवरण प्रस्तुत करने से ही नही है, उनका मूल उद्देश्य मध्ययुगीन सामन्ती जीवन का वह लगभग यथार्थपरक् चित्रण करना है, जबकि केवल शासक अथवा उसके दरबारी एवं अमीर-उमरा ही सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विकास को गति प्रदान करते थे। शासक मुसलमान हों अथवा राजपूत या मराठे मध्ययुगों मे समस्त राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना की आधार-शिला थे।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' में 'शयनगृह'[6] में सदाशिवराव भाऊ के शयनगृह का चित्रण गोस्वामीजी द्वारा किए गए ख्वाबगाहो के चित्रण से नितान्त

1. वही., पृष्ठ 110-112.
2. 'तारा' पहला भाग पृष्ठ 2-5.
3. वही . पृष्ठ 6 जहानआरा दारा से कहती है,—'बादशाह को हर लहज : मैं किसके वास्ते मुट्ठी मे लिए रहती हूँ।'
4. 'तारा' दूसरा भाग पृष्ठ 5-10.
5. 'लालचीन', ब्रजनन्दन सहाय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् 1978, पृष्ठ 71.
6. 'पानीपत' बलदेव प्रसाद मिश्र, पृष्ठ 36-40.

विपरीत भूमि पर किया है। भाऊ भारत का मानचित्र सामने रख कर समस्त भारत में एकछत्र हिन्दू धर्म के मराठा आधिपत्य की परिकल्पना करता है। अपनी पत्नी के साथ भी इसी आशय की बातचीत करता है।

रामजीवन नागर ने भी 'जगदेव परमार' मे अन्त:पुरों की आन्तरिक स्थितियों का चित्रण करते हुए मध्ययुगीन सामन्ती अवस्था तथा बहु-विवाह की शोचनीय स्थितियों को कलात्मक शैली में उभारा है। 'वाघेली का क्रोध'[1] व 'वाघेली का कोप और राजा का शोक'[2] आदि प्रकरणों में अन्त.पुरों की वास्तविक झाँकियाँ उभारी गई है।

मध्ययुगीन भारतीय सामन्ती जीवन के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में अन्त:पुरों का यह वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यकीय है, क्योंकि यह बहुत सीमा तक लोकहित की राजनैतिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को प्रभावित करता था।

राजसभाएँ—अन्त:पुरों के समान राज-दरबारों एवं राज-सभाओं के प्रति विवेच्य उपन्यासकारों की उत्कट रुचि उनकी सामान्य-जनता एवं जन-जीवन के प्रति विरक्ति की परिचायक है। मध्ययुगों में भारतीय राजनैतिक शक्ति का मौलिक स्रोत राजा एवं बादशाह होता था। राजनैतिक गतिविधियों एवं राजनैतिक सत्ता का उत्थान एवं पतन तथा विकास एवं ह्रास के केन्द्र के रूप में राजदरबार एवं राजसभाओं का वर्णन किया गया है। दरबारी संस्कृति ने मध्ययुगीन भारत के हिन्दू रजवाड़ों व मुगल बादशाहों को प्रभावित किया था, वही दरबारी संस्कृति राज-सभाओं के विवरणों मे सजीव होकर उभरी है। मध्ययुगीन शासकों की स्वच्छन्द, निरंकुश एव निष्ठुर सामंतवादिता के साथ-साथ उनकी न्यायप्रियता, प्रजा–वत्सलता, दयालुता तथा नीति-चातुर्य भी राजसभाओं के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। तद्‌युगीन राजनैतिक स्थिति के चित्रण के साथ-साथ वातावरण–निर्माण मे भी यह विवरण सहायक सिद्ध हुए है जबकि सुलतानों एवं बादशाहों के दरबारों के शानदार पक्षों को उद्‌घाटित किया गया है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने रजिया बेगम मे सुलताना के दरबार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उपन्यास के पहले भाग के सातवें परिच्छेद, 'दर्बार-ई-सुलताना' मे दिल्ली के रावा वल्लभ मन्दिर के व्यवस्थापक हरि शकर शर्मा के मामले के माध्यम से तद्‌युगीन राजनैतिक, न्यायिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। दरबार का विशद् वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते है– 'प्रतिदिन आठ बजे से बारह बजे दिन तक सुल्ताना रजिया बेगम दरबार करती थी। जब वह दरबार मे आती, मरदानी पोशाक पहर कर, अर्थात् कबा और ताज पहिर कर तख्त पर बैठती थी।—दरबार में पहुँचने के लिए तीनों ओर पच्चीस-पच्चीस

1. "जगदेव परमार", रामजीवन नागर, पृष्ठ 7-9.
2. वही, पृष्ठ 48-58.

डण्डे की सीढ़ियाँ बनी थीं और चौथी ओर से वह महलसरा से मिला हुआ था। महल की दीवार से सटा हुआ बीचोबीच चार हाथ ऊँचा संगमर्मर का एक चौखटा चबूतरा बना हुआ था, जिस पर सोने का जड़ाऊ सिंहासन रक्खा रहता था—तख्त के सामने नीचे, चबूतरे पर दाहिनी ओर वजीर के बैठने के लिए चाँदी की कुर्सी लगी रहती थी और बाईं ओर पेशकार के बैठने के वास्ते सन्दली कुर्सी। फिर नीचे, अर्थात् दरबार हाल में जमीन में, अमले, अमीर, उमरा, वहददार, जिमींदार इत्यादि अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार बैठते थे। तख्त के सामने वाली जगह खाली रहती थी, वहाँ मुद्दई, मुद्दालह आ-आ कर खड़े होते और नालिश फर्याद करते थे। वहाँ नंगी तलवारें लिए लाल वर्दी वाले सिपाही बराबर कतार बाँधे खड़े रहते और दरबार-हाल के नीचे सजधज कर पाँच सौ सवार खड़े होते थे।[1]........।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत'[2] के पांचवें अध्याय 'दरबार' में पेशवा बालाजी बाजीराव के दरबार का आलीशान एवं विस्तृत चित्रण किया है। इस दरबार में पेशवा का संस्कृत के श्लोकों सहित शौर्यपूर्ण भाषण, सदाशिवराव भाऊ की मुख्य सेनापति के रूप मे नियुक्ति तथा अन्य सरदारों तथा सेना को उसके प्रति वफादार रहने की ताकीद तथा सेना के साथ जाने वाले सरदारों की सूचियाँ आदि मुख्य रूप से दरबारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त दुर्रानी का दरबार,[3] तथा दिल्ली की विजय के पश्चात् सदाशिवराव भाऊ के दरबार[4] के वर्णन में लेखक ने इतिहास के साथ पूर्ण न्याय करने के साथ-साथ अत्यन्त कलात्मक शैली में मुसलमानों की कूटनीति तथा मराठों के अपार वैभव के साथ-साथ आपसी फूट के विकृत रूप का वर्णन किया है।

रामजीवन नागर ने 'जगदेव परमार' में उदयादित्य के दरबार[5] का सजीव चित्रण किया है। राजसी दरबार के वर्णन के साथ-साथ 'रंडियों, गवैयों, कलावंतों, पीरों और भाण्डों का भी वर्णन दिया गया है। यह मध्ययुगीन सामन्ती संस्कृति के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सदस्य थे जबकि ये सभी दरबारी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अभिलेख के अभिरक्षक हुआ करते थे।

बाबू लालजी सिंह ने "वीरबाला" में तथा बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह ने "राजपूत रमणी" में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के दरबार का उत्तम चित्रण किया है। वीरबाला में 'सम्मति'[6] तथा 'मंत्रणा'[7] नामक परिच्छेदों में और "राजपूतरमणी"

1. रजिया बेगम, पहला भाग, पेज 51-52.
2. 'पानीपत' पेज 45-65.
3. 'पानीपत' पेज 255-64.
4 वही, पेज 293-300.
5. 'जगदेव परमार' पेज 58-59.
6. 'वीरबाला' बाबूलाल जी सिंह, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, सवत् 1963 (सन् 1906 ई.) पेज 20-29.
7. वही., पेज 29-36.

के छठे परिच्छेद[1] में राजसिंह की राज्यसभा में रूपनगर की राजकुमारी रूपवती द्वारा राजसिंह को वरने की कामना तथा औरंगजेब से बचाने के उद्देश्य से भेजे गए पत्र पर विचार-विमर्श का वर्णन किया गया है। इस विमर्श में मन्त्री चंदावत जी तथा राजपूत सरदारों के अतिरिक्त कविराजा भी महाराणा को औरंगजेब से क्षत्रिय कन्या के उद्धार की सलाह देते हैं। सीसौदिया कुल के प्राचीन गौरव तथा आतिथ्य रक्षा के संदर्भ में राजपूती वीरता तथा रण-प्रियता की मध्ययुगीन सामन्ती प्रवृत्तियाँ उभरी हैं।

समस्त राजनैतिक निकाय के नियोजक के रूप में राज्यसभाओं का वर्णन मध्ययुगीन सामन्ती एवं दरबारी संस्कृति के पुनः प्रस्तुतिकरण के लिए लगभग अनिवार्य है और विवेच्य उपन्यासकारों ने इसका कलात्मक प्रस्तुतिकरण किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के समान ऐतिहासिक रोमांसों में भी सामान्य जनता से कट कर अन्तःपुरों एवं राजसभाओं का अतिशय चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में अन्तःपुरों तथा राजसभाओं के चित्रण की प्रक्रिया के माध्यम से ऐतिहासिक अतीत का पुनः प्रस्तुतिकरण किया गया, जबकि ऐतिहासिक रोमांसों में अन्तःपुर, ख्वाबगाह, तथा राजदरबार एवं राजसभाओं के माध्यम से शासकों एवं सामन्तों की सामान्य जीवन-क्रिया तथा यौनाचार के साथ-साथ लोकातीत का चित्रण किया गया है। यहाँ अन्तःपुर तथा राजसभायें लोकहित की राजनैतिक घटनाओं के प्रवाह को प्रभावित करने वाले निकाय के स्थान पर विलास एवं मधुचर्या के वातावरण को पुनः निर्मित करती हैं।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के "लवंगलता" "हृदयहारिणी" तथा "मल्लिकादेवी" आदि ऐतिहासिक रोमांसों में अन्तःपुरों का चित्रण हास-विलास तथा मधुचर्या के लम्बे विवरणों से भरा पड़ा है। ऐतिहासिक राजनीति यहाँ पृष्ठभूमि में चली जाती है। लवंगलता के "हार"[2] तथा "जैसे को तैसा"[3] में क्रमशः अन्तःपुर से सम्बद्ध उद्यान में नायक-नायिका का रोमांसिक मिलन तथा नवाब सिराजुद्दौला के हरम में उसे मूर्ख बनाए जाने का चित्रण किया गया है। हृदयहारिणी के "हास-विलास"[4] तथा "सुप्रभात"[5] में नायक-नायिका के अन्यान्य हाव-भावों का चित्रण किया गया है। "लाल कुँवर व शाही रंगमहल" तथा "लखनऊ की कब्र" में अन्तःपुरों तथा राजसभाओं का चित्रण नितान्त कामुक-अश्लील एवं यौनाचारपूर्ण वर्णनों से भरा पड़ा है। "लालकुँवर" के

1. "राजपूत रमणी" बाबू युगलकिशोर नारायण सिंह, (औरंगाबाद, भारतभूषण प्रेस लखनऊ में मुद्रित) 1916 ई., पेज 39-47.
2. 'लवंग लता', पेज 30-36.
3. वही., पेज 65-70.
4. 'हृदयहारिणी', पेज 78-83.
5. वही., पेज 103-105.

"ईद की मजलिस,"[1] "ईद का शरावी"[2] "ईद में मह्‌र्रम"[3] "ईद की तुवायफ"[4] "ईद की शव"[5] तथा "ईद का मज़ा"[6] नामक परिच्छेदों में मुलतान के शहज़ादे जहांदार के अन्त.पुर तथा राजसभा का नितांत वैयक्तिक एवं अश्लील ढंग से चित्रण किया गया है।

"ताजमहल या फतहपुरी वेगम" में फतहपुर के दरवार,[7] दिल्ली का दरवार[8] आदि में मुख्य रूप से शाहज़ादा खुर्रम तथा फतहपुरी वेगम की शादी के सम्बन्ध मे ही विचार-विमर्श किया जाता है। नायिका उद्यान में कबूतर के माध्यम से संदेश प्राप्त करती है[9] तथा अन्तःपुर के एकान्त में पत्र पढ़ती है। इसी प्रकार पाँचवे तथा आठवे परिच्छेद[10] में नायक के महल में उसकी विरह का चित्रण किया गया है।

"जया" के छठवें परिच्छेद में[11] दिल्ली के राजभवन में अलाऊद्दीन केवल जया को ही प्राप्त करने की बात करता है। आठवे परिच्छेद[12] में जैसलमेर के अन्त.पुर के चित्रण में घरेलू-मामलों को मुख्य स्थान प्रदान किया गया है, जवकि महारानी अपने भाई बीकानेर के राजकुमार सुचेतसिंह के साथ जया की शादी करवाने का प्रयत्न करती है।

जयरामदास गुप्त के "वीर वीरांगना" में "झील की बहार"[13]नामक परिच्छेद में सिंध के नवाव अहमदशाह की विलास-लीला तथा अतिकामुकतापूर्ण व्यवहार तथा विवाह का उद्योग[14] नामक परिच्छेद में कनकलता को पाने के लिए विचार-विमर्श ही राजसभा की समस्त प्रक्रिया पर हावी रहता है। इसके विपरीत "राजपूती दरवार"[15] नामक परिच्छेद में राजपूतों की, अहमदशाह द्वारा कनकलता की माँग किए जाने के प्रति प्रवल प्रतिक्रिया का सजीव चित्रण किया गया है। "प्रतिज्ञा वन्धन"[16] नामक परिच्छेद में राजपूतों के अन्त·पुर उनका, साहस, वैर्य, स्नेह, वीरता, आत्मत्याग तथा

1. लाल कुंवर, पेज 1-16.
2. वही., पेज 30-34.
3. वही., पेज 35-45.
4. वही., पेज 46-54.
5. वही., पेज 72-75.
6. वही., पेज 80-85.
7. "ताजमहल या फतहपुरी वेगम", पेज 2-3.
8. वही., पेज 11-13.
9. वही., पेज 6
10. वही., पेज 14-15, 25-29.
11. "जया", पेज 38-44.
12. वही.. पेज 48-52.
13. "वीर वीरांगना वा आदर्श ललना", पेज 8-11.
14. वही., पेज 12-15.
15. वीरवीरांगना, पेज 16-21.
16. वीरवीरांगना, पेज 22-27.

अपनी निर्बलता व फूट के प्रति सजगता को चेतना को उभारा गया है। यहाँ भी राजसभा तथा अन्त:पुर ऐतिहासिक अतीत एवं राजनैतिक घटनाओं के प्रवाह को प्रभावित करने वाले निकाय के स्थान पर जाति के अतीत के गौरव तथा हिन्दू नैतिकता की भावनाओं को ही उभारते हैं।

"नूरजहां" में 'बेचैनी"[1] "गुलबदन कुटनी"[2] नामक परिच्छेदों मे क्रमश: जहाँगीर की विरह-अवस्था तथा मूर्च्छित होना और गुलबदन नामक कुटनी द्वारा नूरजहाँ के विवाह के पश्चात् भी उसे जहाँगीर की ओर मिलाने का प्रयत्न करना (पृष्ठ 56-63) अन्त:पुरों के चित्रण का रोमांसिक स्वरूप उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार "अकबर बादशाह"[3] नामक परिच्छेद मे अकबर तथा अबुलफजल के बीच राजसभा में केवल जहाँगीर और नूरजहाँ के मामले पर विचार-विमर्श किया जाता है न कि किसी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक अथवा ऐतिहासिक विषय पर।

जयरामदास गुप्त के "नवाबी परिस्तान व वाजिदअलीशाह" मे अवध के विलासी नवाब वाजिदअली शाह के हरम का मुख्यत: एव राजसभा का गौणरूप से चित्रण किया गया है। "शाही आरामगाह"[4] नामक झलक मे नवाब के शाही महल तथा उसमे लगे अश्लील भित्ति-चित्रों तथा नवाब के सुबह जागने के समय का वर्णन किया गया है। "नवाब और रोशन आरा"[5] नामक झलक में नवाब रोशनारा को कई लालच देकर अपने हरम मे दाखिल होने के लिए राजी करने का प्रयत्न करता है। छली छलैय्या'[6], "मतवाला नवाब"[7] तथा "इन्द्र और परियां"[8] नामक झलकों में क्रमश:, नवाब द्वारा मद्यपान के पश्चात् बहुत सी बेगमों के साथ अरब मनुव्वल का खेल खेलने, मधुचर्या, तथा क्रीड़ा का रीतिकालीन ढग से चित्रण किया गया है। "नवाब के दिनो रात का प्रोग्राम"[9] नामक झलक मे आसमानी नामक बेगम नवाब को बेकरार करके एक कत्ल करवाने की आज्ञा प्राप्त कर लेती है। इसी प्रकार "लोम-हर्षक दण्ड"[10] नामक झलक मे बेगमों द्वारा निरीह पुरुषों से दिली आरज़ू पूरी करने के पश्चात् मार डालने का आतकपूर्ण ढ़ंग से वर्णन किया गया है।

इस प्रकार ऐतिहासिक रोमासों में अन्त:पुर तथा राजसभाये शासकों एवं

1. "नूरजहा" गगाप्रसाद गुप्त, पेज 8-13.
2. वही., पेज 44-45.
3. वही., पेज 18-24
4. "नवाबी परिस्तान" दूसरा भाग, पेज 57.
5. वही., पेज 10-13.
6. नवाबी परिस्तान, दूसरा भाग, पेज 24-25.
7. वही., पेज 35-40.
8. वही., पेज 41-44.
9. वही., पेज 70-75.
10. वही., पेज 78-82.

राजाओं के हास-विलास, क्रीड़ा, लीला एवं मधुचर्या के स्थलों के रूप में उभर कर आई है।

(ख) **इतिहास से रोमांस की ओर**—विवेच्य उपन्यासों में इतिहास के गम्भीर पुनः प्रस्तुतिकरण करते समय ऐतिहासिक भावभूमि से एक दम रोमांस की ओर कूद जाने की प्रवृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास में तिलिस्म, तथा रहस्य एवं रोमांच की प्रवृत्तियाँ महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली थी। इन्हीं के प्रभाव स्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासो में भी ये प्रवृत्तियाँ स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि मनुष्य अपने अतीत के प्रति रोमांसिक भावभूमि पर ही विचार करता है। अतीत के यथातथ्य पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की पुनः व्याख्या करते है, युग की अन्य मुख्य औपन्यासिक प्रवृत्तियों के प्रभावान्तर्गत वे रोमांसिक स्थितियों एवं भावों को भी अपने उपन्यासों में स्थान देते हैं।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के "रजियाबेगम" तथा "तारा" उपन्यासों में रोमांस की ओर जाने की प्रवृत्ति मुख्य रूप से उभरी है। उदाहरणतः"रजिया बेगम" में गोस्वामी जी आरंभिक परिच्छेदों में तद्‌युगीन स्थितियों का चित्रण करने के पश्चात् "इश्क का आगाज"[1]"दिल का देना और लेना"[2] "आंखे लड़ीं"[3] तथा "इश्क है इश्क"[4] आदि परिच्छेदों में रोमांसिक प्रवृत्तियों यथा प्रथम दृष्टि-जन्य प्रेम, प्रेम के अन्यान्य क्रिया-कलाप यथा गले लगना तथा चुंबन आदि का विवरण दिया गया है।

इसी प्रकार "तारा" में भी शाहजादी जहानआरा का दारा, शाहजहाँ व इनायतुल्ला के साथ, सलावत खाँ का गुलशन नामक दूती के साथ, नूरुलहक नामक मुसाहब का जौहरा नामक दासी तथा रौशनआरा शाहजादी के साथ अनुचित सम्बन्ध रोमांसिक तत्वों को उभारते है। उदाहरणतः "दारा और नूरुलहक",[5] "नूरुलहक और जोहरा"[6]"रंभा और गुलशन,"[7] "गुलशन और उसकी खाला"[8]"तारा और दारा"[9] "सलावत और रंभा,[10] "तावीज व मुर्ग की तस्वीर,"[11] "रंभा और भोगल",[12] "रंभा

1. "रजिया बेगम," पहला भाग, पेज 31-40.
2. वही , पेज 60-66.
3. वही., पेज 67-74.
4. वही., पेज 99.
5. 'तारा' पहला भाग, पेज 24-31.
6. वही., पेज 39-44.
7. वही.. पेज 68-73.
8. वही., पेज 104-105.
9. वही., दूसरा भाग, पेज 16-25.
10. वही., पेज 22-31.
11. वही., पेज 71-75.
12. वही., पेज 47-52.

और चंद्रावत जी"[1] तथा "तारा और राजसिंह"[2] आदि परिच्छेदों में रोमांसिक स्थितियों एवं भावों का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त "तिलिस्मी सुरंगों"[3] व रोमांचमय स्थितियों को भी उभारा गया है।

'लालचीन' तथा 'जगदेव परमार' में रोमांस के तत्त्व अत्यल्प मात्रा में उभर पाए है जबकि 'पानीपत' में वे सर्वथा लुप्त हो गए हैं। यह परिवर्तन ध्यातव्य है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों के समान ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांस के अन्यान्य तत्त्व उपलब्ध होते हैं, यथा शास्त्रीयता विरोध, समकालीनता-विरोध यथार्थ का विरोध आदि का समावेश हुआ है।[4]

इसी प्रकार इन ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांटिक तत्त्व प्रचुर मात्रा में उभर कर आए है।[5]

(ग) काल की धार्मिक धारणा—प्राचीन भारतीय इतिहास-चेतना तथा पौराणिक काल-चेतना पर आधारित काल की सनातन-हिन्दू धर्म-परक धारणा विवेच्य उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों—की मुख्य प्रवृत्ति है, जो न केवल पात्रों के मनोभावों एवं कार्यो को ही प्रभावित करती है प्रत्युत ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को भी नियोजित करती है। भारतीय इतिहास-धारणाओं के अनुसार समस्त मानवीय क्रिया-कलाप कर्मचक्र, नियतिचक्र, कालचक्र तथा पुरुषार्थ-चक्र द्वारा रूपाययित होते हैं। विवेच्य उपन्यासकारों ने इस प्रकार की धार्मिक कालधारणा का अपने उपन्यासों में उपयोग किया है।

काल की धार्मिक धारणा के अनुसार मनुष्य जगत की सभी घटनाएँ एक अलौकिक शक्ति द्वारा नियोजित की जाती हैं। मनुष्य अथवा ऐतिहासिक एजेंट केवल निमित्त मात्र ही होता है। इस प्रकार की इतिहास-धारणा विवेच्य उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों की मुख्य प्रवृत्ति है।

पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र का 'पानीपत' तथा मिश्र बन्धुओं का 'वीरमणि' आद्योपान्त हिन्दू राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है।

(घ) हिन्दू पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण तथा हिन्दू राष्ट्रीयता—हिन्दूवादी दृष्टिकोण, विवेच्य उपन्यासकारों के युग के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पुनः जागरण तथा पुनरुत्थान आंदोलनों की देन है। सनातन हिन्दू धर्म के आदर्श, उनकी

1. वही., पेज 83-84.
2. वही., पेज 85-87.
3. 'तारा,' दूसरा भाग, पेज 8.
4. 'ऐतिहासिक रोमांसों मे रोमांस के तत्त्व' शीर्षक के अन्तर्गत छठे परिच्छेद में इस विषय का अध्ययन किया गया है।
5. इसी परिच्छेद मे 'ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांटिकता' शीर्षक के अन्तर्गत इन तत्त्वो का अध्ययन किया गया है।

पुनः विवेचना, पुनः स्थापना तथा अतीत की भावभूमि के आधार पर उनका पुन. प्रस्तुतिकरण उपन्यासकारो के लिए एक पुनीत कर्तव्य के रूप मे दृष्टिगोचर होता है। धर्म-परक हिन्दू-राष्ट्रीयता भी इन उपन्यासो की एक मुख्य प्रवृत्ति है।

हिन्दूवादी दृष्टिकोण, जो बहुत सीमा तक मुसलमानी विरोध पर आधारित था विवेच्य उपन्यासो को लगभग आद्योपान्त आच्छादित किए हुए है। सनातन-धर्म-परक धार्मिक एवं सामाजिक विश्वासो एवं परपराओ के प्रति गहरी रुचि एव आस्था अभिव्यक्त की गई है। प० किशोरीलाल गोस्वामी के 'रजिया बेगम' मे राधा-वल्लभ मदिर के प० हरिहर शर्मा का प्रसग इसी प्रवृत्ति का परिणाम है, जबकि रजिया हिन्दू धर्म की प्रशसा करती है।[1] इसी प्रकार 'तारा' मे भी जहाँआरा द्वारा हिन्दू धर्म एव रामायण की प्रशसा करवाई गई है।[2]

हिन्दू पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण तथा हिन्दू-राष्ट्रीयता का मूल एव केन्द्रीय साहित्यिक एव ऐतिहासिक विचार जो ऐतिहासिक उपन्यासो मे अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया को नियोजित करता है, वही इतिहास-दर्शन ऐतिहासिक रोमासो मे भी अजस्र रूप से प्रवहमान एव क्रियाशील है।

प० किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, गंगाप्रसाद गुप्त तथा गिरिजानन्दन तिवारी आदि ऐतिहासिक रोमासकारों ने अतीत के पुनर्निर्माण के समय इसी इतिहास-धारणा को मूल कला-विचार (मोटिफ) के रूप मे ग्रहण किया है। जब नितान्त रोमाटिक घटनाओ एव पात्रो के चित्रण तथा रोमाटिक वातावरण के निर्माण से भरपूर होने पर भी यह दृष्टिकोण पात्रो एवं घटनाओ के प्रवाह को प्रभावित करता है, तो यह इन ऐतिहासिक रोमासो की एक मुख्य प्रवृत्ति के रूप मे उभरता है।

1. 'रजिया बेगम', पहला भाग, पृष्ठ 46—जब रजिया एक बूढे फकीर के रूप मे मन्दिर के प्रबन्धक हरिहर से बातचीत करती है तो कहती है—बेशक, आपकी बातो पर मै यकीन करूँगा, क्योकि यह बात मैं बखूबी जानता हूँ कि हिन्दू कौम से बढ कर दुनियाँ मे सच बोलने वाली दूसरी जात नही है। इस कौम जैसी हमदर्दी दियानतदारी, गरीब पर्वरी, फर्माबर्दारी और पाकरूई दुनियाँ के पर्दे पर किसी दूसरी जात मे हुई नही।'
2. 'तारा' प. किशोरीलाल गोस्वामी, पहला भाग, पृष्ठ 14-15, जहाँनारा व तारा सस्कृत व फारसी भाषा के सम्बन्ध मे बातचीत करती है। 'तारा—बेशक, शाहजादी। अगर तुम सस्कृत पढ कर इस का रस चखन काबिल हो जाओगी, तो फारसी की फमाहत को एकदम भूल जाओगी, और तब तुम खुद इस बात को मानने लगोगी कि सारी दुनियाँ मे सस्कृत से बढ कर मीठी जबान दूसरी हुई नही, और इसके बाद व्रजभाषा या फारसी का सलोनापन है।'

   जहाँनारा—'शायद ऐसा ही हो और अक्सर उन लोगो से भी मैंने ऐसा ही सुना है, जो फारसी और सस्कृत दोनो मे अच्छी लियाकत रखते हैं। वाल्मीकि की रामायण के फारसी तर्जुमा के सम्बन्ध मे वह कहती है—"सुबहान अल्लाह। क्या ही दिलचस्प और नसीहत आमेज किस्सा हैं"।

(ङ) **सेक्स के माध्यम से मनोरंजन**—डॉ० गोपालराय ने पाठकों की रुचि का कथा-साहित्य के विकास पर प्रभाव का अध्ययन करते समय प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों के पाठकों की रुचि के सम्बन्ध में लिखा था,—"शृंगार चित्रण और काम व्यापार वर्णन में सामान्यत: सभी शैक्षिक स्तरों के किशोर और वयस्क पाठकों की, विशेषकर पूर्ववर्ती प्रौढ़ावस्था के लोगों की अत्यधिक रुचि होती है। पाठकों की रुचि तथा लेखक की मनोवृत्ति दोनों ही सेक्स के माध्यम से मनोरजन की प्रवृत्ति के अनुरूप हैं।"

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' एवं 'रजिया बेगम' उपन्यासों में इस प्रकार के चित्रण पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं। 'तारा' में नूरुलहक और जौहरा के अवैध सम्बन्ध सेक्स परक हैं, 'नूरुलहक ने बड़े चाव से उसका हाथ पकड़ कर उसे कमरे के अन्दर करके दरवाजा बंद कर लिया और उसे पलंग पर अपने पास बैठा कर प्यार से कहा—"दिलरुबा,जौहरा बीबी अफसोस, बीबी तुम्हारी मुहब्बत का यही नतीजा है कि तड़पते-तड़पते चाहे दम निकल जाय, मगर तो भी मुद्दत तक तुम इस गमजदे की खबर तक न लो।"[1]

इसी प्रकार सलावत खाँ और दूती गुलशन की अवैध क्रियाएँ भी सेक्स के माध्यम से मनोरंजन की प्रवृत्ति का पोषण करती हैं।

"सलावन—(गुलशन को अपनी ओर खैंचकर प्यार से) 'अस्तगफ़िरुल्लाह। लाहौलवला कूवत। प्यारी। तुम्हें क्या मेरी बातों पर यकीन नहीं होता। अगर तुम्हारे फजल से तारा मुझे दस्तयाब हुई, तो सच जानो, मैं कभी तुम सरीखी खुश एख़लाक और हसीन नाजनी को अपने दिल से जुदा कर सकता हूँ? बकौल शख्से,—

खुदा जुदा न करे तुझ परी के सीने से।
कभी हुआ है जुदा नक्श नगीने से?....

फिर तो गुलशन ने कब तक वहाँ मुँह काला किया, यह हमें नहीं मालूम, पर इतना हम जानते है कि बड़े तड़के वह सलावत के कमरे से निकल अपनी बहली पर सवार हो घर गई थी।"[2]

शाहजादी जहाँनारा को रात के दो बजे हकीम इनायतुल्ला, यमुना किनारे वाली बारहदरी में मिलने के लिए आता है और दोनों प्रेमालाप करते हैं।[3]

सलावत रात को तारा को मिलने के लिए अमरसिंह के बाग में पहुँचता है, तो वहाँ उसे रंभा मिलती है। वह उसी से कहता है—"खैर, तो तुम्हीं सही, तुम क्या कुछ कम हसीन और तरहदार हो?....यहाँ पर तुम भूलती हो, सुनो, राजपूती कौम का यह दस्तूर मुझे मालूम है कि जिस शख्स के साथ राजकुमारियों की शादी

1. 'तारा' पहला भाग, पृष्ठ 39.
2. वही., पृष्ठ 56-57.
3. वही. दूसरा भाग, पृष्ठ 4-6.

होती है, वह शख्स राजकुमारियों की सहेलियों और बाँदियों के साथ बेखटके मौज कर सकता है, लिहाज़ा ताराबाई के दस्तयाब करने के बाद तुम पर क्या मेरा हक जायज न होगा।"[1]

जहाँ मुसलमान पात्रों की सेक्स-भावनाएँ अवैध एवं विकृत रूप में प्रस्तुत की गई है, वहीं राजपूत युगलों की यौन प्रक्रियाएँ अत्यन्त वैध, विवाहोपरान्त एवं मर्यादापूर्ण रूप में वर्णित की गई हैं। 'तारा' के तीसरे भाग के दो अंतिम परिच्छेदों में चन्द्रावत जी और रंभा तथा राजसिंह और तारा के प्रेमालाप इसी प्रवृत्ति के परिचायक है।

उदाहरणतः, 'चंद्रावत जी ने रंभा के गालों को प्यार से चूम कर कहा, "प्यारी सच कहो। तुम्हें हमारी कसम। तुम हमें कितना प्यार करती हो?" रंभा ने उस चुंबन का भरपूर बदला लेकर मुस्कराते हुए कहा,—'जितना उस मोगल बच्चे को। जिसकी निस्वत उस दिन मेरी बहिन या जौहरा ने आपसे इशारा किया था।"[2]

इसी प्रकार राजसिंह और तारा की यौन क्रियाएँ उल्लेखनीय हैं—'तारा तस्वीर को उलटी कर उठ कर राजसिंह के गले से लिपट गई और उनके ओठों का हजारा लेकर हँसती हुई बोली—'आपको उस तस्वीर से क्या मतलब है। वह चाहे किसी की हो।'[3]

'रजिया बेगम' में भी इसी प्रकार की सेक्स-परक प्रवृत्ति उभरी है। रजिया शराब के साथ-साथ गानेवालियों के संगीत का मजा उठाती है।[4] जाड़े की अँधेरी रात में रजिया की दासी जौहरा याकूब को बुलाने जाती है। 'यद्यपि रात अंधेरी और जाड़े की थी, पर कामीजनों तक के लिए ऐसा समय बड़े काम का होता है।'[5] याकूब रजिया की ख्वाबगाह में पहुँचता है तो जौहरा वहाँ से टल गई और रजिया ने याकूब की ओर प्यासे नैनों से भरपूर घूर कर कहा,—'मिया याकूब खाँ। आओ भई। मेरे नजदीक आओ बतलाओ तुम किस उलझन मे मुबतिला हो। खुदा के वास्ते अपने दिल की धड़कन दूर करो और आओ, नजदीक आओ।'[6] वह याकूब को अपना 'हकीकी बिरादर' बना कर दस हजार की मनसबदारी देकर दवार का अमीर-उल-उमरा बना कर गुप्त रूप से 'दोस्ताना वर्ताव की'[7] बात करती है।

1. 'तारा' दूसरा भाग, पृष्ठ 25.
2. वही., तीसरा भाग, पृष्ठ 83.
3. वही, पृष्ठ 85.
4. 'रजियाबेगम' पहला भाग, पृष्ठ 36-37.
5. 'रजिया बेगम', पहला भाग, पृष्ठ 99.
6. वही., पृष्ठ 108.
7. वही., पृष्ठ 113.

दिल्ली का तख्त खोने के पश्चात् रजिया अल्तूनिया को सैक्स के माध्यम से ही अपनी मुट्ठी में करती है। अल्तूनिया रजिया के साथ एक दम शादी करने को तत्पर था। पर रजिया ने इसे एक अन्य कार्य-पूर्ति के लिए प्रयुक्त किया। वह अल्तूनिया की सहायता से पुनः दिल्ली पर अधिकार जमाना चाहती है। उदाहरणतः "रजिया ने अपनी मर्दानी पोशाक दूर करदी और अल्तूनिया के गले से लपट कर बोली, प्यारे। तेरी आशिक रजिया, तेरे रूबरू है। अब जो तेरे जी में आवे सो कर।'...अल्तूनिया ने उसे भरजोर सीने से लगा-कर उसके गुलाबी गालों को चूम लिया।"[1]

रजिया के अतिरिक्त याकूब और सौसन[2] तथा अयूब तथा गुलशन[3] की प्रेमक्रीड़ाएँ भी सैक्स की प्रवृत्ति के अनुकूल हैं।

"जगदेव परमार" में पं० रामजीवन नागर ने वीरमती का जमोती रण्डी के कपटजाल में फंसने तथा कोतवाल के लड़के लालजी का वीरमती से व्यवहार सैक्स-परक है। वह वीरमती से कहता है, 'मैं भी जो चाहता हूँ कर डालता हूँ। जब से मैंने जवानी के जीने पर कदम रक्खा है तब ही से मैं बड़ा ऐश और आराम करता हूँ मगर तुम जैसी नाजनी मुझे अब तक मुअस्सिर न हुई। इस शहर भर की रंडियों में जामोती लासानी है उसी का यह मकान है।...बस अब देर मत करो। हमारे साथ मौज उड़ाओ और चैन करो।'

सैक्स के माध्यम से मनोरंजन की प्रवृत्ति जहाँ एक ओर विवेच्य युग के संपूर्ण कथा-साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति थी वहीं वह अतीत युगों की सामंती विलासिता एवं यौनाचार के पुनः प्रस्तुतिकरण में भी सहायक सिद्ध हुई।

ऐतिहासिक रोमांसों में सैक्स के माध्यम से मनोरंजन की प्रवृत्ति दो पक्षों में उभर कर आई है—कामुकता और अश्लीलता।[4] इन ऐतिहासिक कथा-रूपों में अतीत की कथा भूमि पर अन्यान्य ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक पात्रों के क्रिया कलापों के माध्यम से कामुकता तथा अश्लीलता का चित्रण इतनी तन्मयता से किया गया है कि वे एक मुख्य प्रवृत्ति बन गये हैं।

(च) उपदेश (पुराणों आदि से)—प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में सैक्स के माध्यम से मनोरंजन के साथ-साथ प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों एवं पुराणों आदि के माध्यम से उपदेश देने की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है। इतिहास, अथवा ऐतिहासिक व्यक्तित्व एवं परिस्थितियाँ मनुष्यों को कुछ शिक्षा दे सकती हैं अथवा नहीं यह एक विवादास्पद विषय है परन्तु विवेच्य उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर उपदेश देने के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त अवसरों का प्रयोग किया है।

1. 'रजिया बेगम' दूसरा भाग, पृष्ठ 105.
2. वही, पहला भाग, पृष्ठ 60-66.
3. वही, पृष्ठ 67-74।
4. ऐतिहासिक रोमांसों में कामुकता तथा "ऐतिहासिक रोमांसों में अश्लीलता" शीर्षकों के अन्तर्गत छठे परिच्छेद में इस विषय का विवेचन किया गया है।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' में नाना फड़नवीस द्वारा कुसंगति में फँस जाने की स्थिति का वर्णन करते-करते पराई स्त्री के संग के संबंध में लम्बा उपदेश दिया है........'थोड़े लोन के पड़ने से भी दूध फट जाता है, पर स्त्री-गामियों को अपने अविचार पर ध्यान देना चाहिए। जबसे यह व्याधि लगी तब से नाना का चित्त स्थिर नहीं रहता था।........सोचो तो सही कि तुम को किस प्रकार से चोर की भाँति कार्य करना पड़ता है कितनी रात तुमको तड़पते हुए व्यतीत होती है। लाज के मारे कितनी बार नीचे को शर झुकाना पड़ता है ? कितनी बार माता-पिता बन्धु, मित्र और स्त्री की फटकार सहनी पड़ती है..........भगवान् के आगे उत्तर देने में तुम को अवश्य ही इस घोर पाप के लिये पश्चाताप करना पड़ेगा।[1] 'इसके पश्चात् लेखक ने मनुस्मृति के एक श्लोक को उद्धृत कर अयोग्य कर्म करने, जीव को मारने तथा पराई स्त्री के संग को 'शरीर के तीन अधर्म' बताया है।[2]

आगे चल कर लेखक ने आत्मा की शुद्धि के पक्ष में लिखा है,—"केवल शास्त्रपाठ द्वारा ज्ञान-संपादन करने से पाप कार्य करने की वृत्ति दूर नहीं होती, इस कारण मन और शरीर को ऐसी उत्तमता से वश में करना चाहिए कि इन्द्रियों को पाप कार्य करने का अवकाश न मिले। आसुरि वृत्ति के अधीन हो कर जीवन धारण करना उचित नहीं है। पाप कर्म से दूर रहना आत्मा की शुद्धि करना ही उत्तम धर्म है।..........आत्म-शुद्धि से अलौकिकता प्राप्त होती है और तदुपरान्त चित्त की प्रसन्नता होने से जो अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है उसमें सर्व समय शान्ति रहती है. धर्म के प्रकाश से पाप-वासना का नाश होता है।"[3]

इसी प्रकार पं० किशोरीलाल गोस्वामी भी कई स्थानों पर उपदेश देते हैं। रजिया द्वारा याकूब को अत्युच्च स्थान देने तथा दरबारियों के विरोध एवं पराजय के पश्चात् रजिया जब अपने ही भाई बहराम खाँ द्वारा मारी गई तो लेखक कह उठा....,
"पाठक। देखा आपने। रजिया के इश्क का नतीजा देखा आपने अफसोस उस बेचारी ने अपनी जवानी मुफ्त खो दी और न उसने सल्तनत का मजा उठाया और न जवानी का।"[4]

ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में सामान्यतः पौराणिक आदर्शों के आधार पर उपदेश देने की प्रवृत्ति मुख्य रूप से उभरी है।

(छ) **स्वामिभक्ति एवं राजभक्ति**—आदिम युग से मध्ययुग में प्रवेश की प्रक्रिया में कबीले के स्थान पर राजा अथवा शासक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्रबिन्दु बन गया था जो राजनैतिक सत्ता को नियोजित एवं प्रचलित करने वाली एक मात्र शक्ति

1. 'पानीपत', पं. बलदेव प्रसाद मिश्र, पेज 98.
2. वही., पेज 100.
3. वही. पेज 101–102.
4. 'रजिया बेगम' दूसरा भाग, पेज 113.

थी। 'वह राजभक्ति का युग था। मनुष्य राजा में ही देश की भक्ति की पराकाष्ठा देखता था। राजा ही देश की शक्ति का प्रतिनिधि होता था।'[1] वही एक मात्र व्यक्ति था जो राजनैतिक निकाय को गति प्रदान करता था।[2]

राजा के प्रति भक्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मध्ययुगीन प्रवृत्ति थी जो विवेच्य-उपन्यासों में भी मुख्य रूप से उभर कर आई है। मध्ययुगीन पात्रों द्वारा अपने शासक एवं स्वामि के प्रति भक्ति के प्रदर्शन के साथ-साथ विवेच्य उपन्यासकारों ने समकालीन ब्रिटिश राज्यसत्ता के प्रति भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया है।

बाबू बलभद्र सिंह ने 'जयश्री' में मुसलमान विरोधी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते समय ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में भारत को शान्तिपूर्ण एवं समृद्ध-शाली रूप में प्रस्तुत किया है। 'आप अनुमान करते होंगे कि जैसा हम लोग सुख और चैन के साथ शान्तिपूर्वक, ब्रिटिश साम्राज्य में बसते हैं, वैसा ही तब भी रहा होगा। नहीं, ऐसा नहीं है।..........ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभामय शासन में पक्षपात और प्रजा का भी उतना विधान सम्पूर्णतः नहीं है और डाकू, चोर तथा ठग इत्यादि का लेशमात्र भी भय नहीं है। क्या यवन और ब्रिटिश शासन में कांच और कंचन का अन्तर नहीं है।'[3]

शासक एवं स्वामी के प्रति भक्ति की एक प्रबल भावना (लज्जा) "पानीपत" के अधिकांश पात्रों के कार्यों को नियोजित करती है तथा ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने के लिए एक प्रेरणा-स्रोत के रूप में क्रियाशील होती है। उदाहरण स्वरूप दत्ता जी सेंधिया की स्वामिभक्ति उल्लेखनीय है। अपने अपार शौर्य एवं स्वामिभक्ति के कारण उन्होंने दुर्रानी के साथ उस समय युद्ध की ठानी जबकि नजीबखाँ और अहमदशाह दुर्रानी मिल कर शक्तिशाली हो गए थे और दत्ता जी सेंधिया को मल्हारराव हुल्कर की सहायता भी प्राप्त न हो सकी थी। दत्ताजी की भार्या भागीरथी को नौ मास का गर्भ था, इस बिंदु पर नारोशंकर तथा जानराव वावले ने दत्ताजी को युद्ध न करने की सलाह दी थी। स्वामिभक्त दत्ताजी ने इसे अस्वीकार कर दिया और बोले. 'बेटा बहुत दिन से श्रीमान् सरकार का नमक खाया है। क्या युद्ध को छोड़ कर स्त्रियों की रक्षा करना तुमको उचित नहीं जान पड़ता।'[4]

इसी प्रकार दत्ता जी सेंधिया के मूर्छित हो जाने के पश्चात् राजाराम तथा

1. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी. 'ऐतिहासिक उपन्यास शिल्प एवं उपलब्धि', "ऐतिहासिक उपन्यास." पेज 77.
2. Ancient Historians of India: G.S Pathak.
3. 'जयश्री' बाबू बलभद्रसिंह, पेज 45-46.
4. 'पानीपत', पेज 175.

राघोवाकी उनके जीवन तथा बाद में उनके शव को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयत्न उनकी स्वामिभक्ति के अमर प्रमाण हैं।'[1]

पं० रामजीवन नागर ने 'जगदेव परमार' में जगदेव की स्वामिभक्ति का वर्णन कर स्वामिभक्ति की धारणा को उदात्त एवं अलौकिक स्वरूप प्रदान किया है। जगदेव राजा के प्राण बचाने के लिए सहर्ष अपना सिर कटवाने को तत्पर हो जाता है—'अहा। इससे बढ़ कर और मुझे क्या चाहिए। जो तुम राजा का प्राण बचादो तो मै अपना सिर काट कर तुम्हारे अर्पण करने को तैयार हूँ।"[2] जब वह अपनी पत्नी से आज्ञा लेने के लिए जाता है तो वीरमती उसे कहती है "इतने दिन से जिसका नमक खाते हैं, आज परमेश्वर ने उसका बदला देने का अवसर दिया है, तो अब देर न करना चाहिए परन्तु पति बिना स्त्री किस काम की ? आप जाते है तब मैं रह कर क्या करूँगी ? आपके साथ मैं भी अपना प्राण दूँगी[3]।" इसी प्रकार वे अपने दोनों पुत्रों को भी बलिदान करने को तैयार कर लेते हैं। स्वामिभक्ति का इससे अधिक उत्कट उदाहरण और क्या हो सकता है।

बाबू लाल जी सिंह के 'वीर बाला' तथा बाबू युगल किशोर नारायण सिंह के 'राजपूत रमणी' उपन्यासों में राजपूतों की उदात्त एवं अनन्य स्वामिभक्ति का उत्तम चित्रण किया गया है। मेवाड़ के राणा राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी रूपमती के साथ विवाह करने तथा औरंगजेब से उसका उद्धार करने का निश्चय किया। सलूम्बरा के सरदार चंद्रावत जी ने औरंगजेब को आगरा के पास रोकने का प्रण किया ताकि राणा इस बीच रूपमती को ब्याह लावें। चन्द्रावत जी की नव-विवाहिता हाड़ी रानी जब स्वयं को पति की स्वामिभक्ति एवं कर्त्तव्यपालन के लिए बाधा समझती है, तो विचारती है, "........स्वामी का चित्त मेरी ओर खिचा हुआ है। मेरे बार बार विश्वास दिलाने और समझाने पर भी उनकी चिन्ता दूर नहीं होती है। जब इनका दिल मेरे में लगा है, तो संग्राम में इनसे कुछ पराक्रम न हो सकेगा, और इस दशा में अपने राणा जी के कार्य सिद्ध करने में असमर्थ होंगे।........ एक पत्र लिख सेवक के हाथ में दिया और एक तीक्ष्ण खंग उठा कर अपनी गर्दन पर मारी फिर क्या देर थी सिर धड़ से अलग गिर पड़ा, रानी की सुन्दर प्रतिमा पृथ्वी पर छटपटाने लगी।[4]" पत्र में रानी ने स्वामिभक्ति की बात इस प्रकार लिखी थी,........"आप जिस प्रतापी सीसौदिया वंश में उत्पन्न हुए हैं, उसकी प्रतिष्ठा और गौरव को भली भाँति जानते हैं, जिस प्रकार आपके प्रतापी पूर्वजगण अपने धर्म को पालन करते हुए इस नश्वर मानव जगत में अपनी यशपताका स्थिर कर गये है और जिस तरह वह लोग अपनी गौरव-रक्षा, देश-रक्षा, स्वामी के कार्य के लिए संसारी सुख,

1. वही. पेज 180-88.
2. 'जगदेव परमार', पेज 117.
3. 'जगदेव परमार', पेज 13
4. 'वीरबाला', बाबू लालजीसिंह, पेज 49.

धन, दारा, पुत्र, कलत्र और राज्य वैभव को तुच्छ कर वीरतापूर्वक लड़कर अपने प्राण गँवाये हैं, इसको आप जानते हैं परन्तु फिर भी आप अपनी कुलमर्यादाओं के विरुद्ध मेरे कारण इस प्रकार शोकान्वित हो रहे हैं।"[1]

यही कथावस्तु, 'राजपूत रमणी' में भी वर्णित की गई है। हाड़ी रानी ने अपनी सखी'मालसी से अपने पति का खड्ग मँगाय खड्ग को हाथ में लेकर उस दूत को जो उत्तर के लिए पाषाणवत् खड़ा था सम्बोधन करके कहा कि मैं अपना सिर तुम्हें देती हूँ। इसे अपने स्वामी को मेरी ओर से भेंटस्वरूप देना और कहना कि हाड़ी जी पहले ही सती हो गई।"[2]

स्वामि-भक्ति एवं त्याग की यह प्रवृत्ति भारतीय मध्ययुगों के सामंती एवं दरबारी जीवन-दर्शन का मेरुदण्ड थी। अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में यह प्रवृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तर पर उभरी है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के समान ऐतिहासिक रोमांसों में भी स्वामि-भक्ति एवं राज-भक्ति की प्रवृत्ति अतीत के पुनः निर्माण की एक नियोजक शक्ति के रूप में उभरी है। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के 'कनक-कुसुम' में पेशवा बाजीराव के साथ केवल बीस-पच्चीस सवार ही अपने स्वामी के इशारे पर निजाम के दो हजार सिपाहियों से जूझ पड़ते हैं।[3]

"लवंगलता' तथा 'हृदयहारिणी' 'में नरेन्द्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं क्लाईव के प्रति वफादार रहता है। इसी प्रकार 'मल्लिकादेवी' में नायक नरेन्द्र केन्द्रीयशासक गयासुद्दीन बलबन के प्रति वफादार रहता है। 'लाल कुंवर व शाही रंगमहल' में सलीमा बेगम की शीरीं नामक दासी व रुस्तम नामक खोजा अत्यन्त वफादारी से सहायता करते हैं।[4]

'ताजमहल या फतहपुरी बेगम' में इमदाद खाँ, शाहजादा खुर्रम के प्रति वफादार रहता है। 'जया' में अलाउद्दीन के सिपाहसालार सरफराज खाँ के घेरे में आने के पश्चात् राजपूत अत्यन्त वीरता से उसका सामना करते हैं, जो स्वामिभक्ति एवं राज-भक्ति का अनन्य उदाहरण है।[5]

गंगाप्रसाद गुप्त के नूरजहाँ में बुन्देलखण्ड के राजा नरसिंह देव जहाँगीर के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने के लिए अबुलफजल का कत्ल कर देता है।[6]

1. 'वीरबाला', पेज 50.
2. "राजपूत रमणी", बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह, पेज 56-57.
3. 'कनक कुसुम वा मस्तानी' पेज 7-8.
4. 'लालकुंवर व शाही रंगमहल', पेज 40-41.
5. 'जया', पेज 27.
6. 'नूरजहाँ', पेज 67-76.

इसी प्रकार जयरामदास गुप्त के 'वीर वीरांगना' में मधुर तथा मंजुला नामक काल्पनिक पात्र अपनी जान पर खेल कर क्रमशः राजा पर्वतसिंह तथा[1] कनकलता की सहायता करते है ।[2]

भारतीय मध्य युगों के पुनः प्रस्तुतिकरण, पुनर्व्याख्या तथा पुनर्निर्माण की प्रक्रिया मे स्वामिभक्ति एवं राजभक्ति की प्रवृत्तियाँ, इतिहास-धारा, घटनाप्रवाह तथा पात्रों के कार्यो की नियोजक शक्ति के रूप में ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में अभिव्यक्त की गई है ।

(ज) **रीतिकालीन शृंगार एवं प्रकृति वर्णन**—विवेच्य उपन्यासकारों ने अपने युग के एक साहित्यिक-रुचि-सम्पन्न काव्य-रसिक पाठक वर्ग को दृष्टिगत रखते हुए तथा उत्तराधिकार में प्राप्त साहित्यिक परिपाटियों के अवशेषों के प्रभावस्वरूप अपने उपन्यासों में रीतिकालीन शैली में शृंगार एवं प्रकृति-वर्णन प्रस्तुत किए ।

पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में इस प्रकार के शृंगार एव प्रकृति वर्णन बहुलता से प्राप्त होते है। 'तारा' तथा 'रजिया बेगम' मे मुस्लिम शहजादियों के सैक्सपरक सौन्दर्य तथा राजपूत रमणियों के नख-शिख वर्णन के माध्यम से शृंगार का चित्रण किया गया है । 'तारा' के आरम्भ में ही दारा शिकोह तथा जहाँनारा का यौन-सम्बन्ध उद्दाम भोग की रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुरूप है । जब जहाँनारा दारा को शहजादियों के इश्क से दूर रहने के वारे मे कहती है, तो—"दारा ने मन ही मन कहा, 'जी हाँ । सही है ? बीबी की एक शब भी बगैर किसी को बगलगीर बनाए चैन न आता होगा और तिस पर तुर्रा यह कि हजरत इश्क की लज्जत ही नहीं जानती, फिर बेगम से कहा—'प्यारी हमशीरा तुम सच कहती हो, जबकि शहजादियों की क़िस्मत में खुदा ने अकसर निकाह का होना ही नहीं लिखा है, तो फिर तुम सरीखी वेचारी नाजनी इश्क के मामलात में क्योंकर आगाही रख सकती हो।"[3] इसी प्रकार 'तारा के तीसरे भाग के अन्त में 'रम्भा और चन्द्रावत जी' (पृष्ठ 83-84) तथा 'तारा और राजसिंह' (पृष्ठ 85-87) नामक परिच्छेदों में विवाहित दंपत्ति के हास-विलास तथा प्रेम का सैक्स-परक वर्णन रीतिकालीन ढंग से किया गया है ।

'रजिया वेगम' के पहले भाग के 'दिल का लेना और देना' (पृष्ठ 60-66) तथा 'आँखें लड़ीं' (पृष्ठ 66-74) नामक परिच्छेदों में याकूब व सौसन तथा अयूब व गुलशन के प्रेम की झाँकियाँ तथा हाव-भाव वर्णन रीतिकालीन ढंग का है—'याकूब ने सिर उठा कर सौसन की ओर देखा और चार आंखें होते ही सौसन ने शरमाकर सिर झुका लिया और याकूब ने आजिजी से कहा,—"खुदारा, ऐसा न फर्माइए, आप में और मुझ में जमीन और आसमान की तकवत है ।"[4]

1. 'वीरवीरांगना', पेज 74.
2. वही, पेज 94.
3. 'तारा' पहला भाग, पेज 3.
4. 'रजिया वेगम'. पहला भाग, पेज 61.

इसी प्रकार जब ग्रयूब ग्रौर गुलशन पहली बार शाही बाग में मिलते हैं, तो "ग्रयूब ने ग्रपने सामने एक परिजमाल को खड़े देखा, जिसे देखते ही वह उठ खड़ा हुग्रा, पर घबराहट, खुशी, डर ग्रौर कलेजे की धड़कन से उसकी जबान तालू से ऐसी चिपक गई थी कि उससे कुछ भी बोला न गया। यही हाल उस परी का भी था।...... एकाएक उस सुन्दरी ने ज्यों ही ग्राँखें उठाईं कि उसकी ग्राँखें ग्रयूब की ग्राँखों से बेतरह लड़ पड़ीं, किन्तु लाचारी से उस सुन्दरी को ही ग्रपनी ग्राँखें नीची कर लेनी पड़ीं। यों ही जब दो-चार बार ग्रापस में नैनों के वार चल चुके, तब कुछ साहस पाकर ग्रयूब ने उस सुन्दरी का हाथ ग्रपने दोनों हाथों में ले लिया।"[1]

इसी प्रकार प्रेमी युगल के स्पर्शों का शास्त्रीय पद्धति से वर्णन भी रीतिकालीन श्रृंगार वर्णन को प्रवृत्ति का द्योतक है—'ग्रब क्या फकत मैं ही बहूँगा' यों कह कर उसने सौसन का हाथ पकड़ कर उठाया ग्रौर उसे चौकी पर बिठा कर उसके बगल में ग्राप भी बैठ गया उस स्पर्श-सुख से सौसन के रोम-रोम में सात्विक भाव की तरंगें निकलने लग गईं थी, ग्रौर कम्प, रोमाञ्च, प्रस्वेद, स्वरभंग, वैवर्ण्य ग्रादि सात्विक लक्षण उसके चेहरे ग्रौर सारे शरीर से प्रकट होने लगे थे। याकूब के मुख ग्रौर शरीर में भी यह लक्षण दिखलाई पड़ने लगे थे।"

सौन्दर्य के साथ प्रकृति का सैक्स-परक-वर्णन भी रीतिकालीन पद्धति पर किया गया है।—'यद्यपि रात ग्रन्धेरी ग्रौर जाड़े की थी, पर कामीजनों तक के लिए ऐसा समय बड़े काम का होता है। सो जोहरा दो-तीन घड़ी रात बीतने पर चुपचाप महल से बाहर हुई ग्रौर बाग में होती हुई बाग के बाहरी हिस्से के उस ग्रोर पहुँची, जिधर याकूब का डेरा[2] था।' वह वास्तव में याकूब को रजिया के रंगमहल में ले जाने के लिए गई थी।

ऐतिहासिक उपन्यासों की ग्रपेक्षा ऐतिहासिक रोमांसों में रीतिकालीन सौन्दर्य एवं प्रकृति-चित्रण के लिए ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक ग्रवसर प्राप्त हुए हैं।

प० किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता' 'हृदयहारिणी' तथा 'मल्लिका देवी' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में रीतिकालीन श्रृंगार एवं प्रकृति-वर्णन बहुलता से उपलब्ध होते हैं। "लवंगलता" मे सिराजुद्दौला नायिका लवंगलता का चित्र देख कर उस पर ग्रासक्त होता है। 'चित्र' (पृष्ठ 25-20) नामक परिच्छेद मे नवाब ग्रपने मुसाहब नजीर को लवंगलता के उपलब्ध करने की बात करता है। 'हार' (पृष्ठ 30-30) नामक परिच्छेद मे परम्परावादी ढंग से नायक-नायिका का प्रथम मिलन तथा नायक द्वारा नायिका के हार की प्रशंसा करना रीतियुगीन एवं शास्त्रीय पद्धति के ग्रनुरूप है।[3] 'तस्वीर वाली' (पृष्ठ 38-45) नामक परिच्छेद मे सिराजुद्दौला की कुत्सी

1. 'रजिया' पहला भाग, पेज 70.
2. वही, पेज 99.
3. 'लवंगलता' पेज 31.

लवंगलता को नवाब की तस्वीर प्रस्तुत करने का वर्णन भी रीतिकालीन परम्परा के अनुरूप है। इसी प्रकार 'रूप' (पृष्ठ 80-84) मे नायिका का नख-शिख वर्णन भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। 'हृदयहारिणी' नामक ऐतिहासिक रोमास मे नायक-नायिका का प्रथम-दृष्टि-जन्य प्रेम रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुरूप चित्रित किया गया है।[1] नायिका के सौन्दर्य का रीतिकालीन शैली मे वर्णन किया गया है।[2] 'नख-शिख' (पृष्ठ 72-76) नामक परिच्छेद मे नायिका के नख-शिख का रीतिकालीन पद्धति से चित्रण किया गया है, जिसमे कालिदास का भी सन्दर्भ दिया गया है।

'लालकुवर व शाही रगमहल' मे 'ईद की मजलिस' (पृष्ठ 1-16) नामक परिच्छेद मे शाहजादे जहाँदार के दरबार मे रडियो के नाच-गाने का सेक्स-परक चित्रण रीतिकालीन पद्धति पर किया गया है।

रामजीवन नागर के 'जगदेव परमार' मे विरह का काम-परक चित्रण रीति-कालीन ढग से किया गया हे। 'वीरमनी से मिलाप' नामक प्रकरण मे राजकुमारी के विरह का वर्णन तथा प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन इसी प्रवृत्ति के अनुरूप किया गया ह—'जिस मनुष्य के हृदय मे कामदेव की प्रचण्ड अग्नि जल रही है, उसके ऊपर यदि चन्दन का लेप किया जाए, तो उसका वैसा ही फल होगा जैमा कि कुम्हार के पकते हुए आवा पर कीचड का लेप करने से वह शात नही होता है वरन् और अधिक दहकता है बस यही दशा वीरमती की थी ज्यो-ज्यो शीतल हवा उसके अग पर लगती थी और पक्षियो का मधुर स्वर उसके कानो मे जाता था त्यो-त्यो ही उसका भीतरी दाह अधिकाधिक होताजाता था। वह बैठी हुई अपने मन ही मन मे कह रही थी—'अरे! अब क्या करूँ? आज शरद् की पूर्णिमा हे, सब सखियाँ अपने अपने पति के साथ ऊपरी अटारी पर चढ कर शीतल भोजन करेगी, सुन्दर वस्त्र पहनेगी, कपूर मिला कर माथे पर चन्दन लगावेगी और सुखपूर्वक अच्छी तरह शयन करेगी परन्तु मैं अभागी रो-रो कर मरूँगी। हाय! आज पति का मुख देखे पाँच वर्ष हो गए। यौवन ने अपना राज्य आ जमाया। सारा देह काम की इच्छा मे कापता ह। हृदय भीतर से जला जाता हे परन्तु हमारे पति ने तो हमको बिलकुल चित्त ही मे उतार दिया है।"[3]

बाबु युगलकिशोर नारायण सिंह के "राजपूत रमणी" मे अन्त पुर तथा सौन्दर्य का रीतिकालीन पद्धति मे चित्रण किया है। "नवयुवती की उम्र 15-16 वर्ष से अधिक न होगी, उसकी सुन्दरता क्या हे? मानो सृष्टिकर्त्ता की कारीगरी का नमूना हे। कभी-कभी यह भी शक हो आता हे कि लैम्प से इतना उजाला हो रहा है कि सुन्दरी की सुन्दरता मे? उसका अग-प्रत्यग सुडौल, उस पर भी माणिक ने

1. 'हृदयहारिणी', पेज 1.
2. वही., पेज 19.
3. 'जगदेव परमार', पेज 68-69.

जड़े हुए आभूषण सोने में सुगंध वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। उसकी सुन्दरता का वर्णन करना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। सच पूछो तो ब्रह्म ने इस नवयुवती को स्वर्गलोक से उठा कर मृत्यु लोक में सिर्फ इस गरज से भेजा है, उनकी कारीगरी मनुष्य मात्र पर प्रकट हो जाय।[1] इसी प्रकार रूपवती का सौन्दर्य वर्णन भी इसी प्रवृत्ति के अनुरूप किया गया है—"सुन्दरी की अवस्था 17 वर्ष से अधिक न होगी। कद औसत, बदन पतला, चेहरा खूबसूरत, आँखें मृगों की नाई बड़ी-बड़ी बांकी भौंहें, ओष्ठ बिम्बाफल सरीखे, दाँत मोती की तरह चमकीले, और खुले हुए सिर के बाल कमर तक गिर कर पृथ्वी छू रहे थे।"[2] जब वह औरंगजेब के आने का समाचार सुनती है, तो बेहोश हो जाती है।[3] यह भी एक रीतिकालीन प्रवृत्ति है।

बाबू लाल जी सिंह के "वीरबाला" में रूपमती का विरह-वर्णन रीतिकालीन पद्धति एवं शैली में किया गया है—"ऐसे प्राकृतिक आनन्ददायक समय में राजस्थान के रूपनगरीय राजभवन में एक परम लावण्यमयी षोडष वर्षीय बालिका विपन्न-वदन करतल-आश्रित कपोलों को अजस्र अश्रुधारा से भिगोती पृथ्वी सिंचन कर रही है। कभी शिर उठा कर द्वार की ओर ताकती है, मानो किसी की बाट जोह रही है फिर निराश होकर आह भर कर लम्बी साँस लेती है, आज किसी भाँति कल नहीं है इसकी दशा से मालूम होता है कि इस पर भारी विपत्ति पड़ी है.......इसी प्रकार रोती विलखती यह अज्ञात-यौवना बालिका थक कर मूर्च्छित हो धराशायी हुई।"[4]

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह के वीर चूड़ामणि में रीतिकालीन पद्धति से प्रकृति का चित्रण किया गया है—"प्रातःकाल हो गया। बाल दिवाकर की सुन्दर किरणें मन को लुभाने लगीं.......सरोवर विचित्र था। लोग उसकी शोभा देखने में मुग्ध हो गए। उस सरोवर में सीढ़ियाँ स्वच्छ स्फटिक की बनी हुई थीं। भँवरगण सरोजिनी के मधुर सौरभ से मोहित गान कर रहे थे। समीपवर्ती कदंब वृक्ष की नई-नई पत्तियाँ सूर्य की छाया रोक कर जल पर रंग-बिरंगों की शोभा प्रदर्शित कर रही थी।"[5]

रीतिकालीन सौदर्न्य एवं प्रकृति-चित्रण विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की मुख्य प्रवृत्ति है।

(क) रासो कालीन शौर्य एवं युद्धों का वर्णन—विवेच्य उपन्यासकारों ने प्राचीन रासो काव्यों की पद्धति का अनुसरण करते हुए अपने उपन्यासों में शौर्य, वीरता एवं युद्धों का वर्णन किया है। राजपूतों का अनन्य जात्याभिमान, गौरवपूर्ण जातीय इतिहास, अपने धर्म के लिए एक प्रबल भावना तथा स्त्रियों की रक्षा करने के लिए भयानक संग्राम विवेच्य उपन्यासों में अभिव्यक्त किया गया है। "पानीपत" में

1. 'राजपूत रमणी,' पेज 5.
2. वही., पेज 27.
3. वही., पेज 28.
4. 'वीरबाला,' पेज 1-5.
5. 'वीर चूड़ामणि' पेज 92.

रही है। प्रबल वैरियों का हृदय कँपाने वाला रण का डंका घर, खेत, मैदान,कोट,गढ और पर्वत की चोटियों पर सब जगह सुनाई दे रहा है। संसार को चकित करने वाले इस वीर समारोह ने मानो आज उदयपुर को मानव समुद्र बना दिया है। रणवाद्य के साथ-साथ मंगलवाद्य और मंगल गीतों के साथ-साथ वीर रस के गीत टकरा-टकरा कर समुद्रवत् लहर मार रहे हे।"[1]....क्रमशः दोपहर हो गया भास्कर देव ने अपनी प्रखर किरणों से संसार को उत्तप्त कर दिया उसके साथ-साथ वीरों का उत्साह भी गरम होता जाता है, दोनों ओर के योद्धा रणमद से मत्त अपने कार्य में लीन है। हजारों शूरवीर गिरकर वसुंधरादेवी की गोद में लोट-लोट कर छटपटा रहे हैं। उनकी पुकार अश्वों की हिनहिनाहट, आहत हाथियों का चीत्कार, चारण और नकीबों की गम्भीर उत्तेजक विरुदावली का गगनभेदी स्वर और वीरों की ललकार के साथ बर्छो-खगों की झनकार और चमचमाहट का भयंकर दृश्य उस मध्याह्न काल के सूर्यताप में प्रलय का बोध कराता है।[2]

इस प्रकार विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस स्वर्णिम हिन्दू अतीत के आदर्शों को भारतीय मध्ययुगों में प्रक्षेपित करने की मूल प्रवृत्ति तथा मध्ययुगीन सामन्ती सभ्यता एव संस्कृति के पुनर्निर्माण एवं पुनर्व्याख्या के साहित्य-विचार द्वारा ही नियोजित होते है। अन्तःपुर एव राज्य सभाएँ, उनका ऐतिहासिक एवं रोमांसिक पद्धति से वर्णन, हिन्दू धर्म के सनातन स्वरूप का मध्य युगों मे प्रक्षेपण एवं पुनः स्थापन सैक्स, अपराध तथा उपदेश के विरोधाभास विवेच्य ऐतिहासिक-कथापुस्तकों की प्रवृत्तियाँ है। मध्ययुगों के चित्रण की प्रक्रिया में स्वामिभक्ति, राजभक्ति, रीतियुगीन शृंगार एवं प्रकृति-चित्रण तथा रासोयुगीन वीरता एव शौर्य का वर्णन मुख्य रूप में उभरे हैं।

अतः उपर्युक्त नौ सामान्य प्रवृत्तियाँ ही हिन्दी मे दोनों प्रकार के कलारूपो का स्वरूप निर्धारण करती है। इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ही उपन्यास-शिल्प, भाषा और शैली, चरित्र-चित्रण आदि के तकनीक आदि भी नियमित हुए है।

आगे के अध्यायो मे हम इन्हें ही लेगे।

---

1. 'वीर बाला', पेज 55.
2. 'वीर बाला', पेज 81.

5 ऐतिहासिक उपन्यासकारों की इतिहास-धारणायें तथा उपन्यासों के शिल्प तथा चक्र

पिछले अध्याय के अनुक्रम मे अब आगे प्रेमचन्दपूर्व उपन्यासकारों की इतिहास-विषयक धारणाओ का अनुशीलन कर सकते हे। उन्होंने अपने-अपने ढग से पुनर्व्याख्याएँ की है, किन्तु उनकी प्रतिक्रियाएँ एक व्यापक सांस्कृतिक पैटर्न के अतर्गत समाविष्ट हो सकती है।

इसी तरह उनके उपन्यास-शिल्प के प्रयोग इतने विपुल और विविध है कि अनेक परवर्ती दिशाएँ उन्हे विकास देती है।

अब हम दोनो पक्षो का निरूपण करेगे।

(I) ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इतिहास की धारणाएँ तथा पुनर्व्याख्याएँ

इतिहासकार के समान ऐतिहासिक उपन्यासकार (ऐतिहासिक रोमासकार नही) भी मानवीय अतीत के देश एवं काल की सुनिश्चित सीमाओं मे बद्ध एक विशिष्ट कालखण्ड को अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाता है। अध्ययन की प्रक्रिया मे दोनो—इतिहासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार-नितान्त विपरीत दिशाओं मे कार्य करते हैं। इतिहासकार अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक खोज-पद्धति का आश्रय लेकर मानवीय अतीत के रहस्यों का उद्घाटन करता है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासकार मानवीय अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड को अपने उपन्यास के कथानक के रूप मे लेता है और उस विशिष्ट काल तथा देश की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक स्थितियो का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं उनकी पुनर्व्याख्या करता हे। उसकी कृति एक कलाकृति होती है। अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्व्याख्या की इस प्रक्रिया मे लेखक की इतिहास-धारणा उभर कर आती है। मानवीय अतीत के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण, युग विशेष के प्रति एक भावावेश, अन्तहीन (अनन्त) काल के निरन्तर प्रवाह की चेतना तथा एक विशिष्ट इतिहास-दर्शन लेखक की इतिहासधारणा को प्रभावित करता है। यह विशिष्ट इतिहासचेतना, जिससे ऐतिहासिक कृति अथवा ऐतिहासिक उपन्यास अनुप्राणित होते है, कृति की आत्मा होती है।

सामान्यतः मूल ऐतिहासिक तथ्य सभी इतिहासकारों तथा ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए समान ही होते है। यह मूल तथ्य इतिहास अथवा ऐतिहासिक

उपन्यास के कथानक की रीढ़ की हड्डी होते हैं। इन्हीं मूल तथ्यों को आधार बना कर जब उपन्यासकार अतीत का पुनः प्रस्तुतिकरण करने की प्रक्रिया से गुजर रहे होते है, तो अतीत के स्वरूप एवं तथ्यों में एक सूक्ष्म परिवर्तन आ जाता है इस परिवर्तन का मूल कारण उपन्यासकार की इतिहास-धारणा ही होती है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों की इतिहास-धारणा ने इतिहास के तथ्यों एवं उनके स्वरूप को काफी प्रभावित किया है। उनकी इतिहास-धारणा मध्ययुगीन विश्वासों एवं परम्पराओं पर आश्रित है।

इन्हीं मध्ययुगीन तथा समकालीन विश्वासों के आधार पर विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने इतिहास की पुनर्व्याख्याएँ भी प्रस्तुत कीं। जो धार्मिक पूर्वाग्रहों, सामाजिक संघातों, सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा समकालीन निराशावादी प्रवृत्ति द्वारा प्रभावित थीं।

(क) इतिहास की धारणाएँ—प्रेमचन्द्र-पूर्व ऐतिहासिक-उपन्यास लेखक सामान्यतः भारतीय इतिहास-चेतना द्वारा अनुप्राणित थे। यद्यपि बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में विश्व इतिहासवाद तथा इतिहास-खोज की वैज्ञानिक एवं आधुनिक पद्धतियों की ओर अग्रसर हो रहा था, तथापि विवेच्य उपन्यासकार मूलतः एव मुख्यतः भारतीय इतिहास-दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करते थे। वे अंग्रेज़ इतिहासकारों की कृतियो को सम्मान की दृष्टि से देखते थे तथा मुसलमान इतिहासकारों के प्रति पूर्वाग्रही थे।[1] मूलतः हिन्दू दृष्टिकोण से परिचालित ये उपन्यासकार मुस्लिम-विरोध के आधारभूत मतवाद द्वारा ही ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की धर्म-शास्त्रीय ढंग से व्याख्या करते थे। कहीं-कहीं तद्युगीन हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा धार्मिक सहिष्णुता की चर्चा ऐतिहासिक समस्याओ एवं घटनाओं के संदर्भ में की गई है।

(i) स्वच्छन्द इच्छा एवं महान् व्यक्ति (नायक पूजा) की धारणा—विवेच्य उपन्यासकार सामान्यतः 'स्वतन्त्र मानवीय इच्छाओं' द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया के सिद्धान्त के समर्थक थे, परन्तु उनकी यह धारणा भी इतिहासवाद से सम्बद्ध थी। उनके उपन्यासों के पात्र सामान्यतः अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करके ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह का निर्माण करते है।

1. देखिए—(क) "तारा" किशोरीलाल गोस्वामी निवेदन 1902 (प्रथम संस्करण) पेज ख-घ (नोट, तारा के दूसरे व तीसरे भाग के दूसरे संस्करण से ही उद्धरण दिए गए है, दूसरे संस्करण में उपन्यास का नाम "तारा व क्षत्रकुल कमलिनी" रख दिया गया। हिन्दी उपन्यासकोश : डॉ० गोपालराय : 1968, पेज 127).

(ख) जयश्री—बाबू बलभद्रसिंह, दूसरा संस्करण 1923 ई०, काशी, पृष्ठ 48-49 (नोट—इस उपन्यास का पहला संस्करण सन् 1911 ई० में उपन्यास बहार आफिस द्वारा ही प्रकाशित किया गया था।—'उपन्यास कोश', पृष्ठ 143)।

इन उपन्यासकारों की, स्वच्छन्द-मानवीय इच्छा की इतिहास-धारणा के पीछे नायक-पूजा[1] की मध्ययुगीन प्रवृत्ति एक प्रवल केन्द्रीय अभिप्राय (मोटिफ) के रूप में क्रियाशील है। यद्यपि मनुष्य, वह महान् पुरुष भी क्यों न हो अपने पर्यावरण एवं युग की उपज होता है, तथापि विवेच्य उपन्यासों के नायक अथवा नायिका अपने अत्यन्त प्रभावशाली एवं केन्द्रोन्मुख व्यक्तित्व के कारण उपन्यास के समस्त कथानक एवं घटनाओं के नियन्ता एवं परिचालक के रूप में उभरे हैं। उनकी मनोकामनाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ एव भविष्य-विचार कथा-प्रवाह को प्रभावित करते हैं तथा इतिहास को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते है।

प० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' में मुख्य सेनापति की स्वच्छन्द इच्छा तथा मनोविज्ञान का विशद् चित्रण करते हुए उसे ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की नियोजक-शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरणत: युद्धोन्मत्त मराठा सेना के सेनापति सदाशिवराव भाऊ की महत्त्वाकांक्षाएँ तथा समस्त भारत पर हिन्दू राज्य की स्थापना का स्वप्न,[2] पेशवा बाला जी बाजीराव की सनातन-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की अचल प्रतिज्ञा[3] तथा नाना फड़नवीस की अद्वितीय प्रतिभा एवं धर्म-प्रेरक राज-भक्ति[4] उपन्यास के अधिकांश कार्य-व्यापार के नियोजक तन्तु है। सेनापति की स्वच्छन्द इच्छा, जो मल्हार राव हुल्कर, सूरजमल तथा जनकोजी सेंधिया सरीखे शूर-वीर एवं कुशाग्रबुद्धि सहयोगियों की उचित सलाह को (मूर्खतापूर्ण ढंग से) तिरस्कृत करती है[5] ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित करने के साथ साथ उन्हें एक निश्चित दिशा भी प्रदान करती है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'रजिया बेगम' तथा 'तारा' उपन्यासों में पात्रों की स्वेच्छा ही ऐतिहासिक घटना-प्रवाह की मुख्य प्रेरणादायिनी शक्ति है। 'रजिया बेगम' में रजिया एक चतुर एवं नीतिज्ञ साम्राज्ञी के रूप में तो अवश्य उभर कर आई है परन्तु वह राजनयिक एवं व्यक्तिगत दोनों ही स्तरों पर नितान्त स्वेच्छाचारी स्त्री के रूप मे उभर कर आई है। वह याकूब के साथ प्रत्यक्ष मे 'हकीकी बिरादर' का सम्बन्ध रख कर भी उसके साथ अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित करके 'अपना दिल शाद' करने का उपकरण बनाना चाहती है। इसीलिए वह उसे मनसबदारी तथा'

1. विवेच्य उपन्यासकार, पुनरुत्थान एव पुनर्जागरण के युग से सम्बन्धित थे। इसलिए मध्ययुगीन हिन्दू नायक इनके लिए आदर्श-स्वरूप थे। "भारतीय साहित्य मे ऐतिहासिक उपन्यासो का प्रारम्भ देश के पुनर्जागरण के युग मे होता है। बन्किमचन्द्र व हरिनारायण आप्टे में वीरपूजा के साथ जातीय भावना विशेष है।" रघुवश 'ऐतिहासिक उपन्यास : स्वरूप एव व्याख्या' निवन्ध: "ऐतिहासिक उपन्यास, प्रकृति एव स्वरूप" डॉ॰ गोविंदजी द्वारा सम्पादित, दिसम्बर 1970 इलाहाबाद, पृष्ठ 70.
2. 'पानीपत' पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, भारत मिश्र प्रेस, कलकत्ता 1902, पेज 36-44.
3. वही, पेज 56-58.
4. वही, पेज 102–103.
5. वही, पेज 124-130 तथा 292-298.

अमीर-उल-उमरा बनाती है ।[1] सेना व अमीरों द्वारा अपदस्थ कर दी जाने के पश्चात् वह एक अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी नारी के रूप में पाठकों के सम्मुख आती है । अलतूनिया के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर, उसका अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करती है ।[2] स्वेच्छापूर्ति के लिए वह अच्छे अथवा बुरे किसी भी कार्य को कर सकती है और यही प्रवृत्ति ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को नियोजित करती है ।

महान् व्यक्तियों की इच्छाशक्ति तथा उनकी प्रेरकशक्तियों का ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने पर प्रभाव 'तारा' में वर्णित घटना-प्रवाह में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । जहानआरा हो अथवा रोशनआरा, दारा हो अथवा औरंगजेब, अमरसिंह हो अथवा सलावतखां सभी स्वेच्छापूर्वक कार्य करते हैं, और इस प्रकार इतिहास के घटना-क्रम का निर्माण करते हैं । लगभग सभी पात्र स्वतन्त्र इच्छा के सिद्धान्त द्वारा परिचालित होने पर भी 'तारा' में एक महान् व्यक्ति एवं नायक के रूप में उदयपुर के कुमार राजसिंह आदर्श नायक के रूप में उभर पाए हैं । शाहजहाँ अथवा अन्य दरबारियों के साथ खुला संघर्ष न कर के भी वे अपनी मनोकामना अर्थात् तारा का उद्धार करने में सफल होते हैं ।

रामजीवन नागर कृत 'बारहवीं सदी का वीर जगदेव परमार' नायक पूजा की प्रवृत्ति तथा इतिहास-प्रवाह के नियन्ता के रूप में एक महान् पुरुष की धारणा का सर्वोत्तम उदाहरण है । सामन्ती धारणाओं, अभिमानों एवं आकांक्षाओं से पूर्ण जगदेव परमार नितान्त विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन के उच्चतम उद्देश्य प्राप्त करता है । चौबीसवें प्रकरण में लेखक काल के प्रवाह द्वारा जगदेव की दीन एवं समृद्ध स्थितियों का चित्रण करता है ।[3]

ब्रजनन्दन सहाय कृत 'लालचीन' में गुलाम लालचीन अपनी महत्त्वाकाक्षाओं के वशीभूत होकर सम्राट गयासुद्दीन की आंखें फोड़ कर उन्हें कैद कर लेता है,[4] और स्वयं सम्राट बन बैठता है । यद्यपि लालचीन का यह कार्य स्वतन्त्रेच्छा के सिद्धान्त की पुष्टि करता है तथापि वह महान् व्यक्ति अथवा नायक के रूप में उभर कर नहीं आता ।

गंगाप्रसाद गुप्त के उपन्यास 'हम्मीर' में, उपन्यास का नायक अत्यन्त सामान्य स्थिति से एवं नितान्त विपरीत परिस्थितियों में जीवन के उच्चतम लक्ष्य एवं उद्देश्यो को स्वेच्छापूर्वक अपने वीरतापूर्ण कार्यों द्वारा प्राप्त करता है । मातृभूमि के प्रति

1. "रजिया बेगम या रंगमहल में हलाहल" किशोरीलाल गोस्वामी । 1904, पेज 111-113.
2. वही, 101-108.
3. ' एक दिन तो वह था कि जगदेव वस्त्र रहित नंगे पैरों बिना सवारी राजमहल से अपने स्थान पर आया था, पेट भरके अच्छी तरह खाना तक नही मिलता था और एक यह भी दिन है कि आज वही जगदेव सुख से दिन व्यतीत करता है ।" —जगदेव परमार, पेज 139.
4. 'लालचीन,' ब्रजनन्दन सहाय, भारत जीवन प्रेस, काशी, सं० 1978, पेज 91.

उत्कट प्रेम तथा चित्तौड़ के प्रति एक रागात्मक भावावेग के वशीभूत होकर हम्मीर अपने पूर्वजों के खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त करता है।[1] स्वतन्त्र मानवीय इच्छा तथा एक महान् व्यक्ति की धारणा का यह एक उत्तम प्रमाण है। जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के उपन्यास 'पृथ्वीराज चौहान' में तथा गंगाप्रसाद गुप्त के 'वीर पत्नी' में अंतिम महान् हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान का चित्रण भी व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा तथा एक महान् व्यक्ति एवं नायक की धारणा के अनुरूप किया गया है जबकि नायक अपनी प्रेमिका संयोगिता को प्राप्त करने के लिए भयानक युद्ध एवं नरसंहार का आश्रय लेता है।[2]

बाबू लालजीसिंह के 'वीर बाला' तथा युगलकिशोर नारायणसिंह के 'राजपूत रमणी' में मेवाड़ के राणा राजसिंह के कार्य गम्भीर मन्त्रणा तथा कूटनीतिक बुद्धिमत्ता द्वारा परिचालित होने पर भी स्वतन्त्र मानवीय इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं। केन्द्रीय शासक एवं शोषणकर्त्ता औरंगजेब के विरुद्ध कई सफल सैनिक अभियानों के कारण वह एक आदर्श राजपूत नायक के रूप में उभरे हैं।

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह के 'वीर चूड़ामणि' तथा सिद्धनाथ सिंह के 'प्रण पालन' में मेवाड़ के राणा लाखा के बेटे चूड़ा जी की शौर्यपूर्ण विजय तथा स्वेच्छा-पूर्वक अपने कनिष्ट भ्राता के लिए राजसिंहासन का उत्तराधिकार त्याग देना स्वतन्त्र मानवीय इच्छा तथा नायकत्व की धारणा का पोषण करते हैं।

मुँशीदेवी प्रसाद के 'रूठी रानी' के नायक मालदेव द्वारा बहुत से नगरों एवं राज्यों की विजय उन्हें नायक की श्रेणी में ला खड़ा करती है।

विवेच्य उपन्यासों में यद्यपि भारतीय मध्ययुगों की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का लगभग इतिहास-परक् चित्रण किया गया है तथापि घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया में एक महान् व्यक्ति एवं स्वतन्त्र मानवीय इच्छा नियोजक शक्ति के रूप में उभर कर आए हैं।

(ii) कालचक्र—मूलतः भारतीय इतिहास-चेतना से प्रभावित होने के कारण विवेच्य उपन्यासकारों ने इतिहास को सामान्यतः कार्य-कारण श्रृंखला नहीं प्रत्युत आवागमन के सिद्धान्त के रूप में व्याख्यायित किया। कालचक्र की इतिहास-धारणा के अनुसार प्रत्येक कल्प में एक ही प्रकार की घटनायें घटित होती हैं, इसलिए संसार में साम्राज्यों का उत्थान-पतन, राजवंशों का आवागमन तथा मानुषिक अस्तित्व की निरर्थकता का विवेच्य उपन्यासों में वर्णन किया गया है।

'पानीपत' में पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र ने दिल्ली पर मराठों के अधिकार का वर्णन करते समय कालचक्राश्रित इतिहास-धारणा की ओर संकेत किया है—"चक्रवर्ती भूपालगण। आप लोग गर्व न कीजिये। घड़ी में घड़ियाल हो जाता है। बड़ी–बड़ी

1. "हम्मीर" गंगाप्रसाद गुप्त, पेज 33.
2. "वीर पत्नी", गंगाप्रसाद गुप्त, उपन्यास दर्पण कार्यालय काशी, सन् 1903, पेज 21-22.

अजित सेना छोटे-छोटे संग्राम में मारी गई है। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को छोटे-छोटे सरदार और छोटे-छोटे राजाओं ने नाक चने चबवा कर हराया है। बड़े-बड़े चक्रवर्ती और शस्त्रधारियों के राज्य कालचक्र के फेर में आकर छिन्न-भिन्न हो गये है। केवल बादशाहत से ही इस विषय का सम्बन्ध नहीं है, वरन्, संसार के समस्त क्षणभंगुर प्राणियों से इसका संबंध है। जन्मा है, सो मरेगा, खिलेगा सो मुरझायेगा, फूलेगा सो झरेगा इस सिद्धान्त के सूत्रों का खण्डन आज तक किसी ने नहीं किया और न किसी में इसका खण्डन करने की बुद्धि है।[1]"

रामजीवन नागर ने "जगदेव परमार" में भी नायक की दीन स्थिति से अत्यन्त समृद्ध स्थिति तक पहुँचने का वर्णन करते समय इसी प्रकार की इतिहास-धारणा व्यक्त की है. "एक दिन तो वह था कि जगदेव वस्त्ररहित नंगे पैरों बिना सवारी राजमहल से अपने स्थान पर आया था, पेट भरके अच्छी तरह खाना तक नहीं मिलता था और तिस पर भी सदा रानी बाघेली का नाना सुनना पड़ता था और एक यह भी दिन है कि आज वही जगदेव सुख से दिन व्यतीत करता है,..........आज दास-दासियों की कमी नहीं है, हुकम में सिपाही, घोड़े, रथ, पालकी और हाथी तक सदा तैयार रहते हैं, प्रतिष्ठा भी ऐसी है कि पाटन नगर का राजा सिद्धराज उसको उठ कर अपने पास बिठलाता है..........राजा सिद्धराज तो केवल गादी पर बैठने का राजा है परन्तु राज्य का सारा प्रबन्ध करने वाला जगदेव ही है, राज्य कार्य की लगाम उसही के हाथ में है और पाटन का वास्तविक राजा जगदेव ही बना हुआ है।"[2]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम गुप्त, जयंती प्रसाद उपाध्याय तथा लालजी सिंह ने स्पष्टतः कालचक्र को ही ऐतिहासिक घटनाओं की नियोजक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है।

(iii) **नियतिचक्र**—विवेच्य उपन्यासकार ऐतिहासिक परिणामों के स्थान पर नियतिचक्र के सिद्धान्त पर आस्था रखते थे। इनके विचारानुसार नियति ही इतिहास के घटना-प्रवाह की नियोजक शक्ति है, इस प्रकार पात्रों की नियति ही ऐतिहासिक प्रारब्ध बन जाती थी।

भारतीय इतिहास धारणा के अनुसार नियति द्वारा ही समस्त घटना-क्रम निर्धारित होता है और यह बुद्धि से अगम्य है। भाग्यवाद की धारणा भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है, जो विवेच्य उपन्यासों की घटनाओं को प्रभावित करती है।

'पानीपत' में मिश्र जी ने लिखा है, "जो होनी है, वह अवश्य होकर रहती है।"[3] इसी प्रकार, 'जगदेव परमार' में रामजीवन नागर जगदेव के भाग्य के संबंध

1. 'पानीपत', पेज 291.
2. "बाहरवीं सदी का वीर जगदेव परमार" रामजीवननागर, श्री वैंकटेश्वर प्रेस बंबई. सं० 1969, पेज 139-40.
3. 'पानीपत', पेज 291.

में लिखते हैं............'स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जान सकते फिर मनुष्य की कौन कहे। जब भाग्य उदय होता है, तो रंक को राजा बना देता है, दीन को धनी कर देता है और भिखारी को अमीर बना देता है।"[1]

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के विचारानुसार घटित होने वाली प्रत्येक घटना के पार्श्व में ईश्वर एक नियोजक शक्ति है। भुवनेश्वर मिश्र को मारते समय एक डाकू का शेर द्वारा मारा जाना तथा ठीक उसी समय राजसिंह की गोली द्वारा शेर का मारा जाना इनका प्रमाण है। राजसिंह कहते हैं........"यह भी जगदीश्वर की पूर्ण महिमा है।........आज सवेरे मैं इस घाटी में आकर शिकार की ताक में हम लोग लगे थे कि जगदीश्वर की दया से आपके प्राण बच सके[2]।"

"रजिया बेगम' के 'उपोद्घात' में गोस्वामी जी ने लिखा है,"ईश्वर की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता कि जिस कुतुबुद्दीन ने लड़कपन में नैशापुर के सौदागरों की गुलामी की थी, वह बुढ़ापे में हिन्दुस्तान के तख्त पर मरा और इस देश में मुसलमानों के राज की जड़ जमाने वाला हुआ।"[3]

बाबूलाल जी सिंह ने 'वीर बाला' में मृत्यु के नियति द्वारा नियोजित होने की धारणा व्यक्त की है, "मृत्यु काल उपस्थित होने पर मनुष्य किसी प्रकार नहीं बच सकता, आयु बीत जाने पर खड़े-खड़े, चलते-चलते, बैठे-बैठे अथवा बोलते-चालते ही प्राणी काल के अधीन हो जाता है उस समय तो संसार का सब सुख छोड़ना ही पड़ता है और जिस की मौत नहीं है, वह भयानक से भयानक प्राणनाशक स्थान में बच जाता है और समर-भूमि से भी सकुशल लौट जाता है, किन्तु भरपूर समय आजाने पर मनुष्य अपने परम स्नेही बन्धु बांधवों केमध्य में भी त्राण नहीं पा सकता क्योंकि घर में जब काल आकार ग्रसता है, तो क्यों नहीं कोई बचा लेता[4] ?

भाग्य, नियति एवं ईश्वर द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं का नियोजित होना विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों की इतिहास-धारणा का एक मुख्य तत्त्व है।

(vi) कर्मचक्र—प्रेमचन्दपूर्व लिखित ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित इतिहास-धारणा के अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं को भौतिकवाद के स्थान पर कर्मसिद्धांत अथवा कर्मचक्र द्वारा संचालित स्वीकार किया जाता था। कर्मचक्र के अनुसार पूर्व-जन्मों के कर्म किसी भी समय फलोन्मुख होकर घटनाओं के प्रवाह को, कोई प्रत्यक्ष कारण न रहने पर भी, प्रभावित करते हैं।

"जगदेव परमार" में रामजीवन नागर ने इसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। राजकुमार जगदेव की बाघेली रानी के कोप के कारण जो दुर्दशा होती है, उसे

1. 'जगदेव परमार', पेज 140.
2. 'तारा', तीसरा भाग, पेज 9.
3. 'रजिया बेगम', पहला भाग, उपोद्घात।
4. 'वीर बाला' पेज 43.

वह राजा उदयादित्य की निर्बलता के स्थान पर पूर्व-जन्म के कर्मो का फल बताता है. "पिताजी। मेरी पूर्व-जन्म की तपस्या में इतनी ही कसर रह गई है नहीं तो मालवदेश के आप जैसे प्रतापी और धर्मशील राजा के घर में जन्म लेकर मुझ को पेट भर ज्वार मिलना भी क्यों कठिन होता।[1]" गौड़ देश का दीवान जब गलती से राजकन्या की सगाई जगदेव परमार के स्थान पर रणधवल से कर अत्यन्त दुखित होता है, परन्तु अंत में 'कर्म-लेख न मिटै करै कोई लाखों चतुराई'[2] इस वाक्य को सत्य मान कर चित्त शांत कर लेता है।

कर्मचक्र की इतिहास-धारणा ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी तथा मिश्रबन्धु आदि लेखकों को बहुत सीमा तक प्रभावित किया है।

(४) **हिन्दू दृष्टिकोण**—बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दो दशकों में भारतीय राजनीति के क्षितिज पर इंडियन नेशनल कांग्रेस एक तेजमय पुंज के रूप में उभर चुकी थी। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण का शंख फूंका जा रहा था।[3] धर्म, जो कि भारतीय समाज एवं संस्कृति को प्राचीन एवं मध्ययुगों में अस्तित्ववान् एवं अक्षुण्ण रखने वाली प्रेरक शक्ति थी, एक बार फिर पुनरुत्थानवादी आंदोलनों का मेरुदण्ड बन गयी। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी आदि ने विभिन्न स्तरों एवं दृष्टिकोणों से हिन्दू धर्म की पुनः व्याख्या की, तथा धार्मिक जागरण का शंख फूँका।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में भी, समस्त तद्युगीन साहित्य के समान हिन्दू दृष्टिकोण एक केन्द्रीय प्रेरक कलाविचार के रूप में उभरा। पं० किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेव प्रसाद मिश्र, रामजीवन नागर, ठाकुर बलभद्रसिंह, अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह तथा बाबूलालजी सिंह आदि उपन्यासकार सनातन-हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक थे। उनके अपने युग के विचार तथा उपन्यास में वर्णित युग के मूल-विचार के रूप में सनातन-हिन्दू-धर्म के विश्वास एवं परम्पराएँ[4] अभिव्यक्त की गई हैं।

उपन्यासकारों की सनातन हिन्दू-धर्म के प्रति इस गहरी प्रतिबद्धता ने उनकी इतिहास-धारणाओं एवं काल-मान्यताओं को महत्वपूर्ण सीमा तक प्रभावित किया है।

अतीत की भूमि पर विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक उद्धार अथवा सामाजिक पुनरुत्थान की जो भी धारणायें प्रकट की हैं, वे

1. 'जगदेव परमार', पेज 5.
2. वही. पेज 25.
3. इस विषय पर तीसरे अध्याय के आरम्भ में 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' शीर्षक के अन्तर्गत विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है।
4. सनातन हिन्दू धर्म के विश्वासों एव परंपराओं का विस्तृत अध्ययन इसी अध्याय के 'उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टियां' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा।

हिन्दू दृष्टिकोण से संचालित थीं। हिन्दू धर्म के प्रति इस निष्ठा एवं आस्था ने विवेच्य युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा उपन्यासों के लिए भारतीय अतीत के विशिष्ट युगों का चयन करने के लिए प्रेरक-शक्ति का कार्य किया। इसी के परिणाम-स्वरूप उन्होंने अतीत के उन कालखण्डो को अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया जबकि या तो हिन्दू-विचार प्रबल वेग से समस्त भारत पर छा जाने के लिए प्रगतिशील था अथवा वे विदेशी एवं मुस्लिम प्रहार एव अत्याचार के घोर तिमिर मे बिजली के समान कौंध कर अपने अस्तित्व का प्रमाण उपलब्ध करता था। बलदेव प्रसाद मिश्र का 'पानीपत' जयरामदास गुप्त का 'काश्मीर पतन' हिन्दू एव सिख धर्म के स्वर्णयुगों को चित्रित करते है जबकि किशोरीलाल गोस्वामी का 'तारा', मिश्र-बंधुओं का 'वीरमणि', गंगाप्रसाद गुप्त का 'हम्मीर,' हरिचरण सिह चौहान का 'वीर नारायण', रामजीवन नागर का 'जगदेव परमार', बाबू लालजीसिंह का 'वीरबाला', अखौरी कृष्ण प्रकाश सिह का 'वीर चूडामणि', हरिदास माणिक एव कालिदास माणिक के 'महाराणा प्रताप सिह की वीरता' तथा 'मेवाड का उद्धारकर्ता','चन्द्रशेखर पाठक का 'भीम सिंह',बसन्त लाल शर्मा का'महारानी पद्मिनी', गिरिजानन्दन तिवारी का 'पद्मिनी', रामनरेश त्रिपाठी का 'वीरांगना' आदि उपन्यासों के कथ्य में भारतीय इतिहास के मुस्लिम युगो का निरूपण किया गया है, जबकि हिन्दू धर्म अपने अस्तित्व के लिए सघर्षरत् था।

मध्ययुगों के इन विशिष्ट कालखण्डों का चुनाव करना उपन्यासकारों की हिन्दू पुनरुत्थानवादी जीवन-दृष्टि का प्रमाण है।

विवेच्य उपन्यासों की पुनरुत्थानवादी धारणाये हिन्दू दृष्टिकोण द्वारा सचालित एवं नियोजित की गई थी।

(vi) धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थ : चरित्र के नियामक—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र एवं उनका चरित्र-चित्रण कथानक के कालखण्डों की विशिष्ट एव सुनिश्चित ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के द्वारा नियोजित होने के स्थान पर धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थों के कथनसूत्रों द्वारा संचालित एव प्रमाणित होते थे। सामान्यत: लेखको की सनातनधर्म परक हिन्दू जीवन दृष्टि इस प्रकार की इतिहास-धारणा के लिए उत्तरदायी है।

इसके साथ ही अन्यान्य स्थलों पर कथानक के कालखण्ड की सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पात्रों, उनके चरित्र एवं आचार-व्यवहार को संचालित करती है। मार्क्स ने कहा था कि जितना परिस्थितियां मनुष्य का निर्माण करती है, उतना ही मनुष्य भी परिस्थियों का निर्माण करता है।[1] विवेच्य उपन्यासो मे ऐतिहासिकता का यह स्वरूप कई बार उभर कर आया है।

1. Marx, "Materialistic conception of History". Quoted from "Thories of History" P. 126.

पं० राम जीवन नागर के 'जगदेव परमार' में जब गौड़ देश के दीवान राजकन्या की सगाई जगदेव के स्थान पर रणधवल के साथ कर देते हैं और बाद में अपनी गलती अनुभव करते है, तो कहते हैं कि........"क्या करूँ सगाई करके फिर उसे हटाना शास्त्र-विहित नहीं है। और ऐसा करने से हमारे महाराज गम्भीरसिंह के प्रतिष्ठित कुल को दाग लगने का भय है नहीं तो अवश्य राजपुत्री का संबंध रणधवल से छुड़ाकर जगदेव से कर देता।[1]"

सामान्यत: शास्त्रीय उक्तियों का स्थान-स्थान पर प्रमाण के रूप में दिया जाना भी इसी इतिहास-विचार का एक अंग है। पं० बलदेव प्रसाद मिश्र तथा किशोरी लाल गोस्वामी ने भी इस प्रकार की शास्त्रीय उक्तियों का बहुलता से प्रयोग किया है।

(vii) स्वयंवर एवं दिग्विजय—मध्ययुगों में, पौराणिक ग्रन्थों की अनुकृति के रूप में स्वयंवर एवं दिग्विजयों का आयोजन किया जाता था। इतिहास-चेतना तथा ऐतिहासिक स्थिति के अध्ययन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह इतिहास-विचार राजसी कीर्ति तथा राज्यश्री के राजसी आदर्शों के साथ संबद्ध है। यद्यपि मध्ययुग में हिन्दू सम्राटों मे पौराणिक महानता की स्थिति नितान्त भिन्न थी, तथापि उनके मानसिक एवं बौद्धिक जीवन मे यह पौराणिक आदर्श अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के पृथ्वीराज चौहान में स्वयंवर एवं दिग्विजय की झलकियाँ इस विशिष्ट इतिहास-धारणा का प्रमाण हैं।

बाबू गंगा प्रसाद गुप्त के "वीर पत्नी" तथा जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान' उपन्यास मे संयोगिता के स्वयंवर का उत्तम चित्रण किया गया है। 'वीर पत्नी' में गुप्त जी ने स्वयंवर का वर्णन इस प्रकार किया है, "स्वयंवर यज्ञ की सब रीति भली-भाँति पूरी हो चुकने के उपरान्त राजकुमारी उठी, और अपना हार लिए हुए हर एक राजा के सामने से होती हुई द्वार के समीप पहुँची, कोमल हृदय धड़कने लगा, प्यारे-प्यारे हाथ काँपने लगे और उसने इसी दशा में अपनी वरमाल पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में डाल दिया।"[2]

इसी प्रकार 'वीर पत्नी' के पाँचवे अध्याय में दिग्विजय का वर्णन किया गया है।[3]

(viii) हिन्दू इतिहास के स्वर्ण-युग को आदर्श-काल के एवं पौराणिक युगों के प्रतिबिंब के रूप में—विवेच्य उपन्यास हिन्दू इतिहास के स्वर्ण-काल को आदर्श-काल के रूप मे मानते थे तथा उसे पौराणिक युगों के प्रतिबिंब के रूप मे स्वीकार करते थे। पौराणिक आदर्शो पर आधारित यह इतिहास चेतना, भारतीय इतिहास

1. 'जगदेव परमार,' पेज 27.
2. "वीर पत्नी", गगाप्रसाद गुप्त, उपन्यास दर्पण कार्यालय, 1903 ई०, पृष्ठ 18.
3. वही, पृष्ठ 15-17.

धारणा के निरन्तर विकास के रूप में विवेच्य उपन्यासकारों द्वारा ग्रहण की गई। स्वर्णिम-हिन्दू-युग के विक्रमादित्य को आदर्श राजा के रूप में स्वीकार करने तथा उससे उच्च एवं उदात्त राज्य प्रबन्ध की प्रेरणा प्राप्त करने की परम्परा का विवेच्य उपन्यासों में भी प्रयोग किया गया है।

बलदेवप्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में सनातन धर्म-परक हिन्दू राष्ट्रीयता एवं आदर्श-हिन्दू राज्य की समस्त भारतवर्ष पर स्थापना का इतिहास-विचार इसी इतिहास-धारणा का परिणाम था। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, रामजीवन नागर, लालजी सिंह, युगलकिशोर नारायणसिंह, सिद्धनाथ सिंह तथा व्रजबिहारी सिंह आदि ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में भारतीय अतीत के स्वर्ण युग को भारतीय मध्य-युगों में प्रतिबिंबित किया है। मध्ययुगीन हिन्दू राजाओं की स्थिति का प्राचीन हिन्दू सम्राटों के अनुरूप न होने के कारण कई स्थानों पर यह आदर्श अवास्तविक अथवा आरोपित अनुभव होते है। परन्तु एक प्रबल प्रेरणा-स्रोत के रूप में वे निश्चय ही भारतीय मध्य-युगों में घटित होने वाली घटनाओं को प्रभावित करते हैं।

(ix) **सामान्य इतिहास-धारणाएँ**—सामान्यतः विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों मे मध्य युगीन एव समकालीन सामाजिक कुरीतियों के मूल में ऐतिहासिक काल एवं परिस्थितियों को न मानकर या तो मुसलमान शासकों को मानते थे[1] अथवा कलयुग के पापों को। विदेशी आक्रमणकारियों को ऐतिहासिक दुर्भाग्य के रूप में लिया गया तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था के टूटने को सामाजिक विघटन का मूल प्रेरक-स्रोत स्वीकार किया गया।

व्रजनन्दन सहाय के अपवाद के अतिरिक्त लगभग सभी अन्य उपन्यासकार इसी प्रकार की इतिहास-धारणाओं द्वारा प्रभावित हुए हैं।

(ख) **इतिहास की पुनर्व्याख्याएँ**—सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार विवेच्य युग के मूल इतिहास-दर्शन के अनुसार इतिहास को नितान्त भिन्न दृष्टि से देखा गया। सामान्यतः विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार अंग्रेजी राजभक्ति तथा सनातन-धर्म के विचारों एवं विश्वासों के प्रति प्रतिबद्ध थे। इसी दृष्टिकोण से उपन्यासों में इतिहास को पुनः व्याख्या की गई है।

(i) **मुसलमानों को प्रत्येक बुराई के मूल में देखना**—साम्प्रदायिक मतभेदों की समकालीन पृष्ठभूमि में विवेच्य उपन्यासकारों ने मुस्लिम इतिहासकारों के प्रति

1. प्राचीन भारतीय इतिहास तथा सांप्रदायिक दृष्टिकोण का अध्ययन करते हुए रोमिला थापर ने लिखा था:—
"An examination of the ideology of modern communalism shows quite clearly that it seeks its intellectual justification from the historical past. Thus, Hindu communalists try and project an ideal Hindu society in the ancient period and attribute the ills of India to the coming of "the Muslims"—"Communalism and the writing of Ancient Indian History" by Romila Thapar, Page-1

अविश्वास तथा मध्य-युगों के मुसलमान शासकों के प्रति घृणा स्पष्ट रूप से व्यक्त की। उनके विचारानुसार राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दुओं की अवनति एवं दुर्भाग्य के लिए मुसलमान शासक ही उत्तरदायी है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलमान शासकों को सामान्यतः ऐतिहासिक आततायियों के रूप में चित्रित किया गया है।[1] तथा ऐतिहासिक रोमांसों में उन्हें दानवत्व की प्रतिमूर्ति के रूप मे चित्रित किया गया है।

उदाहरणतः किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास 'तारा' मे वख्शी सलावत खाँ को ऐतिहासिक आततायी के रूप में चित्रित किया गया है। सलावत खां अमरसिंह की पुत्री तारा को हस्तगत करने के लिए अत्यन्त घृणित एवं ओछे षड्यत्रों का आश्रय लेता है। 'वह अपने किसी बडे भारी मतलब के निकालने की फ्रिक में अन्धा हो रहा था। वह प्रकट में तो शाही दरबार में बराबर अमरसिंह की भलाई करता, पर गुप्त रीति से उसने ऐसा षड्यन्त्र रचा था कि जिसमें फँस कर बिचारे अमरसिंह को बहुत जल्द इस संसार से कूच करना पडा।'[2]

अमरसिंह द्वारा तारा की शादी उदयपुर के कुमार राजसिंह के साथ तय कर दिए जाने के कारण जब वह सलावत खाँ को मना कर देता है[3] तो सलावत शाहजहाँ से झूठमूठ शिकायत कर अमरसिंह को कैद करने की आज्ञा प्राप्त कर लेता है। अमरसिंह द्वारा अपने घर से निकाल दिए जाने के बाद सलावत ने एक खत अमरसिंह को भेजा उस खत का मतलब इतना ही था कि, "बदबख्त। काफिर। होशियार। आज रात को तेरा घर-द्वार लूट कर तेरी दुख्तर को मेहतर से खराब कराऊँगा।"[4]

इस प्रकार यद्यपि तारा निष्कंटक रूप से राजसिंह के साथ उदयपुर चली जाती है तथापि अमरसिंह सलावत के कुचक्रों का शिकार बन कर बहुत से दरबारियों को मारने के पश्चात् वीर गति को प्राप्त होता है।[5]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी की ऐतिहासिक कथा "हीरा बाई वा बेहयाई का बोरका" में अलाउद्दीन को ऐतिहासिक आततायी के रूप मे चित्रित किया गया है।

"दिल्ली का बडा जालिम बादशाह अलाउद्दीन खिलजी, जोकि अपने बूढे और नेक चचा जलालुद्दीन खिलजी को धोखा दे और उसे अपनी आँखों के सामने मरवा कर (सन् 1295 ई०) आप दिल्ली का बादशाह बन बैठा था, बहुत ही सगदिल, खुदगर्ज, ऐय्याश, नफस परस्त और जालिम था। उसने तख्त पर बैठते ही जलालुद्दीन

1. देखिए—इतिहासवाद और ऐतिहासिक उपन्यास की सामाजिक उपयोगिता--डॉ० मेघ, पृष्ठ 343.
2. 'तारा' पहला भाग, पृष्ठ 46.
3. 'तारा', पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, पहला भाग, पृष्ठ 91-92.
4. 'तारा' पडित किशोरीलाल गोस्वामी, पहला भाग, पेज 68-69.
5. वही., तीसरा भाग, पेज 77-78.

के दो नौजवान लड़कों को कतल कर डाला.......जब फौज से लूट का माल उसने माँगा तो फौज ने बलवा किया, जिससे जल कर मलकुल मौत अलाउद्दीन ने सभी को मय उनके लड़के और औरतों को कटवा डाला।[1]" (सन् 1297 ई०)

इसी प्रकार चन्द्रशेखर पाठक ने 'भीमसिंह' में अलाउद्दीन को ऐतिहासिक आततायी के रूप में प्रस्तुत किया है। जलालुद्दीन की हत्या और दिल्ली में भयानक रक्तपात[2] के पश्चात् जलालुद्दीन के प्रधान आमात्य कासिम अली की पुत्री नसीबन जो अत्यन्त रूपवती थी, को अपने प्रेम-चंगुल में फँसाने का कारण यह बताता है कि "तुम्हारे प्रेम में मुग्ध होकर, मैं ने तुमसे विवाह नहीं किया था। यह विवाह केवल तुम्हारे पिता का गर्व खर्व करने के लिए किया था।"[3]

अलाउद्दीन द्वारा मेवाड़ के राणा भीमसिंह की पत्नी पद्मिनी के लिए उसका चित्तौड़ पर कई बार आक्रमण करना और सहस्रों वीरों का बलिदान, चित्तौड़ की सारी स्त्रियों द्वारा जौहर व्रत का पालन आदि सब विषयों का चित्रण अलाऊद्दीन को आततायी के रूप में चित्रित करने की इतिहास-धारणा का ही परिणाम है। "भीम सिंह" के अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी के "वीरागना", गिरिजा नन्दन तिवारी के "पद्मिनी", रूप नारायण के "सोने की राख" में यही इतिहास-धारणा उपलब्ध होती है।

ब्रजनन्दन सहाय के "लाल चीन" में दक्षिण भारत के सम्राट गयासुद्दीन का गुलाम लाल चीन अपने स्वामी की आँखें फोड कर[4] तथा राजधानी के मुख्य दरबारियों को मार कर स्वयं राज्य-सत्ता अपने हाथ में ले लेता है। लाल चीन का अपने सम्राट, अन्य दरबारियों तथा सामान्य प्रजा के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार उसे एक ऐतिहासिक आततायी के रूप में उभारता है।

बाबूलालजी सिंह के "वीर बाला" तथा युगलकिशोर नारायण सिंह के "राजपूत रमणी" उपन्यासों में औरंगजेब को हिन्दू जनता के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों को दबाने के लिए किए गए अमानवीय कार्यों के लिए एक ऐतिहासिक आततायी के रूप मे चित्रित किया गया है।

"राजपूत रमणी" के दूसरे परिच्छेद में दस वर्षीय बालक हकीकत राय को धार्मिक कारणों से मृत्यु-दण्ड दिए जाने का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। "मन्दिरों में घडियाल बजना बन्द हो गया। ब्राह्मण अपना त्यौहार खुल्लम-खुल्ला न मनाने पर मजबूर किए गए। सैकड़ों नहीं वरन् लाखों देव-मंदिर तहस-नहस कर दिए गए और उनकी जगह में मसजिदे बन कर तैयार हो गई। शंख-भेरी शब्दों की

1. 'हीराबाई या बेहयाई का बोरका' पं० किशोरीलाल गोस्वामी पेज 1.
2. 'भीमसिंह', पेज 3-4.
3. वही०, पेज 32.
4. 'लालचीन,' ब्रजनन्दन सहाय, पेज 91.

जगह अजान की आवाज भारत में गूँज उठी। जबरदस्ती लाखों हिन्दू मुसलमान बनाए गए। तलवार के जोर से करोड़ों हिन्दुओं को दीने इस्लाम मंजूर करना पड़ा। सैकडों आर्य ललनाएँ अपने पतियों से छिन कर मुसलमानों के हरम में दाखिल की गईं। जिन्होंने अपने धर्म को धर्म मान कर छोड़ने से आनाकानी की वे खुले मैदान कत्ल कर दिए गए।[1]

इसी प्रकार इसी कथा-भूमि पर रूपनगर की राजकुमारी सोचती है—"अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, अब अपनी विपत्ति किसे सुनाऊँ, पन्द्रह दिन में जब बादशाह यहाँ आ खड़ा होगा तब मैं क्या कर सकूँगी। उस समय मैं अपनी दीनता प्रकाश कर ऐसा करने से निषेध भी करूँगी तो क्या हो सकेगा, वह पापी चण्डाल राक्षस औरंगजेब कब सुनने वाला है। किसी तरह न मानेगा बलात् मुझे ले जावेगा, तब मैं क्या करूँगी, कैसे प्राण को रख सकूँगी ?"[2]

जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर पतन' में जुब्बार खाँ व अजीब खाँ को ऐतिहासिक आततताइयों के रूप में उभारा गया है। वे पण्डितों के शोषण एवं दमन के लिए सेनापति चंगेज खाँ को कहते है तो वह उत्तर देता है,"—बेशक, बेशक, हजूर वाला। मै आपकी फरमाबरदारी के लिए दिलो जान से कोशिश करूँगा और शैतान सिक्तपण्डितों को जरूर बा जरूर नेस्तनाबूद करने की फिक्र में रहूँगा....हमारे देखने में अब खूब सख्ती से काम लेना चाहिए जिसमें रिआया के दिल में दहशत पैदा हो तब वह डरेगी और इंतजाम भी ठीक हो जाएगा।"[3]

जहाँ मुसलमानों को ऐतिहासिक आततायो के रूप में वर्णित किया गया है, वहीं, उन्हें अन्यान्य सामाजिक कुरीतियों के मूल कारण के रूप में देखा गया है। बाल-विवाह एवं पर्दा-प्रथा के लिए मुसलमान-शासकों एवं हाकिमों की यौन-लोलुपता ही उत्तरदायी ठहराई गई है।

'तारा' में पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने पर्दा-प्रथा के लिए मुसलमानों को ही दोषी ठहराया है। उनके अनुसार,—'हाँ भारतवर्ष मे जो पर्दे की चाल इतनी बढ़ी, इसका मुख्य कारण मुसलमानों का सुन्दर स्त्रियों पर जुल्म करना ही हुआ।'[4]

स्पष्ट है कि विवेच्य उपन्यासकार भारतीय अतीत की पुनर्व्याख्या करते समय अपने मौलिक सांप्रदायिक विचारों को ही मुख्य स्थान प्रदान करते हैं। इतिहास के पुन: प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में मुसलमान विरोधी इतिहास-धारणा सामान्यत: सारे कार्य-व्यापार के स्वरूप का निर्धारण करती है।

1. "राजपूत रमणी", पेज 13-14.
2. "वीरबाला", बाबूलालजी सिंह, पेज 2.
3. "काश्मीर पतन", जयरामदास गुप्त, पेज 71-72.
4. "तारा", पहला भाग, पेज 47.

(ii) सामाजिक पतन : कलयुग, दुर्भाग्य अथवा वर्णाश्रम का भंग होना—सनातन-हिन्दू विचारधारा द्वारा प्रेरणा-प्राप्त करने के कारण विवेच्य उपन्यासकार कलयुग एवं दुर्भाग्य को सामाजिक पतन का कारण मानते थे। वर्णाश्रम व्यवस्था के भंग होने को भी उन्होंने सामाजिक गठन पर एक कुठाराघात के रूप में अनुभव किया।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के मतानुसार, 'जब तक इस देश में सरस्वती और लक्ष्मी का पूरा-पूरा आदर रहा, ब्राह्मणों के हाथ में विधि थी, क्षत्रियों के हाथ मे खड्ग था, वैश्यों के हाथ में वाणिज्य था और शूद्रों के हाथ में सेवा–धर्म था, किन्तु जब से यह क्रम बिगड़ने लगा ऐक्य के स्थान में फूट ने अपना पैर जमाया और सभी अपने-अपने कर्त्तव्य से च्युत होने लगे, देश की स्वतन्त्रता भी ढीली पड़ने लगी और बाहर वालों को ऐसे अवसर में अपना मतलब गढ लेना सहज हो गया।'[1]

कलयुग एवं दुर्भाग्य के इतिहास परिणामों पर प्रभाव का अध्ययन कालचक्र एवं नियति चक्र शीर्षकों के अध्ययन के अन्तर्गत किया जा चुका है। सामाजिक पतन के प्रेरक कारणों में ये दोनों ही महत्त्वपूर्ण रूप में ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिव्यक्त किए गए हैं।

(II) ऐतिहासिक उपन्यासों में चरित्र तथा इतिहास चेतना

उपन्यासकार के समकालीन पात्रों का उपन्यास में चित्रण करना अपेक्षाकृत सरल एवं सुगम होता है, क्योंकि वह नित्य प्रति उस प्रकार के व्यक्तियों को देखता है तथा उनके सम्पर्क में आता है। मानवीय अतीत के प्राचीन एवं मध्ययुगों के मनुष्यों का चित्रण अतीत के पुनःनिर्माण, पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्व्याख्या के एक अभिन्न अंग के रूप में किया जाता है। बहुत से आलोचकों तथा ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अतीत के पात्रो के पुनः प्रस्तुतिकरण की इस प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बताया है।[2] अतीत युगों के पात्रों के चरित्र, आचार-व्यवहार, आकांक्षाएँ, इच्छाएँ, मनोकामनाएँ, उनकी घृणा एव प्रेम, द्वेष एवं उदात्तता, शौर्य एवं वीरता आदि का अध्ययन उनके युग की विशिष्ट राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए।[3] पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन एवं चित्रण अध्ययन वाले युग की विशिष्ट इतिहास-चेतना द्वारा अनुप्राणित होना चाहिए।

1. "रजिया बेगम वा रंगमहल मे हलाहल," किशोरीलाल गोस्वामी, उपोदघात्, पेज 'क'।।
2. देखिए—डॉ० गोविन्द जी द्वारा संपादित 'ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एव स्वरूप।"
3. सामान्यतः प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों एव ऐतिहासिक रोमांसों में चरित्र चित्रण के सर्वथा अभाव की बात कही जाती रही है परन्तु इसे एक दम ठीक मानना उचित नही होगा। ब्रज-नन्दन सहाय के 'लालचीन' की भूमिका में अवध विहारी शरण ने हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के दो उद्देश्यों (मनोरंजन करना और दूसरे का उच्च भाव अथवा आदर्श प्रदर्शित करना) की ओर संकेत करते हुए चरित्र चित्रण की महत्ता का उल्लेख किया है,–'जिस प्रकार उच्च आदर्श निदर्शित करके व्यक्ति तथा समाज के भाव एव आदर्श को उच्च बनाना उपयोगी है, उसी प्रकार इस ससार-संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिए सांसारिक मनुष्यो के चरित्र

जार्ज ल्यूकॉक्स के मतानुसार सर वाल्टर स्कॉट से पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों की यही मूल त्रुटियाँ थीं। "सत्रहवीं शताब्दी के तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यास (Scudery, Calprannede) आदि केवल थीम एवं वाह्यावरण (Costume) में ही ऐतिहासिक हैं। न केवल पात्रों का मनोविज्ञान प्रत्युत उनका आचार-व्यवहार भी पूर्ण रूपेण लेखक के युग का ही है तथा इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध "ऐतिहासिक उपन्यास", वाल्पोल के 'कैसल ऑव आटरैंटों' में इतिहास को महज एक परम्परा के रूप में निबाहा गया है : केवल 'मिलियू' (Miliue) की जिज्ञासाओं तथा विरूपताओं (Oddities) को ही महत्त्व दिया गया न कि एक सुगठित ऐतिहासिक कालखण्ड के सत्यपूर्ण प्रतिबिंब (इमेज) को। स्कॉट-पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यास में जो कमी रह गई थी, वह संक्षेप में व निश्चित रूप से ऐतिहासिक है अर्थात् पात्रों की वैयक्तिकता की उनके युग की ऐतिहासिक विशिष्टता में से उत्पत्ति न होना।"[1]

अतीत युग की इतिहास चेतना के परिप्रेक्ष्य में औपन्यासिक पात्रों के चरित्र का चित्रण न करने के लिए अधिकांश आलोचकों ने विवेच्य उपन्यासकारों को दोषी ठहराया है। यह दोषारोपण केवल आंशिक रूप में ही सत्य है।

एक विशिष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड के व्यक्ति एव पात्र जहाँ एक ओर काल-खण्ड की ऐतिहासिक परिस्थितियों मे अपने चरित्र की विशेषताएँ प्राप्त करते हैं दूसरी ओर वे युग की ऐतिहासिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय सामान्यतः उपन्यासकार इतिहास-चेतना तथा अपनी इतिहास-धारणा की मान्यताओं को पात्रों के माध्यम से उपन्यास में अभिव्यक्त करता है।

ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प एवं रचना-प्रक्रिया में पात्रो का उनके अतीत एवं भविष्य से सम्बन्ध प्रदर्शित कर, उपन्यासकार काल के निरंतर प्रवाह में इतिहास की तद्‌युगीन चेतना के अनुरूप उनके चरित्र के विविध पक्षों का उद्‌घाटन करता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार की अथवा उसके युग की समस्याओं को भी कई वार अतीत के पात्रों के माध्यम से उभारा गया है।

(i) हिन्दू राष्ट्रीयता एवं नैतिकता की धारणा द्वारा परिचालित—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में इस प्रकार की इतिहास चेतना एवं चरित्र चित्रण हिन्दू धर्म

का ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है। और जैसे मनोरंजन तथा उच्च भाव का प्रदर्शन उपन्यास लेखक का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार संसार के व्यक्तियों का चरित्र चित्रण तथा देश-काल के अनुसार उसमें हेरफेर दिखलाना भी उसका परम धर्म है। किस अवस्था में पड़कर कौन मनुष्य कैसा होगा, किस व्यक्ति से कितनी आशा करनी चाहिए इसका ज्ञान केवल अनुभवी लेखक अपने पाठकों को दिला सकते है। ··इस प्रकार के उपन्यासों में कल्पना कम और वास्तविकता अधिक होती है। अस्तु इस उपन्यास में चरित्र का चित्रण ही प्रधान रखा गया है : 'लालचीन, 'व्रजनन्दन सहाय,' —भूमिका, पृष्ठ 1-2.

1. *"The Historical Novel"*. George Lukacs, Merlin Press London, p. 19.

के पुन जागरण एव पुन उत्थान के महत् आन्दोलन के प्रभावाधीन किया गया है। इसीलिए यह बहुत सीमा तक साम्प्रदायिक हो गया है और मध्ययुगीन मुसलमान शासको के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिक्रिया के रूप मे उभरा है। हिन्दू राष्ट्रीयता की इतिहास धारणा द्वारा परिचालित होने के कारण पात्रो, विशेषत: राजपूत एव मराठा नायको मे, गहन जातीय दर्प तथा अपार शौर्य की भावना, भावावेगात्मकता के स्तर तक पहुँच जाती है।

मध्य युगो के पात्रो एव चरित्रो का चित्रण सामती नैतिकता की कसौटी के आधार पर किया गया है। 'रजिया बेगम' तथा 'लालचीन' के अपवाद को छोड कर पात्रो मे विद्रोह तथा क्रान्ति की चेतना का अभाव है।

मध्ययुगो मे कुलशील तथा जातीय चेतना चरित्र चित्रण की सामाजिक कसौटी थी। इस धारणा के दोनों ध्रुवो, कुल भूषण तथा कुल कलक का विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो मे चरित्र-चित्रण के लिए उपयोग किया गया है।

रामजीवन नागर के "जगदेव परमार" मे जगदेव को बार-बार कुलभूषण तथा "कुलदीपक"[1] कहा गया है।

ठाकुर बलभद्रसिह के 'वीरबाला व जयश्री' मे हरिहरसिंह को कुल कलक के रूप मे चित्रित किया गया है जबकि वह यवनो से मिल कर महाराज शिवसिंह से दगा करता है।[2]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' के तीसरे भाग मे उदयपुर के युवराज राजसिह को सिसोदिया कुलदीपक कहा गया है।[3] उदयपुर के महाराज बनने के पश्चात् युगलकिशोर नारायणसिह के राजपूत रमणी मे राजसिंह को हिन्दूपति सूर्य कुल भूषण कहा गया है।[4]

राजसिंह को बाबूलाल जी सिह के 'वीरबाला' मे इसी रूप मे चित्रित किया गया है।

बाबू सिद्धनाथ सिह के "प्रण-पालन" नामक उपन्यास मे वीरचूडामणि को क्षत्रिय कुल कमल-दिवाकर[5] कहा गया है। "वीर चूडामणि" मे चूडा जी को दृढ-प्रतिज्ञ तथा कीर्तिमान नायक के रूप मे उभारा गया है।

यद्यपि स्पष्ट रूप से इन शब्दो का प्रयोग नही किया गया तथापि गंगाप्रसाद गुप्त के 'हमीर' मे हमीर, जयरामदास गुप्त के "काश्मीर पतन" मे महाराजा रजीतसिंह 'वीर पत्नी' तथा "पृथ्वीराज चौहान" मे पृथ्वीराज चौहान को कुल भूषण के रूप मे उभारा गया है।

1. "जगदेव परमार", पेज 61-62.
2. "वीरबाला व जयश्री", पेज 25-32.
3. "तारा" तीसरा भाग, पेज 5-6.
4. "राजपूत रमणी", पेज 34
5. "वीर चूडामणि", पेज 9.

धर्म एवं जाति का मध्य युगों में अत्यधिक महत्त्व होने के कारण इस प्रकार का चरित्र-चित्रण इतिहास चेतना के अनुरूप एवं कलात्मक बन पड़ा है।

(आ) **जातीय-दर्प की सामन्ती धारणा**—पुराणों में वर्णित सूर्यवंश, चंद्रवंश, अग्निवंश आदि की धारणा के प्रति विवेच्य उपन्यासकार श्रद्धा एव सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण के प्रतिपादक थे। पुराणों में वर्णित इन वंशों एवं जातियों पर आधारित जातीय-दर्प पात्रों के चरित्रचित्रण का आधार है। जातीय-दर्प न केवल पात्रों की क्रियाओं एवं ऐतिहासिक घटनाओं को गहराई से प्रभावित करता है। प्रत्युत उन्हें नियोजित भी करता है।

'पानीपत' में पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने जातीय-मतभेदों एवं जातीय-दर्प तथा उसके दुष्परिणामों का हृदयस्पर्शी एवं वीर रस पूर्ण वर्णन किया है। उदाहरणतः उत्तर भारत में जब दत्ता जी के पास केवल तीस हजार सेना थी जो अब्दाली की एक लाख चालीस हजार सेना का सामना करने के योग्य नहीं थी परन्तु, इस बार दत्ता जी सेंधिया ने भयंकर युद्ध करके क्षत्रियों की शूरता का नाम पृथ्वी पर अमर करना चाहा। देहली के वजीर ग्यासुद्दीन ने आकर पूछा—'मुझ को इस वक्त कहाँ रहना मुनासिब है ?' दत्ता जी सेंधिया ने उत्तर दिया—'नामर्द दुर्रानी मराठों की रणकौशल के आगे क्या कर सकता है, आप बेखटके किले के भीतर जमें रहें मैं मराठी युद्धरीति के द्वारा भले प्रकार उसको छकाऊंगा। इसी अवसर में मलहार राव हुल्कर जी की सहायता आ पहुँचेगी। महाराज हुल्कर जी के आने से पहले प्राणपण से संग्राम कर, इस खड्ग का स्वाद अहमदशाह अब्दाली को चखा कर प्राण लूंगा या विसर्जन करूंगा।"[1]

मुख्य सेनापति सदाशिव राव भाऊ तख्त खण्डन तथा ग्यासुद्दीन को वजीर बनाने के प्रश्न पर भरतपुर के जाट महाराजा सूरजमल से शत्रुता करता है तथा उन्हें लूटने की योजना बनाता है। जब वे सेंधिया व हुलकर की सम्मति से रात में ही प्रस्थान करते है, तो भाऊ गर्व से कहते है—'दुर्रानी का समाचार लेकर यदि जाट का संहार न कर डालूंगा तो मेरा नाम भाऊ नही।'[2]

इसी प्रकार जब अहमदशाह अब्दाली व मराठों की सेनाएँ पानीपत के मैदान में एक दूसरे के सम्मुख पड़ी हुई थीं तो ब्राह्मण बलवन्तराव मेंढले तथा क्षत्रिय मल्हार राव हुल्कर एवं जनकोजी सेंधिया में जातीय मतभेद पर झड़पे हुई। मेंढले के कटुवचनों पर उत्तेजित हो, हुल्कर ने स्थिर दृष्टि रख कर कहा,—'कारण का

1. "पानीपत", पेज 173.
2. "पानीपत", पेज 312

संशोधन करना और पराक्रम को बैठे रह कर देखना यह काम ब्राह्मणों का है, क्षत्रियों का वीरत्व समय पर ही प्रगट होता है ।'[1] मेंढले द्वारा उत्तेजित किए जाने पर जनको जी भाऊ की इच्छा के विरुद्ध अगले ही दिन विजय अथवा मृत्यु की कठिन प्रतिज्ञा करते है ।

इस प्रकार जातीय दर्प क्षत्रियों, ब्राह्मणों तथा जाटों के चरित्र के मुख्य नियोजक के रूप में उभर कर आता है ।

राजपूताना के इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यासों में जातीय दर्प का स्वरूप कुछ परिवर्तित हो जाता है । यहाँ यह दो प्रकार से उभरता है—मुसलमानों के विरुद्ध तथा आपसी मतभेद । जातीय गौरव की धारणा के पीछे एक महान् जातीय अतीत की पृष्ठभूमि प्रेरणास्रोत के रूप में क्रियाशील होती है । कई बार राजपूतों के आपसी जातीय मतभेद विनाश का कारण बनते है ।

मेवाड़ के सीसोदिया कुल के प्रति अद्वितीय श्रद्धा एवं सम्मान की भावना मध्ययुगीन हिन्दुओं के चरित्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग है । उदाहरणतः किशोरी लाल के 'तारा' में तारा की माँ चन्द्रावती का भाई अर्जुन जब तारा की राजसिंह से सगाई तोड़ कर शाहजादा दारा शिकोह से शादी करने की बात कहता है, तो वह उसे बुरा भला कह कर कहती है—'मै समझती हूँ कि जब तारा भूमण्डल के उस परम पूजनीय और पवित्र सिसोदिया कुल की महारानी होगी कि जिसने कभी यवनों के आगे न तो सिर ही झुकाया है और न (बेटी देना तो दूर रहा) अपनी लौडियाँ ही बादशाह को दीं, तो फिर तुम खुद सोच सकते हो कि उस समय बादशाही बेगम के रुतबे से तारा का मर्तबा कितना बेहतर होगा ।'[2]

तारा जब अपने उद्धार के लिए एक लम्बी पत्री भेजती है तो राजसिंह चन्द्रावत जी से इस विषय पर विमर्श करते है । इस पर चन्द्रावत जी बोले,—"क्या अब सारे ससार से क्षत्रियों का सच्चा धर्म और इस नाम (क्षत्रिय) का सच्चा अर्थ ही मिट जाएगा ? सोचिए तो सही कि जो राजपूत बाला आपको वर चुकी है, उससे बरजोरी तुर्क निकाह कर लेगा और हिन्दू पति की प्रतिष्ठा बलपूर्वक छीन लेगा ?···· सदा से जिस मेवाड़ का व्रत शरणागत की रक्षा करना ही है,जिसने अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा आदि बनाए रखने के लिए लाखों वीर क्षत्रियों की बलि युद्धभूमि मे चढा दी है········क्या उसी मेवाड़ के अधीश्वर के उत्तराधिकारी युवराज राजसिंह अपनी शरण में आई हुई एक क्षत्रिय कुमारी राजबाला को, जो कि उसी युवराज की भावी धर्मपत्नी भी है, मलेच्छ के हाथ में पड कर आत्महत्या कर डालने देंगे ।"[3]

युवराज राजसिंह जब मेवाड़ के महाराणा बने तो इसी प्रकार की एक अन्य

1. वही॰, पेज 40-41.
2. "तारा" दूसरा भाग, पेज 33.
3. "तारा", तीसरा भाग, पेज 23-24.

समस्या उनके सामने आई। रूप नगर की राजकुमारी रूपमती को औरंगजेब बलपूर्वक अपनी बेगम बनाने का प्रयत्न करता है, परन्तु इससे पूर्व ही वह मन-वचन से राजसिंह को अपना स्वामी मान लेती है। इस ऐतिहासिक थीम को लेकर बाबूलाल जी सिंह ने 'वीरबाला' तथा बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह ने 'राजपूत रमणी' नामक उपन्यासों की रचना की। महाराणा राजसिंह औरंगजेब से शत्रुता मोल लेकर क्षत्रिय बाला का उद्धार करते हैं।

गौरवमय जातीय अतीत का स्मरण करवाते हुए चन्दावत जी ने राजसिंह को कहा—'जिस सीसोदिया कुल भूषण ने हिन्दू धर्म पर प्राण वारा था, जिस सनातन धर्म की महिमा को स्थिर रखने के लिए हिन्दू-पति महाराणा प्रताप ने कठिन से कठिन दुख सहन किया था। क्या उसी कुल के महाराणा आज एक अनाथ बालिका को शरण में लेने से हिचकिचाते हैं?' इस पर राजसिंह बोले, 'नहीं-नहीं और कदापि नहीं प्राण भले ही चला जाए, परन्तु पूर्वजों की धवल कीर्ति पर राजसिंह द्वारा कालिमा नहीं लग सकती।'[1]

इसी प्रकार "वीरबाला" में रूपमती राजसिंह को पत्र में—'निर्मल सिसोदिया वंश के नायक मेवाड़ की पवित्र और निष्कलंक गद्दी के स्वामी भारत गौरवादर्श अशरण-शरण श्रीमान् हिन्दूपति महाराणा जी साहब,'[2] कह कर संबोधित करती है। और राजसिंह स्वयं स्वर्णिम जातीय अतीत को ध्यान में रखते हुए कहते हैं, "जो अबला शरण-शरण चिल्लाती है अथवा अपने अन्तःकरण से वर चुकी है, यदि उसकी पुकार पर ध्यान न दूँ या उसकी रक्षा के लिए उद्यत न होऊ तो मेरे पूर्वजों की महती प्रतिष्ठा में बड़ा भारी धक्का लगेगा।"[3]

गंगाप्रसाद गुप्त ने 'हम्मीर' मे हम्मीर द्वारा पुनः चित्तौड़ को हस्तगत करने का तथा सिद्धनार्थसिंह के 'प्रणपालन' मे और अखौरी कृष्ण प्रकाश के 'वीर चूड़ामणि' मे मेवाड़ के सिसोदिया वंश की महानता एवं जातीय गौरव का पात्रों के चरित्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

'प्रणपालन' मे सिसोदिया तथा राठौड जातियों की प्रबल टकराहट का सजीव चित्रण किया गया है। जातीय-दर्प एवं कुल मर्यादा वीर चूड़ा जी के चरित्र की महानता के द्योतक है, जबकि यही जातीय दर्प राठौड राजा जोधा जी के लिए कलंक के समान है। अपने भांजे मोकल जी के अभिभावक के रूप मे उन्होंने मेवाड़ के सिसोदियो के स्थान पर राठौडो को ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त किया। "जिस जाति का जब अधिकार और प्रभुत्व जिस जाति पर होता है, वह उस जाति के लोगों को

1. "राजपूत रमणी", युगलकिशोर नारायणसिंह
2. "वीरबाला', बाबूलालजी सिंह, पेज 17.
3. वही०, पेज 32.

अपने अत्याचार से कष्ट पहुँचाती ही है।"[1] अन्ततः चूडा जी फिर से राठौडों को मेवाड से निकाल बाहर करते है।

रामजीवन नागर के "जगदेव परमार" मे भी जातीय दर्प जगदेव को जीवन मे आगे बढने के लिए प्रेरित करता है, 'मै क्षत्री हूँ, क्षत्री का पुत्र हूँ, कही पर अपना गुण प्रकाशित करूँगा और सुख से रहूँगा।'[2]

अखौरी कृष्ण प्रकाश सिह के 'वीर चूडामणि' मे जातीय दर्प, कीर्ति एव दिग्विजय की धारणाओ के साथ सम्मिलित रूप मे उभरा है।[3] दरबारी सस्कृति तथा क्षात्र वीरता के सन्दर्भ मे अस्सी सहस्र सेना का युद्धक्षेत्र को पयान करना जातीय दर्प के कारण ही है।[4]

(इ) **दरबारी संस्कृति · शौर्य, प्रतिद्वन्द्विता, भोग**—मध्ययुगीन सामन्ती सभ्यता एव दरबारी सस्कृति के प्रभाव-स्वरूप राजाओ एव सामती-सरदारो मे अद्वितीय युद्ध-कौशल, अनुपम शौर्य (Chivalry) भयावह प्रतिद्वन्द्विता (Rivalry) उद्दाम भोग (Revelry) (मद्यपान-उत्सव) आदि चारित्रिक विशेषताएँ विशेष रूप से उभर कर आई हे। इन चारित्रिक विशेषताओ का मध्ययुगीन इतिहास चेतना के साथ गहन सम्बन्ध है। नायक पूजा की पौराणिक धारणाओ से सम्बद्ध ये तीनो विशेषताएँ लगभग एक साथ राजाओ एव शासको मे उपलब्ध होती है।

उदाहरणतः मुँशीदेवी प्रसाद के 'रूठी रानी' नामक उपन्यास के नायक मालदेव, जो मारवाड के राव थे, मे ये तीनो विशेषताएँ एक साथ प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती है। हुमायूँ के पराभव एव शेरशाह सूरी के उत्थान के सक्राति युग मे मालदेव ने अद्वितीय शौर्य के कारण बहुत से देश जीत लिए थे।[5] इसलिए उन की पराजित राजाओ तथा जागीरदारो से भयानक प्रतिद्वन्द्विता हो गई थी। जैसलमेर के रावल लूनकरण की बेटी उमादे के सौन्दर्य की ख्याति सुन मालदेव ने उससे शादी का प्रस्ताव किया। लूनकरण ने भयानक प्रतिद्वन्द्विता के कारण 'चौरी' (विवाह होने की जगह) पर ही मालदेव के वध का विचार किया। सोचा, 'बेटी तो विधवा होगी पर तेरी तरफ काटा जन्म भर के लिए दिल से निकल जाएगा।'[6]

मालदेव को इस षड्यन्त्र का पता लग जाने से विवाह तो निर्विघ्न समाप्त हो जाता है परन्तु राव मालदेव उद्दाम काम-भोग एव मदिरा से मत्त होकर वधू के महल की ओर जाते समय रास्ते मे एक स्थान पर हो रहे नृत्य पर "लट्टू होकर वही बैठ गए, दो खवासे दाएँ बाएँ मोरछल लेकर खडी हो गई, दो चवर हिलाने

1. "प्रणपालन", बाबू सिद्धनाथ सिंह, कलकत्ता सन् 1915, पृष्ठ 27.
2. "जगदेव परमार", रामजीवन नागर, पृष्ठ 64.
3. "वीर चूडामणि", पृष्ठ 10-12.
4. "वीर चूडामणि", पृष्ठ 58.
5. देखिए—टॉड का राजस्थान का इतिहास, अनुवादक : केशव कुमार पृष्ठ 364
6. "रुठी रानी", मुंशी देवी प्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता, सन् 1906 ई० पृष्ठ 3.

और पंखा झलने लगीं।.........राव जी उस परिस्तान में इन्द्र बन कर बैठ गए।....
चन्द्रज्योति ने पन्ने के हरे प्याले में शराब भरकर हँसते हुए हाथ बढ़ा कर राव जी की भेंट की। उन्होंने बड़े प्रेम से लेकर पी ली और प्याला अशरफियों से भर कर लौटा दिया।'[1] उमादे रावजी को बुलाने को अपनी सखी भारेली को भेजती है। 'भारेली छलबल करती हुई इस ढंग से रावजी के पास पहुँची कि रावजी जवानी और शराब की मस्ती में उसे ही रानी समझ कर उसके साथ चल दिए। वह भी उन्हें अपने मकान की ओर ले गई।'[2]

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' में मराठों के अपार शौर्य एवं प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण किया है। मुख्य सेनापति सदाशिवराव, भाऊ मल्हारराव हुल्कर, दत्ता जी सेंधिया, जनकोजी सेंधिया, बलवन्तराव मेंढले, आदि सेनापतियों तथा भरतपुर के राजा सूरजमल के चरित्र-चित्रण में शौर्य एवं प्रतिद्वन्द्विता अथवा आपसी मतभेदों का कलात्मक एवं सुरुचिपूर्ण सम्मिश्रण किया है। उद्दाम भोग व विलासिता की चरित्रगत प्रवृत्तियों को उपन्यास में कोई स्थान नहीं दिया गया।

'जगदेव परमार' में जगदेव तथा उसकी पत्नी आदर्श क्षत्रिय दम्पति के रूप में चित्रित किए गए हैं। जगदेव को शौर्य की प्रतिमूर्ति के रूप में उभारा गया है। यह दम्पत्ति मार्ग में एक भयावह सिंह एवं सिंहनी का वध कर[3] अपने शौर्य एवं वीरता का परिचय देते हैं। इसी प्रकार जगदेव काल भैरव को पराजित कर के अपनी स्वामिभक्ति एवं वीरता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। जगदेव के सौतेले भाई रणधवल से उसकी प्रतिद्वन्द्विता का स्वरूप अन्तःपुर की राजनीति से अधिक नहीं कहा जा सकता, जबकि रणधवल की माँ बाघेली रानी, गौड़ देश की राजकुमारी के साथ रणधवल की सगाई करवाने मे सफल होती है जबकि गौड़ राजा उसकी जगदेव से सगाई करवाने के लिए अपने दीवान को भेजता है। इस प्रतिद्वन्द्विता को अन्तःपुर की रानियों के द्वेष की भी संज्ञा दी जा सकती है।

बाबूलाल जी सिंह कृत 'वीर बाला' तथा बाबू युगल किशोर नारायण सिंह कृत 'राजपूत रमणी' उपन्यासों में मेवाड़ के राणा राजसिंह तथा उनके मंत्री चन्दावत जी के शौर्य तथा उनकी औरंगजेब के साथ प्रतिद्वन्द्विता को विशिष्ट सामन्ती चारित्रिक विशेषताओं के रूप में उभारा गया है।

(ई) **एकान्तिक एवं व्यक्तिगत प्रेम**—एकान्तिक एवं वैयक्तिक प्रेम भी ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत अन्तःपुरों (रणवास) तथा स्वयंवर आदि का अतीत युगीन वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक पात्रों का व्यक्तिगत मनोविज्ञान इसी धारणा के अन्तर्गत समाहित होता है। इस विषय पर 'राज सभाएँ एवं अन्तःपुर' शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है।

1. वही, पृष्ठ 9-10.
2. "रूठी रानी", पृष्ठ 13, भारेली के साथ और भी विलास, पृष्ठ 28.
3. "जगदेव परमार", रामजीवन नागर, पृष्ठ 80.

पदमलाल पुन्नालाल बख्शी के मतानुसार—'इतिहास के पृष्ठो मे जो राजा, सेनापति, नेता और शासक अपने-अपने विशेष प्रभुताशाली पदो के कारण अपने कृत्यो से राष्ट्र के उत्थान और पतन मे विशेष प्रभाव डालने के कारण प्रख्यात हो गए है, उनके मानवीय भावों का उत्थान-पतन हम उपन्यासो मे पाते है। उपन्यासों मे उनके अपने प्रेम, विद्वेष, कष्ट, वेदना, आकाक्षा और सुख का वर्णन रहता है। वे एक मात्र राष्ट्र के कर्णधार नही होते, वे मनुष्य होकर पिता, पुत्र, पति और प्रेमी रूप मे भी प्रदर्शित होते है। तब हम इनके जीवन की गरिमा या हीनता का अनुभव करते है।'[1]

गोस्वामी जी के 'रजिया बेगम' मे याकूब के साथ सौसन एव रजिया तथा अयूब के साथ गुलशन एव जोहरा का प्रेम इसी कोटि का है। 'तारा' मे शाहजादियो के गुप्त प्रेम तथा यौन सम्बन्ध का चित्रण इसी धारणा के अनुरूप है। सामान्यत. इस धारणा का अधिक स्पष्ट रूप ऐतिहासिक रोमासों मे उभरा है।

(III) ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं की प्रामाणिकता

मानवीय अतीत के देश एव काल की सीमाओं मे बद्ध एक विशिष्ट कालखण्ड को उपन्यास का आधार बना कर जब ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत का पुन:प्रस्तुतिकरण करता है,तो वह उस विशिष्ट काल खण्ड के इतिहास सम्मत पात्रो एव घटनाओ का कलात्मक चित्रण करता है। ऐतिहासिक उपन्यास के निर्माण मे इतिहास[2] तथा उपन्यास दो भिन्न प्रकार के घटको का सम्मिलिन होता है। उपन्यास के ढग एव शैली पर प्रस्तुत की गई मानवीय अतीत की एक गाथा मे ऐतिहासिक एवं इतिहास-सम्मत घटनाओ को किस प्रकार एव किस सीमा तक प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इस विषय पर विद्वानो मे मतभेद है।

(क) उपन्यासों की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के मत—रवीन्द्रनाथ टैगोर सर फ्रासिस पालग्रेव के सदर्भ से—कहते है कि "ऐतिहासिक उपन्यास एक ओर इतिहास का शत्रु है, तो दूसरी ओर कहानी का भी बडा दुश्मन है अर्थात् उपन्यास-लेखक कहानी की खातिर इतिहास पर आघात करते है और वह आहत इतिहास, कहानी का नाश कर देता है। इस प्रकार बेचारी कहानी के श्वसुर कुल तथा पितृ कुल दोनो ही नष्ट हो जाते है।"[3]

1. "ऐतिहासिक उपन्यास, दिशा और उपलब्धि", ऐतिहासिक उपन्यास सपादक डॉ० गोविन्दजी, पृष्ठ 73.
2. नोट :—सामान्यत. विद्वान् इतिहास को एक दिए गए तथ्य के रूप मे स्वीकार करते हैं, जबकि इतिहास एक दिया गया तथ्य नहीं हो सकता क्योंकि वह पहले ही अभिलेखकर्त्ता के चुनाव एव निरीक्षण की प्रक्रिया से गुजरने के कारण विश्लेषणात्मक स्वरूप का हो जाता है। (यहाँ विद्वानो के मत से हमारा मत मिलना आवश्यक नहीं है).
3. 'ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रस' टैगोर, गोविन्द जी सपादित ऐतिहासिक उपन्यास, पृष्ठ 12.

हिन्दी साहित्य-कोषकार के मतानुसार ऐतिहासिक उपन्यास को इतिहास तथा उपन्यास दो परस्पर भिन्न प्रकृति वाले स्वामियों के प्रति भक्ति निभानी पड़ती है।

काव्य के माधुर्य एवं इतिहास की तथ्यात्मकता एवं विज्ञानपरकता में एक व्यापक विपरीतता होती है। काव्य एव इतिहास में तथ्य एवं सत्य की मात्राओं के सम्बन्ध में विश्व कवि रवीन्द्र का मत यह है—'काव्य कहता है—भाई इतिहास, तुम्हारे अन्दर भी बहुत कुछ मिथ्या है और मेरे अन्दर भी बहुत-सी सचाइयाँ हैं, अतएव हम दोनों पहले के समान मेल-मिलाप कर लें। इतिहास कहता है कि ना भाई, अपने-अपने हिस्से का बँटवारा कर लेना ही अच्छा है। ज्ञान नामक आमीन ने सर्वत्र इस बँटवारे के कार्य का प्रारंभ कर दिया है। सत्य के राज्य और कल्पना के राज्य में स्पष्ट भेदक रेखा खींचने के लिए उसने कमर बांध ली है।'[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता की जाँच करने से पूर्व हमें उपन्यास-कला तथा इतिहास के विलयन की प्रक्रिया का अध्ययन कर लेना चाहिए। गोपीनाथ तिवारी के मतानुसार, "इतिहास का घोर विरोधी है उपन्यास। जहाँ इतिहास का आधार है ठोस सत्य, वहाँ उपन्यास की नींव है कल्पना।"[2]

देवराज उपाध्याय 'उपन्यास, इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास' नामक निबन्ध में इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास के बीच एक सीमा-रेखा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, 'इतिहास में कल्पना का पुट आ जाना सहज है, पर घटनाओं पर काल्पनिक रंग चढ़ाना इतिहास का काम नहीं। ऐतिहासिक उपन्यास में यात्रा के लिए निकलती तो है कल्पना ही, पर इतिहास को भी साथ ले लेती है।........यदि पूर्ण रूपेण हार्दिक सम्मिलन नहीं हो सकता तो उसे बराबर हृदय से लगाए न रख कर कभी-कभी उसको छोड़ कर भी साथ ले सकती है।........इतिहास उसके गृह पर अतिथि के रूप में निमंत्रित होकर आ गया तो वह हर तरह के आदर-सत्कार का अधिकारी होगा, पर वह वहाँ दखल जमा कर 'मालिक मकां' नहीं बन सकता।'[3] स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास का ही आधिपत्य नहीं होना चाहिए। 'कला-वस्तु' में भी सत्य (इतिहास) या कल्पना में से कौन प्रधान हो तो उपाध्याय जी के मतानुसार, 'निर्मिति में कल्पना का देय कुछ अधिक है।'[4]

यदि इतिहासकार अपनी खोजों और निर्णयों को अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करें तो "उसे शब्दों के चुनाव में कौशल से काम लेना ही पड़ेगा। यदि कोई

1. "ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रस" टैगोर, गोविन्द जी संपादित "ऐतिहासिक उपन्यास", पृष्ठ 11.
2. "ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास", गोपीनाथ, गोविन्द जी संपादित "ऐतिहासिक उपन्यास", पृष्ठ 58.
3. वही, पृष्ठ 43.
4. वही, पृष्ठ 54.

ऐसा इतिहास लेखक है, तो हम उसकी कारीगरी की, कुशलता की दाद दे सकते है....इस पर भी वह एक कुशल इतिहासकार ही है, कलाकार नहीं। उसकी रचना इतिहास का ग्रन्थ है, साहित्य का नहीं।[1]"

ऐतिहासिक उपन्यास मे ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता का अध्ययन करते समय यह देखना होगा कि इतिहास का अनुगमन करते समय ऐतिहासिक उपन्यास स्वयं इतिहास न बन जाए। उपन्यासकार की कार्य-प्रणाली तथा सम्प्रेषणीयता की प्रक्रिया इतिहासकार से भिन्न प्रकार की होती है। देवराज उपाध्याय के मतानुसार उपन्यासकार के हृदय मे विषय तथा उसे प्रतिपादित करने की शैली, 'ये दोनों चीजे साहित्य में साथ-साथ अवतरित होती है। कोई भी साहित्यिक संवेग अपनी रूपाभिव्यक्ति को साथ ही लिए आता है।'[2] ऐतिहासिक उपन्यास के इतिहास बन जाने की संभावना के संबंध मे गोपीनाथ तिवारी का मत यह है—"लेखक उपन्यास के माध्यम से सच्चा इतिहास देता है। इस श्रेणी के लेखक यदि उपन्यासकार न हुए तो जीवन-चरित्र मात्र देते है, ऐतिहासिक उपन्यास नही। मिश्र द्वय के ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास कम हैं।"[3]

ऐतिहासिक उपन्यास मे जिस विशिष्ट एवं सुनिश्चित देश एवं काल का पुनः प्रस्तुतिकरण किया जाता है उस कालखण्ड की ऐतिहासिक घटनाएँ, उपन्यासकार की निर्माणकारी प्रतिभा, उर्वर कल्पना तथा साहित्यिक उपकरणों के साथ मिल कर एक रूप हो जाती है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास अन्यान्य कलाओं के पुनीत संगम के रूप में उभरता है। डॉ० गोविन्द जी के मतानुसार, "ऐतिहासिक उपन्यास ऐसी कला-कृतियों में से एक है, जो विभिन्न कलाओं के पारस्परिक संयोग से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार संगीत, कविता तथा नाट्य-कला के पारस्परिक सम्मिलन से एक नई कला 'गीतिनाट्य' की उत्पत्ति होती है, जो रूपाभिव्यक्ति में अपने तीनों पूर्ववर्ती कलारूपों से भिन्न होती है, उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास भी उपन्यास-कला तथा इतिहास का विलयन है। ऐतिहासिक तथ्य एवं घटनाएँ जब मनः कल्पना के परों पर चढ़ कर उपन्यास कला के क्षेत्र मे प्रविष्ट होती है, तो ऐतिहासिक उपन्यास का जन्म होता है"।[4] इसलिए, "कोई भी ऐतिहासिक उपन्यास चाहे वह उच्च कोटि का ही क्यों न हो, इतिहास का विशिष्ट कार्य नही कर सकता और न उसमें हम ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का अनुसंधान ही कर सकते है।"[5]

ऐतिहासिक उपन्यासों के संबंध में डॉ० गोविन्द जी के उपर्युक्त मत के विपरीत ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का अध्ययन

1. वही, पेज 40.
2. वही, पेज 41.
3. डॉ० गोविन्द जी संपादित—ऐतिहासिक उपन्यास, पेज 62.
4. डॉ० गोविन्दजी संपादित, ऐतिहासिक उपन्यास, पेज 127.
5. वही, पेज 128.

अत्यन्त आवश्यक है। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि—"उपन्यास का लेखक वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह अतीत का चित्रण करते समय भी पुरातत्व, मानवतत्व और मनोविज्ञान आदि की आधुनिकतम् प्रगति से अनभिज्ञ रह कर थोथी कल्पना का आश्रय ले उपहासास्पद बन जाता है।"[1] ऐतिहासिक कथाकार द्वारा ऐतिहासिक सामग्री के गम्भीर अध्ययन एवं उसके सतर्क प्रयोग के संबंध में राहुल सांकृत्यायन का मत उल्लेखनीय है—"ऐतिहासिक सामग्री का हल्के दिल से अध्ययन करना लाभदायक नहीं है, इससे लेखक आधा तीतर आधा बटेर पैदा करने में समर्थ होगा जो कि और भी उपहासास्पद बात होगी। ऐतिहासिक कथाकार को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारी एक-एक पंक्ति पर एक बड़ा निष्ठुर मर्मज्ञ समूह पैनी दृष्टि से देख रहा है। हमारी जरा भी गलती वह बरदाश्त नहीं करेगा।"[2]

डॉ० गोपालराय ने प्रेमचन्द पूर्व लगभग समस्त इतिहासाश्रित कथासाहित्य को ऐतिहासिक रोमांस की संज्ञा से अभिहित किया है। विशेषतः श्री किशोरी लाल गोस्वामी के संबंध में उनका मत है कि वे ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी पर खरे नहीं उतरे।—"इन कथाओं में जो जीवन चित्रित हुआ है, वह, अविश्वसनीय है।.... गोस्वामी जी के सभी उपन्यास मुख्यतः प्रेम कथाएँ हैं। पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं, पर मूल कथाओं का इतिहास से संबंध नहीं के बराबर है।"[3]

"यद्यपि किसी युग की स्पिरिट का बोध कराने के लिए.......यह आवश्यक नहीं है कि वह अतीत की वास्तविक घटनाओं अथवा इतिहास-समर्थित घटनाओं का आधार ले।.......ऐतिहासिक उपन्यास की प्रत्येक घटना काल्पनिक भी हो सकती है और वह घटित हुई किसी विशिष्ट घटना के बिना भी 'इतिहास की भाववृत्ति' को उपस्थित कर सकती है।"[4] तथापि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्री का उत्तम प्रयोग किया गया है। इस शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक जो इतिहास-सामग्री उपलब्ध थी उसके स्वरूप का अध्ययन तीसरे अध्याय के पहले अंश में किया गया है।

प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में वर्णित अतीत युग के सम्बन्ध में उपयुक्त ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करने के लिए लम्बे-लम्बे 'उपोद्‌घात' एवं भूमिकाएँ आदि लिखी हैं। कई बार उपन्यासकार स्वयं ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त करने के स्रोतों का विवरण भूमिका अथवा प्राक्कथन में देते हैं।[5] मुख्यतः

1. 'ऐतिहासिक उपन्यास क्या है ?' डॉ० गोविन्द सपादित ऐतिहासिक उपन्यास, पेज 17.
2. वही, पेज 21—'ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप,' राहुल सांकृत्यायन।
3. "हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव"—डॉ. गोपालराय, पेज 307.
4. डॉ० गोविन्द जी—'ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप' पेज 138
5. विवेच्य उपन्यासकारों द्वारा उपन्यासों की रचना में इतिहास पुस्तकों एवं यात्रा विवरणों आदि से सहायता ली गई है। इसका विवरण दूसरे अध्याय के दूसरे अंश में किया गया है।

टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास', वार्गस कृत 'रासमाला' (गुजरात का इतिहास), 'इंडियन-शिवेलरी' कल्हण की 'राजतरंगिणी', बर्नियर एवं म्यानिसी के 'यात्रा-वृत्तांत' आदि से उपन्यासकारों ने इतिहास संबंधी ज्ञान प्राप्त किया है।

टॉड का 'राजस्थान का इतिहास' वस्तुतः विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित घटनाओं की प्रामाणिकता का प्रमाण है। टॉड राजपूतों के प्रति अत्यन्त सहृदयतापूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाता है। उसने राजपूतों को अत्यन्त निकट से देखा, उनके शौर्य एवं वीरता की प्रशंसात्मक आलोचना की। वह 'स्वयं को स्पष्ट रूप से राजपूत जाति का अभिवक्ता एवं प्रशंसक मानता था।"[1] राजस्थान के अंधविश्वासों, मिथकों, तथा धर्म के संबंध में टॉड का रवैया उदार था। राजपूतों की नैतिकताओं के लिए उनकी धारणा समर्थन-पूर्ण थी।[2] टॉड ने स्वयं राजपूतों के पौराणिक सूर्य संबंधी (Solar) तथा चन्द्र संबंधी (Lunar) जातियों का अध्ययन किया तथा उसे अपने इतिहास में स्थान भी दिया। इसी प्रकार के कतिपय कारणों से यह कहा गया कि 'टॉड, निश्चय ही इतिहास को उसके उचित उपयोग के लिए प्रयुक्त करने के लिए व्यग्र था।'[3]

टॉड के इतिहास की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता का अध्ययन एक अलग विषय है। आवश्यक यह है कि इतिहास-लेखक अपने विषय के साथ तब तक न्याय नहीं कर सकता जब तक कि वह ऐतिहासिक-युग के लोगों, उनके विश्वासों, विचारों, एवं परंपराओं से एक प्रकार का आत्मीय संबंध स्थापित न कर ले और टॉड ने यह इसी भाँति किया।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार टॉड का इतिहास चाहे "आधुनिक दृष्टि से वैज्ञानिक रूपेण लिखित इतिहास का ग्रन्थ न हो, परन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह ऐतिहासिक सामग्री का अपूर्व भंडार है।.........जिस समय कर्नल टॉड ने अपना ग्रंथ लिखा था इतनी सामग्री उपलब्ध नहीं थी।.........राजपूत जातियों का टॉड का परिचय अब अपूर्ण समझा जाता है।....... राज्यों के इतिहासों में भी बहुत सी त्रुटियाँ थीं, जिनका अब संशोधन किया गया है।" इस पर भी "राजपूत समाज के बारे में जितनी सामग्री टॉड के ग्रन्थ में है, वह अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। न कहीं राजपूत सामन्तशाही का ऐसा विस्तृत वर्णन मिलता है जैसा कि टॉड लिखित राजस्थान के इतिहास में है।" टॉड की सामग्री के संबंध में उनका मत है कि "राज्यों से उन्हें सहायता मिलती थी।.........चारणों से उन्हें बहुत-सी सामग्री उपलब्ध हुई। जनश्रुति का भी, इतिहास का एक अमूल्य साधन है, उन्होंने उपयोग किया।"[4]

1. "British Historical Writing.........on Muslim India" by Dr. J. S. Grawal, (Ph. D.) Thesis from London University. Page 329.
2. वही, पेज 322.
3. वही, पेज 331.
4. टॉड लिखित—'राजस्थान का इतिहास' केशव कुमार द्वारा किए गए अनुवाद की भूमिका से उद्धृत, पेज 6–7.

स्वयं टॉड ने ऐतिहासिक सामग्री के संबंध में लिखा था,—'भारतवर्ष में युद्ध संबंधी जो काव्य ग्रन्थ हैं, वे इस देश के इतिहास की सामग्री देने में सहायता करते हैं। कवि मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहासकार माने जाते हैं।········ऐतिहासिक सामग्री के लिए इस देश में दूसरे भी साधन हैं। भौगोलिक वृत्तान्त, काव्यमय राजाओं के चरित्र, घटनाओं को लेकर लिखे गए लेख, विभिन्न प्रकार की धार्मिक पुस्तकें भी इस कार्य में सहायता करती हैं। ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ-स्मृति, पुराण, टिप्पणियाँ, जनश्रुतियाँ, शिलालेख, सिक्के और ताम्रपत्र-जिनमें बहुत-सी ऐतिहासिक बातों के उल्लेख मिलते है—इस कार्य में सहायक साबित होते हैं।"[1]

टॉड ने यद्यपि काव्य-ग्रन्थों की ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग इतिहास-लेखन के कार्य में किया था, परन्तु वे उनकी त्रुटियों के प्रति सजग थे। उन्हीं के मतानुसार, 'प्राचीन काल में कवियों ने इतिहासकारों के स्थान की पूर्ति की थी परन्तु उनमें कुछ त्रुटियाँ थी। वे त्रुटियाँ अतिशयोक्ति तक ही सीमित न थी। उनमें खुशामद की मनोवृत्ति भी थी और कवि की प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता दोनों ही इतिहास के लिए जरूरी नहीं हैं। इतिहासकार मित्र और शत्रु-दोनों के लिए एक-सा रहता है और अपने इस कार्य में वह जितना ही ईमानदार रहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ इतिहासकार होता है।"[2]

स्पष्ट है कि टॉड इतिहास में इतिहासकार की निर्वैयक्तिकनता की धारणा का पोषक था। उसने लगभग समस्त उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया तथा राजपूतों के अतीत युगों को पुनः प्रस्तुत करने के साथ-साथ उन्हें अमरत्व भी प्रदान किया।

कर्नल जेम्स टॉड जब मेवाड के संबंध मे लिखता है तो वह एक उत्साही (Inspired) कवि जैसा बन जाता है।[3] डॉ० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार, 'ग्यारहवें परिच्छेद से मेवाड का इतिहास आरम्भ होता है। घटनाओं का वर्णन मार्मिक तथा ओजस्वी भाषा मे किया गया है।"[4]

(ख) **उपन्यासों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता**—टॉड के मेवाड़ के इतिहास से अधिकांश विवेच्य उपन्यासकार प्रभावित हुए तथा उसमें वर्णित घटनाओं के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की।

"राजस्थान का इतिहास" के पन्द्रहवें परिच्छेद का विवेच्य-युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों पर सर्वाधिक प्रभाव पडा और इसमें वर्णित घटनाओं को लगभग उसी रूप में अथवा कुछ परिवर्तित रूप मे पाँच विवेच्य उपन्यासों में वर्णित किया गया है।

1. वही, प्रस्तावना, पेज 14–15.
2. टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, केशव कुमार द्वारा किए गए अनुवाद की भूमिका से उद्धृत पेज 14–15, प्रस्तावना से।
3. डॉ० जे. एस. गरेवाल, पेज 329.
4. राजस्थान इतिहास, भूमिका पेज 8.

चंद्रशेखर पाठक कृत "भीमसिंह", मिश्रबन्धु कृत—"वीर मणि", रामनरेश त्रिपाठी कृत "वीरांगना", गिरिजानन्दन तिवारी कृत "पद्मिनी", वसन्तलाल शर्मा कृत "महारानी पद्मिनी" तथा रूप नारायण कृत "सोने की राख वा पद्मिनी"[1] में सामान्य रूप से चित्तौड़ के महाराणा लक्ष्मण सिंह की अल्पवयस्कता के कारण उनके चाचा भीमसिंह द्वारा शासन का कार्य किया जाना, भीमसिंह की पत्नी पद्मिनी का अनुपम सौन्दर्य और अलाउद्दीन द्वारा उस पर अनुरक्त हो कर चित्तौड़ पर आक्रमण किया जाना, अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी की माँग तथा अन्यान्य राजनैतिक चालें चली जाना, दर्पण मे पद्मिनी को देख कर लौटने का वचन, और फिर षड्यंत्र द्वारा राणा भीमसिह को गिरफतार करना, शत्रु के शिविर में, पद्मिनी द्वारा अलाउद्दीन को मूर्ख बनाने की योजना और उसी के अनुरूप बहुत-सी पालकियों में गोरा व बादल के सेनापतित्व में मेवाड़ी सेनाओं को शत्रुशिविर मे भेज कर भीमसिंह का छुड़ाया जाना, शिविर में भयानक युद्ध, गोरा की बहादुरी, बादशाह द्वारा दोबारा आक्रमण किया जाना और भयानक संग्राम किया जाना, चित्तौड़ में युद्ध की अन्तिम तैयारी का वातावरण तथा महलों में जौहर व्रत की योजना का बनाया जाना, चित्तौड़ की पराजय तथा राजपूत बालाओं द्वारा अपने जीवन की होली खेले जाना आदि सभी ऐतिहासिक घटनाएँ इन उपन्यासों में वर्णित की गई है जिन्हें टॉड के इतिहास[2] मे मान्यता प्रदान की गई है।

इसके अतिरिक्त राणा भीमसिह के बड़े पुत्र अरिसिह (अथवा अरुणसिह) का एक भील कन्या से आकस्मिक प्रेम, उस युवती की निर्भीकता एवं वीरता, तथा बाद में अरिसिंह से विवाह करना इस घटना को चन्द्रशेखर पाठक ने अपने उपन्यास "भीमसिंह" में अत्यन्त कलात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है।

मुख्यतः इसी घटना-क्रम पर निर्भर रहते हुए भी विवेच्य उपन्यासकारों ने कई काल्पनिक उद्भावनाएँ की हैं।

मेवाड़ के राणा लाखा (लाक्ष) के बड़े पुत्र राजकुमार चन्द्र (चूड़ामणि) की वीरता, शौर्य तथा प्रण का पालन करने के लिए उनके द्वारा सिहासन तथा चित्तौड़ का परित्याग किया जाना, अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह के उपन्यास "वीर चूड़ामणि" तथा सिद्धनाथ सिह के उपन्यास "प्रणपालन" मे वर्णित किया गया है।

"वीर चूड़ामणि" में राणा लाखा की कई ऐतिहासिक विजयों का वर्णन रोमांसिक प्रसंगों से जोड़ते हुए किया गया है।

1. "सोने की राख वा पद्मिनी", नामक उपन्यास का विज्ञापन "फरवरी 1917 की मर्यादा में प्रकाशित "पुस्तक परिचय" मे दिया गया था। यह उपन्यास बहार ऑफिस, काशी से प्रकाशित हुआ था। हिन्दी उपन्यास कोशकार डॉ. गोपालराय इस उपन्यास को प्राप्त करने में असमर्थ रहे थे। (हिन्दी उपन्यास कोश पेज 149) प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को यह पुस्तक पुरानी पुस्तकों का शोध करते समय प्राप्त हुई।
2. देखिए-राजस्थान का इतिहास, टॉड, अनुवाद केशवकुमार, पेज 149-160.

केशवकुमार के अनुवाद का सोलहवाँ परिच्छेद,[1] सिद्धनाथसिंह कृत "प्रणपालन" की समस्त कथाभूमि एवं मुख्य घटनाओं की प्रामाणिकता सिद्ध करता है।

महाराणा लाखा द्वारा राजकुमार चूड़ामणि के लिए मारवाड़ के राजा रणमल्ल द्वारा भेजे गए नारियल (विवाह सदेश) के सम्बन्ध में परिहास करना तथा राजकुमार द्वारा इसे गंभीरता से लेना, राणा लाखा एवं दरबारियों द्वारा समझाए जाने पर भी जब चूड़ामणि न माने तो मारवाड़ के राजा रणमल्ल को अपमान से बचाने के लिए स्वयं वह नारियल स्वीकार किया। चूड़ामणि ने यह प्रतिज्ञा की कि वह इस रानी से उत्पन्न होने वाले पुत्र के कारण सिंहासन का अधिकार त्याग देगा। मुकुल (मोकल) का जन्म हुआ तो उसे सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाया गया। राणा लाखा गया में यवनों का हनन करने को गए तो चूड़ामणि ने स्वयं राज्य का कार्यभार अपने हाथ में लिया। मारवाड़ के राजा रणमल्ल आदि के बहकावे में आकर राजमाता ने चूड़ा जी पर संदेह व्यक्त किया तो वे राज्य त्याग कर मान्दू (मांडू) चले गए। धीरे-धीरे मारवाड़ के राठौड़ों का चित्तौड़ में आधिपत्य होने लगा। राजवंश की एक धाय द्वारा चेताने पर राजमाता को अपनी त्रुटियों का भास हुआ तो उसने चूड़ा जी से सहायता की माँग की। चूड़ा जी ने अपने लगभग दो सौ सवारों तथा चित्तौड़ की जनता की सहायता से राठौरो को वहाँ से निकाल चित्तौड़ का उद्धार किया।

यह समस्त घटना-क्रम टॉड के इतिहास द्वारा ऐतिहासिक रूप से मान्य है।

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त लिखित "हम्मीर" में वर्णित मुख्य घटनाएँ टॉड के इतिहास[2] द्वारा प्रमाणित की गई है। यह "गद्य कथा" आरभ करने से पूर्व वे टॉड की यह उक्ति पुनः प्रस्तुत करते हैं:—

"There is not a petty state in Rajasthan that has its tharmopylea & scarcely a city that has not produced its leonids." TOD

पद्मिनी द्वारा जौहर-व्रत का पालन करने के पश्चात् चित्तौड़ का पतन हो गया था। परन्तु राणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र अरिसिंह जो अलाउद्दीन के आक्रमण के समय कारणवश चित्तौड़ छोड़ गए थे,के पुत्र हम्मीर का उसके चचा अजयसिंह ने पता लगाया और मुंजा (वलैंचा जो कि भीलो का सरदार था) के विरुद्ध भेजा (पृष्ठ 7)। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हम्मीर ने वलैंचा का कटा हुआ सर अजयसिंह के चरणों मे प्रस्तुत किया। उसी के रक्त से हम्मीर का 'टीका[illegible]' वीरप्रथा के अनुसार राजतिलक किया गया (पृष्ठ 9[illegible] विजय किया। मालदेव ने कपट से अपनी विध[illegible]

1. देखिए, टाड कृत राजस्थान का इतिहास, पेज 160-164.
2. देखिए, टाड कृत राजस्थान का इतिहास, पेज 154-159.

किया जिसकी सहायता से हम्मीर ने मालदेव की अनुपस्थिति में चित्तौड़ को हस्तगत कर लिया (पृष्ठ 33)। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद खिलजी की सहायता से मालदेव ने पुनः चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो हम्मीर ने उन्हें पराजित कर बादशाह को कैद कर लिया पर बाद मे उसे छोड़ दिया।

राणा प्रतापसिह के पश्चात् मेवाड राज्य की वीरता एव कीर्ति को राणा राजसिह ने पुनः जीवित किया। रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती (उपन्यासों में नाम रूपवती) पर औरंगज़ेब की कुदृष्टि पडती है, तो वह उसे निकाह का संदेश भेजता है। रूपवती राठौर क्षत्रिय कन्या होने के कारण इसे अस्वीकार करके मेवाड़ के राणा राजसिंह को मन वचन से अपना पति स्वीकार कर यवन सम्राट से उद्धार की प्रार्थना करती है। राजसिंह अपने दरबारियो एवं सरदार चूड़ावत (चंद्रावत) के साथ विमर्श करने के पश्चात् यह निर्णय करते हैं कि चद्रावत विशाल सेना के साथ आगरा के पास औरगज़ेब को रोकेंगे, इसी बीच राजसिंह रूपमती को ब्याह लाएँगे। चूड़ावत ने औरंगज़ेब को भयानक युद्ध करके तीन दिन तक के लिए रोके रखा। इसी बीच राजसिह ने रूपमती का पाणिग्रहण किया।

इस प्रकार ये समस्त घटनाएँ टॉड के इतिहास द्वारा अपनी प्रामाणिकता प्राप्त करती हैं।[1] बाबूलालजीसिह का "वीरबाला" तथा युगलकिशोर नारायणसिंह का 'राजपूत रमणी' इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से प्रामाणिकता प्राप्त करते हैं।

जयरामदास गुप्त का ऐतिहासिक उपन्यास 'काश्मीर पतन' सामान्यतः कनिघम तथा खुशवंतसिंह के सिख इतिहासों से अपनी प्रामाणिकता प्राप्त करता है। काश्मीर का शासक अजीमखां तथा उसका छोटा भाई जब्बारखां सामान्य जनता तथा पंडितों पर भयानक अत्याचार करते हैं। इस से दुखित होकर जब्बारखां का राजस्व मन्त्री पडित बीरबल धर सिख दरबार में शिकायत करने को हाजिर होता है तथा महाराजा रणजीतसिंह को काश्मीर पर अधिकार करने की सलाह देता है (पृष्ठ 83-92)।[2] इसके फलस्वरूप सिख सेना ने काश्मीर को हस्तगत कर लिया (पृष्ठ 143-152)।[3]

इस प्रकार अन्यान्य काल्पनिक एवं अनैतिहासिक उद्भावनाओं के होते हुए भी उपन्यास की मुख्य घटनाएँ ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक हैं।

रामजीवन नागर ने अपने उपन्यास "जगदेव परमार" की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि "फार्बस साहब की रासमाला" के आधार पर उपन्यास की

1. टाड का राजस्थान, पेज 224-228.
2. "Jabbar Khan's revenue minister, Pandit Birbal Dhar......came to Lahore to complain of the plight of his countrymen and advised the Durbar that this was the opportune moment to take Kashmir", "A History of the Sikhs" by Khushwant Singh, Vol. I, London, Oxford University Press 1963 p. 254.
2. वही., पेज 254-255.

रचना की गई है। उपन्यास आरम्भ करने से पूर्व "इतिहास से सम्बन्ध" शीर्षक के अन्तर्गत उपन्यास की मूलकथा का इतिहास से सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया है तथा संक्षेप में कथानक का ऐतिहासिक थीम दे दिया है। जगदेव की मां सोलकिनी रानी अनमानीति थी, इसलिए चाह कर भी मालव देश की धारा नगरी के राजा उदयादित्य बाघेली रानी के कोप के कारण जगदेव तथा उसकी मां को उनके उचित अधिकार नहीं दे पाता। गौड़ देश के राजा गम्भीर ने अपनी कन्या की सगाई जगदेव से करने के लिए राजपुरोहित और दीवान को भेजा, परन्तु बाघेली के प्रपंच के लालच में आकर वे लोग जगदेव के बदले रणधवल से सगाई कर गए। रणधवल की बारात में जाते समय मार्ग में टोंक टोड़ा के राजा राजसिंह ने अपनी कन्या वीरमती को जगदेव से ब्याह दिया। अपमानित होने के पश्चात् जगदेव वीरमती को साथ लेकर पाटन नगर के राजा की नौकरी कर लेता है। वह पाटन के राजा सिद्धराज के प्रति अपनी स्वामिभक्ति दर्शाने के लिए सारे परिवार के प्राण देने को तैयार हो जाता है, इस पर सिद्धराज उस पर बहुत प्रसन्न हो जाता है। भुज के राजा जामलाखा बड़ी कन्या की शादी सिद्धराज से तथा छोटी बहन का विवाह जगदेव से करवा देता है। चामुण्डा देवी द्वारा हस्तक्षेप करने के कारण सिद्धराज जगदेव के विरुद्ध हो जाता है और वह धारा नगर पर चढ़ाई करने के लिए तैयार हो गया। इस पर जगदेव नौकरी छोड़कर धारानगर वापस चला गया। उदयादित्य ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया। उदयादित्य की मृत्यु पर उसके साथ उसकी दोनों रानियां सती हो जाती हैं। जगदेव का, 52 वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् 85 वर्ष की आयु में बड़े पुत्र जगधवल को राज्य देकर, स्वर्गवास हुआ। उसके साथ उसकी तीनों रानियां भी सती हो गईं।

कतिपय अति लौकिक तत्वों के अतिरिक्त शेष समस्त कथानक इतिहास-सम्मत है और उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता फार्बस साहब की रासमाला द्वारा प्रमाणित होती है।

मु० देवीप्रसाद के 'रूठी रानी' में यद्यपि लोक तत्वों का आधिक्य है तथापि राव मालदेव से सम्बन्धित समस्त राजनैतिक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ टॉड के राजस्थान से प्रामाणिकता प्राप्त करती हैं। राव मालदेव का समय हमायूँ के पतन और शेरशाह सूरी के उत्थान का संक्रान्ति काल था। इसलिए वह दोनों में से किसी भी एक की सहायता करने का राजनैतिक निर्णय नहीं ले पाया। 'मालदेव के शासनकाल में मारवाड़ के राज्य का बहुत विस्तार हो गया था।.........यह विशाल नगर मालदेव के प्रताप और ऐश्वर्य का प्रमाण देते हैं।'[1] शेरशाह हमायूँ को परास्त करने के पश्चात् एक अत्यन्त कुटिलतापूर्ण षड्यन्त्र रच कर मालदेव के मन में अपने शूरवीर सरदारों के प्रति सन्देह उत्पन्न कर उसके राज्य के अधिकांश भाग उसने छीन लेता है।[2]

1. राजस्थान का इतिहास, टॉड, पृष्ठ 364.
2. वही, पृष्ठ 367-368.

अन्तःपुरों में रानियों के षड्यन्त्र तथा रूठी रानी उमादे से सम्बन्धित कथानक में लेखक ने एक समस्त अतीत युग का पुनः प्रस्तुतिकरण करने की प्रक्रिया में लोक तत्त्वों का सराहनीय प्रयोग किया है। घटनाओं की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सोने पर सुहागे का काम करती है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' नामक उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं का प्रसंगवश प्रामाणिक चित्रण किया गया है। जोधपुर के महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम अमरसिंह था। पहली रानी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने दूसरा विवाह किया। उससे यशोवन्त सिंह और अचलसिंह दो पुत्र उत्पन्न हुए। कारणवश गजसिंह ने रुष्ट होकर अमरसिंह को उत्तराधिकार से वंचित कर राज्य से बाहर निकाल दिया। वह अपनी पत्नी चन्द्रावती, जो बून्दी की राजकुमारी थी, को साथ लेकर राज्य के बाहर हो गया। उत्तराधिकार की लड़ाई में अमरसिंह ने शाहजादा खुर्रम की बहुत सहायता की। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से जब सिंहासन पर बैठा, तो उसने अमरसिंह को 3000 की मनसबदारी, जागीर तथा यमुना के किनारे एक महल बनवा कर दिया। इस प्रकार अमरसिंह, शाहजहां के विश्वासपात्र एवं महत्त्वपूर्ण दरबारी के रूप में आगरे में ही रहने लगा। इस बीच अमरसिंह की लड़की तारा युवती हो गई, खजांची सलावत खां मन ही मन अमरसिंह से जलने लगा था तथा तारा को हस्तगत करने का विचार रखता था, जबकि तारा का विवाह उदयपुर के युवराज राजसिंह के साथ निश्चित हो गया था। शाहजादा दारा भी तारा को बुरी दृष्टि से देखता था। फिर भी तारा रम्भा की सहायता से राजसिंह के साथ सकुशल उदयपुर पहुँच जाती है। सलावत इसमें बाधा डालने का प्रयत्न करता है परन्तु पराजित हो जाता है। अगले दिन अमरसिंह शाहजहाँ के भरे दरबार मे सलावत खाँ की कटार मार कर हत्या करते हैं और दूसरी कटार से शाहजहाँ पर आक्रमण करते हैं, परन्तु शाहजहाँ संभल जाता है। वहाँ से भागते समय अमरसिंह की मृत्यु हो जाती है। जब शाहजहाँ को वास्तविकता का पता लगता है, तो वह पश्चाताप करने के लिए अमरसिंह का नाम अमर करने के हेतु उस फाटक का नाम अमरसिंह का फाटक रख देता है, जहाँ से अमरसिंह ने भागने का प्रयत्न किया था।

उपन्यास के पहले भाग के 'शाहजहाँ और जहाँनारा'[1] नामक परिच्छेद में दोनों तद्युगीन राजनैतिक स्थिति एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर तथ्यपूर्ण एवं तर्कसंगत बातचीत करते हैं। उदयपुर के युवराज राजसिंह का प्रसंग आने पर शाहजहाँ मारवाड़ तथा उदयपुर के राजपूत राजाओं द्वारा उत्तराधिकार की लड़ाई में सहायता दिए जाने के लिए उनके प्रति आभार का अनुभव करता है। उदयपुर में राणा जगतसिंह ने सब से पहले शाहजादा खुर्रम को शाहजहाँ कह कर अभिवादन किया था। यह समस्त प्रसंग टॉड के राजस्थान से लिया गया है।[2]

1. "तारा" पहला भाग, पृष्ठ 96-103.
2. राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ 222-223.

'रजिया बेगम व रंगमहल में हलाहल' नामक उपन्यास में गोस्वामी जी ने इतिहास की प्रामाणिकता को औपन्यासिक अभिव्यक्ति के साथ जोड कर उसका कलात्मक प्रस्तुतिकरण किया है। हब्शी गुलाम जलालुद्दीन याकूब जो केवल अस्तबल का दारोगा था, उसके शारीरिक आकर्षण तथा बुद्धि-बल पर आकृष्ट होकर रजिया ने उसे अपना कृपा-पात्र बना लिया था। इस पर मुख्य-मुख्य सरदारों तथा सेनापति ने रजिया के साथ विद्रोह कर दिया और रजिया को कैद करके पजाब के शासक अलतूनिया की कैद मे रख दिया।[1] परन्तु अलतूनिया ने उसे अपनी पत्नी बना कर फिर से दिल्ली पर आक्रमण किया परन्तु कैथल के निकट बहराम द्वारा पराजित होने के पश्चात् दोनों को मार डाला गया।[2]

गोस्वामी जी ने इन ऐतिहासिक तथ्यों को कुछ परिवर्तित रूप मे उपन्यास मे वर्णित किया है। सरदारों द्वारा विद्रोह किए जाने के पश्चात् रजिया उनके द्वारा कैद नही की जाती, प्रत्युत वह पंडित हरिहर शर्मा के मदिर मे शरण लेने के पश्चात् भटिण्डा की ओर पलायन करती है तथा एक जौहरी के रूप में अलतूनिया को मिलती है (दूसरा भाग पृष्ठ 96-104)। वह उसके साथ शादी नहीं करती, प्रत्युत अलतूनिया की कमजोरी का अपने स्वार्थ तथा महत्वाकांक्षा के लिए एवं अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए प्रयोग करती है। याकूब भी मारा नहीं जाता, प्रत्युत बहराम का मुख्य वजीर बनाया जाता है।

इस प्रकार यहाँ इतिहास की घटनाएँ कतिपय परिवर्तित रूप मे उभर कर आई है। तिलस्म, ऐय्यारी तथा जासूसी के धुन्धलके में भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता उपन्यास को अधिक विश्वसनीय एवं ठोस कथा-भूमि प्रदान करती है।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में वर्णित लगभग समस्त घटनाएँ ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक है। पेशवा बालाजी बाजीराव के राज्य काल की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ अत्यन्त कलात्मक रूप से एक विशिष्ट इतिहास-दर्शन द्वारा अनुप्राणित होते हुए वर्णित की गई है।

निजाम को परास्त करके मंजारा नदी के किनारे पेशवा का पड़ाव तथा वहाँ पर उत्तर भारत मे दत्ताजी सेंधिया की पराजय का समाचार पहुँचना, इस पर सदाशिवराव भाऊ का यवनों के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करने को स्वीकार करना,[3] पूना में उत्साह तथा सेना की तैयारियाँ, पेशवा का दरबार[4] उसमें भाऊ को मुख्य सेनापति के रूप में नियुक्त करना व अन्यों को उसकी आज्ञा का पालन करने का आदेश देना आदि इतिहास-सम्मत घटनाएँ है। सेना प्रयाण, राजा सूरजमल का

1. "The Cambridge History of India" Vol. III, p 59-60.
2. वही, पृष्ठ 61-62.
3. पानीपत, प० बलदेव प्रसाद मिश्र, पेज 5-14.
4. वही, पेज 45-65.

मराठों के साथ आकर मिलना,[1] मराठो के आपसी मतभेद,[2] रघुनाथ राव द्वारा अटक तक मराठों के राज्य की स्थापना[3] परन्तु दुर्रानी, नजीब खाँ तथा नवाब शुजाऊद्दौला की एक लाख 40 हजार सेना के साथ दत्ताजी सेंधिया का भयानक युद्ध एव पराजय,[4] फिर मराठों की 'सिकन्दरे की पराजय',[5] भाऊ के नेतृत्व मे मराठा सेना द्वारा कुंजपुरा को जीतना,[6] दुर्रानी द्वारा विपरीत परिस्थितियों में यमुनापार किया जाना,[7] मराठों द्वारा दिल्ली पर जय पताका फहराना,[8] मराठों की सवारी, भाऊ द्वारा शाही तख्त का खण्डन किया जाना[9] आदि प्रमाणिक घटनाएँ है। इसी प्रकार युद्ध से पूर्व की भाऊ व दुर्रानी की किलेबदी का वर्णन, जनको जी का अपूर्व वीरत्व[10] तथा पानीपत की तीसरी लड़ाई का पहला प्रहर[11] एव 'प्रलय'[12] नामक परिच्छेदों में किया गया वर्णन इतिहास सम्मत है।[13]

मराठों के चरमोत्कर्ष और उनकी पानीपत में पराजय से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओ को मिश्रजी ने अत्यन्त कलात्मक ढग से अपने उपन्यास मे प्रस्तुत किया है।

ब्रजनन्दन सहाय के 'लालचीन' में, दक्षिण भारत के बहमनी राज्य के इतिहास की कतिपय घटनाओं के आधार पर उपन्यास की रचना की गई है। लेखक ने स्वय एक लम्बी पाद टिप्पणी[14] मे बहमनी साम्राज्य की उत्पत्ति का पूरा प्रसग दिया है और तीन अन्तिम सुलतानों के जीवन व इतिहास के आधार पर उपन्यास की रचना की है।[15]

1. पानीपत, प० बलदेव प्रसाद मिश्र, पेज 115-120.
2. वही, पेज 121-132.
3. वही, पेज 172.
4. वही, पेज 175-185.
5. वही, पेज 185-208.
6. वही, पेज 255-257.
7. वही, पेज 265-270.
8. वही, पेज 273-285.
9. वही, पेज 301-302.
10. वही, पेज 336-343.
11. वही, पृष्ठ 320-383.
12. वही, पृष्ठ 385-409.
13. देखिए, मराठो का इतिहास, जेम्स ग्राण्टडफ, अनुवादक कमलाकर तिवारी, इतिहास प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद, 1905, पृष्ठ 370-399 यहाँ मराठो के उत्कर्ष की चरम सीमा तथा पानीपत की तीसरी लड़ाई का मराठा राज्य पर बुरा प्रभाव परिच्छेदो मे 'पानीपत' की घटनाओ का वर्णन दिया गया है।
14. 'लालचीन'', ब्रजनन्दन सहाय, पृष्ठ 280-284.
15. ''लालचीन'' ब्रजनन्दन सहाय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 1978, पृष्ठ 284, ''इस उपन्यास मे अतिम तीन सुलतानो के जीवन का एक पृष्ठ वर्णित है। पाठको को ज्ञात होगा कि कभी-कभी सत्य घटना कल्पना से अधिक आश्चर्यजनक होती है।''

सुलतान गयासुद्दीन जब अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् शासन सँभालता है, तदन्तर प्रजा-हित के कई कार्य करता है, परन्तु अपने गुलाम लालचीन को कोई विशेष उन्नति प्रदान नहीं करता। लालचीन इससे रुष्ट होकर अपनी लड़की लुत्फुन्निसा पर सुलतान को मोहित करवा कर[1] उसे अपने चंगुल में फँसा लेता है। सुलतान जब लुत्फुन्निसा से मिलने लालचीन की दावत में जाता है, तो लालचीन उसकी आंखे निकाल कर[2] स्वयं सत्ता संभाल लेता है। परन्तु बाद में वह पराजित हो जाता है। अन्त में लुत्फुन्निसा का शमश से विवाह हो जाता है और गयासुद्दीन मक्का को प्रस्थान कर जाता है।

जयन्ती प्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान' तथा गंगाप्रसाद गुप्त के 'वीर पत्नी' में वर्णित अधिकांश घटनाएँ पृथ्वीराज रासो तथा पारम्परिक लोक साहित्य पर आधारित हैं। मुहम्मद गौरी के साथ पृथ्वीराज के युद्ध तथा अन्त में पृथ्वीराज का पतन ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक घटनाएँ हैं।

व्रजबिहारी सिंह के 'कोटारानी' नामक लघु उपन्यास का कथानक कल्हण की 'राजतरंगिणी' से लिया गया है। इस मत का स्वयं लेखक ने 'भूमिका' में स्पष्टीकरण कर दिया है।

हरिचरणसिंह चौहान ने अपने उपन्यास 'वीर नारायण' की घटनाओं की प्रामाणिकता के लिए 'निवेदन' मे टॉड कृत 'राजस्थान' को आधार के रूप मे स्वीकार किया है।

इस प्रकार प्रेमचन्द्रपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासो में प्रयुक्त ऐतिहासिक युगों की घटनाओं की प्रामाणिकता इस शताब्दी तक उपलब्ध इतिहास-पुस्तकों द्वारा सिद्ध होती है।

(IV) ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल (वातावरण)

ऐतिहासिक उपन्यास में देश तथा काल की स्थितियाँ अन्य कोटियों के उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है[3] क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यास में एक ऐसे

1. "लालचीन" ब्रज नन्दन सहाय, पेज 19-20.
2. वही, पेज 90-91.
3. "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग" डा० गोविन्दजी प्रसाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित) 1968, पेज 110, "यो तो देशकाल का उपयुक्त सामाजिक या सांस्कृतिक चित्रण सभी उपन्यासों के लिए आवश्यक है किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों का यह प्राण है, जिनका मुख्य ध्येय किसी विशिष्ट युग के जीवन के विविध रूपों के साथ ही साथ कथा-वस्तु एव चरित्रों के नाटकीय स्वत्वों का सयोजन करना होता है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाला लेखक उस काल के वातावरण से बँधा होता है। " ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखको की सब से बड़ी कुशलता देशकाल तथा ऐतिहासिक वातावरण के सजीव चित्रण में निहित होती है। सच तो यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासो मे ऐतिहासिक कथानक तथा पात्र उतने महत्त्वपूर्ण नही होते, जितना तत्कालीन युग, उस युग का रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, विचार-धारा एवं जीवन का आदर्श आदि।"

कालखण्ड का चित्रण एवं पुनः प्रस्तुतिकरण किया जाता है जिसका अब इस धरा पर कोई अस्तित्व नही रहा । अतीत के उस कालखण्ड को न तो लेखक ने और न ही पाठक ने कभी देखा अथवा अनुभव किया होता है । इस प्रकार के एक विशिष्ट कालखण्ड को औपन्यासिक कथा-भूमि का आधार बनाते समय लेखक को अत्यन्त सतर्क रहना पड़ता है । बहुत से विद्वानों का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यास का निर्माण अपेक्षाकृत कठिन एव जटिल कार्य होता है ।

इस विशिष्ट कालखण्ड में घटित होने वाली घटनाएँ एक निश्चित देश मे घटती है । यद्यपि भूमि एवं स्थान लगभग एक ही प्रकार के रहते है, प्रकृति एवं मौसम सनातन है, फिर भी मानव निर्मित किलों, महलों, बावलियों, नगरों, बाजारों आदि की स्थिति बदलती रहती है, उनके स्वरूप मे परिवर्तन होता है । ऐतिहासिक कालखण्ड के पुनः प्रस्तुतिकरण के समय लेखक को इन सब बातो की ओर से सजग रहना होता है ।

(अ) **काल**—समय का प्रवाह निरन्तर होता है । यद्यपि विचारकों एवं दार्शनिकों ने भूत, वर्तमान एव भविष्य मे काल को बाँटने का प्रयत्न किया है, परन्तु यह केवल तार्किक कल्पना (हाइपोथीसिस) ही है ।[1] काल के निरन्तर प्रवाह को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न युगों एव काल-खण्डों मे विभक्त किया जाता है । लगभग स्वच्छन्दता पूर्वक किसी भी समय से युग का आरम्भ एवं अन्त माना जा सकता है । इस प्रकार प्रत्येक युग का एक आरम्भ एवं अन्त होना अनिवार्य है ।[2]

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने जीवन-दर्शन तथा रुचि के अनुरूप एक विशिष्ट कालखण्ड का चुनाव स्वच्छन्दतापूर्वक करता है और उपन्यास में उस युग के वातावरण को पुनः प्रस्तुत करता है ।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अधिकांशतः भारतीय मध्ययुगों को अपने उपन्यासों की कथा-भूमि के लिए चुना है और मुहम्मद गौरी के आक्रमण से दिल्ली के अतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह तक के काल-खण्ड की कलात्मक एव औपन्यासिक अभिव्यक्ति की है ।

1. ई० एच० कार के मतानुसार, 'इतिहास, मे काल-विभाजन का विवाद इसी प्रकार की समस्या है । इतिहास का कालो मे विभाजन एक तथ्य नही है, प्रत्युत एक अनिवार्य तार्किक कल्पना अथवा वैचारिक उपकरण (Tool of thought) है । "What is History" Page. 60.
2. "The Notion of a period of history is not merely useful for examination purposes : periodisation is an essential part of historical work And while the begining and end of an historical period must always be fixed in a more or less arbitrary manner, it remains true that every period must have a begining and end" W. H. Walsh "Meaning in History" "Theories of History." Page-302.

/

काल की स्थितियाँ—काल को सामान्यतः चार स्थितियों में विभाजित किया जाता है—आदिम युग, अतीत युग, वर्तमान युग तथा भविष्यकाल। आदिम युग उपन्यासों में प्रागैतिहासिक काल खण्डों के रूप में चित्रित किया जाता है। इसमें मिथक एवं आदिम प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक अतीत के युग ऐतिहासिक उपन्यासों में पुनः प्रस्तुत किए जाते है। इनके निर्माण की प्रक्रिया में इतिहास-परक कल्पनाएँ, निजंधर कथाएँ तथा घटनाओं की पुनर्व्याख्याएँ मुख्य रूप से उभर कर आती हैं। वर्तमान युग, आधुनिक एवं लेखक के समसामयिक अनुभवों का प्रतिनिधित्व करता है। ये समस्याएँ ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित युग के भविष्य के रूप में उठती हैं। वे परम्परा एवं रूढ़ि रूप में वर्तमान तक चली आती हैं जैसे विवाह-संस्कार आदि। भविष्यकाल सदैव साहित्यकार के मानस में निर्मित एक यूतोपिया के रूप में उभरता है, जिसमें वह अपने विशिष्ट जीवन-दर्शन के अनुरूप आदर्श समाधानों की परिकल्पना करता है। यूतोपिया की परिकल्पनाएँ ऐतिहासिक उपन्यासों में विपर्यास प्रक्षेपण (Reversal Projection) द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे काल के यह सभी पक्ष ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

अतीत एवं ऐतिहासिक युग का समाज, अन्यान्य कलाएँ, परम्पराएँ तथा वेशभूषाएँ ऐतिहासिक युग के काल की विशिष्टताओं को स्पष्ट करती है।

(i) ऐतिहासिक यथार्थवाद—ऐतिहासिक उपन्यासो मे वर्णित अतीत के युगों में वर्तमान के आरोपण को ऐतिहासिक यथार्थ कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार—"हमारी भाषा मे तो वस्तुत. ऐतिहासिक उपन्यास भी बहुत कम ही है और उनमें भी ऐतिहासिक यथार्थवाद की कसौटी पर उतरने वाले और भी कम है।"[1]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो में भी ऐतिहासिक यथार्थवाद आंशिक रूप से ही उभर सका है। लेखक के युग मे उपलब्ध इतिहास-ज्ञान तथा उसी के युग के मुख्य विचार एव धारणाएँ ही अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण एव पुर्नव्याख्या को नियोजित करते है। व्रजनन्दन सहाय के 'लालचीन', तथा प० किशोरीलाल गोस्वामी के 'रजिया वेगम' में ऐतिहासिक यथार्थवाद का उत्तम रूप उभर कर आया है।

'लालचीन' में गुलाम लालचीन तथा 'रजिया वेगम' में याकूब एवं अयूब द्वारा की गई गुलामी के अन्यान्य पक्षों की विवेचना लगभग लेखक के युग की धारणाओं का प्रतिनिधित्व[2] करती है। यह ऐतिहासिक यथार्थवाद का उत्तम उदाहरण है।

(ii) आदर्श हिन्दू राज्य की प्राचीन धारणा का मध्य युगों में प्रक्षेपण—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में, यद्यपि मुस्लिम भारत में हिन्दू समाज, धर्म एवं

1. 'ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप', पेज 21.
2. लेखक के युग का ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रतिबिंबन तथा ऐतिहासिक यथार्थवाद का इसी अध्याय के अगले खण्ड में विस्तार से वर्णन किया जाएगा।

संस्कृति के अस्तित्व के लिए संघर्ष को ही औपन्यासिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है तथापि लेखकों के मानस में जोआदर्श हिन्दू राज्य की धारणा थी और जो उनकी धार्मिक आकाँक्षाओं एवं चेतना के अनुरूप थी, उनका अतीत के युगों में विपर्यास प्रक्षेपण भी किया गया है। यह साहित्यकार के युतोपिया की परिकल्पना के सिद्धान्त के अनुरूप है।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू लाल जी सिंह, अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह, युगलकिशोर नारायण सिंह, सिद्धनाथसिंह, गंगाप्रसाद गुप्त एवं जयरामदास गुप्त ने आदर्श हिन्दू सनातन-धर्मपरक विचारधाराओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है।

मिश्र जी के 'पानीपत' में मराठों द्वारा समस्त भारत एवं 'रूम से शाम' तक हिन्दू राष्ट्र की स्थापना, गोस्वामी जी के 'तारा' तथा 'रजिया बेगम' में आदर्श हिन्दू राजपूत अमरसिंह, राजसिंह एवं चन्द्रावत जी, राजपूत कन्या तारा तथा आदर्श ब्राह्मण के रूप में पंडित हरिहर शर्मा उनके आदर्शों का अतीत मे प्रतिबिंबन करते है। कृष्ण प्रकाश तथा सिद्धनाथ अपने 'वीर चूड़ामणि' तथा 'प्रणपालन' में अपने परिकाल्पनिक आदर्शों को वर्णित करते हैं। लालजीसिंह तथा युगल किशोर ने 'वीरबाला' तथा 'राजपूतरमणी' में अपने आदर्शों के राजपूत राज्य तथा त्यागपूर्ण पात्रों को अतीत में वर्णित किया है। गंगाप्रसाद गुप्त ने 'हम्मीर'[1] के माध्यम से अपने जन्मभूमि-प्रेम को अतीत में प्रक्षेपित किया है। जयरामदास गुप्त, 'काश्मीर पतन' में खालसा सेना के आर्य वीरों द्वारा काश्मीरी ब्राह्मणों के उद्धार के माध्यम से अपनी युतोपिया-परक परिकल्पनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

इस प्रकार भविष्य के सम्बन्ध में विवेच्य उपन्यासकारों की युतोपिया-परक परिकल्पनाएँ अतीत भारत के कालखण्डों में अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त की गई है।

भारतीय मध्य युगों के पुनः प्रस्तुतिकरण का अध्ययन उस युग के चित्रणों एवं विवरणों के माध्यम से किया गया है।

(iii) **देशकाल के नियामक तत्त्व**—एक सुनिश्चित स्थान (देश) एवं विशिष्ट समय (काल) का चित्रण करते समय कई तत्त्व उसे नियोजित करते हैं जैसे पात्रों की वेशभूषा, ऐतिहासिक युग की मूर्तियाँ, सिक्के, भित्ति-चित्र, शिलालेख, वास्तुअवशेष-किलों, महलों, बावली आदि के खण्डहर। यह सामग्री देशकाल के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। यदि इन नियामक तत्त्वों को भलीभाँति निभाया जाए, तो चित्रण रोचक एवं सजीव होने के साथ-साथ विश्वसनीय एवं प्रामाणिक भी हो जाएगा।

1. हम्मीर, पेज 25, जब शत्रुता होने पर भी हम्मीर ने मालदेव की पुत्री के विवाह के निमंत्रण को स्वीकार किया, तो—"केवल इसी आशा पर कि वे इसी बहाने से अपने पूर्व पुरुषों के निवास स्थान चित्तौर को एक बार देख सकेंगे। जिस चित्तौर पुरी में उनके पूर्व पुरुषलोग आनन्दपूर्वक फिरा करते थे, जिस चित्तौर पुरी में स्वाधीनता, शांति और आनन्द का पूरा-पूरा राज्य था, उसी चित्तौर पुरी को इस बहाने से एक बार वे देख सकेंगे।"

एक विशिष्ट ऐतिहासिक युग में प्रयुक्त किए जाने वाले शब्द भी देशकाल के चित्रण में उपयोगी सिद्ध होते हैं। यथा हुजूर, आशीर्वाद्, जहाँपनाह, आलमगीर, साहब, मालिक आदि।

(क) **वस्त्रभूषण**—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में वेषभूषा[1] तथा पात्रों का आचार-व्यवहार बहुत सीमा तक ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल किया गया है।

'पानीपत' में दिल्ली विजय के पश्चात् जब मराठा सेना की सवारी निकाली गई उस समय मुख्य सेनापति भाऊ[2] तथा कुमार विश्वासराव[3] की वेषभूषा के वर्णन द्वारा पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र ने उस युग को अत्यन्त सजीव रूप से पुनः प्रस्तुत किया है।

बाबू युगलकिशोर नारायण सिंह ने 'राजपूत रमणी' में मेवाड़ के महाराणा के वस्त्राभूषण का सजीव चित्रण किया है।[4] ज्वौरी कृष्ण प्रकाश सिंह ने 'चूड़ामणि'

में मेवाड़ राज्य के एक पदाधिकारी कृष्णसिंह के ललाट पर त्रिपुण्ड लगाने का[1] वर्णन किया है।

राम जीवन नागर ने 'जगदेव परमार' में जगदेव के वस्त्राभूषणों का सजीव चित्रण किया है। गौड़ देश के दिवान और राजगुरु राजा उदयादित्य के बाग में कुमार को इस रूप में देखते है, 'सवार की अवस्था लगभग 15 वर्ष की होगी, रंग कुछ साँवला, परन्तु देखने में चित्ताकर्षक, शिर पर जिसके गुलाबी राजपूतों की सी पगड़ी, लम्बा अंगरखा, रेशमी किनारे की धोती, कमर बन्धी हुई, एक ओर तलवार और दूसरी ओर कटार, हाथ मे भाला, कन्धे पर तीरों का कमठ और दूसरे हाथ मे चाबुक लिए अच्छे अरबी घोड़े पर आते हुए सवार को देख कर दोनों उसकी ओर देखने लगे।'[2]

विवेच्य उपन्यासों में नारियों की वेशभूषा एवं शृंगार का वर्णन भी किया गया है। मुन्शी देवी प्रसाद के 'रूठी रानी' में उमादे की, 'सखियाँ उसे दुल्हन बना रही है, कोई उसके हाथ-पाँव में मेंहदी लगाती है कोई मोतियों मे माँग भरती है कोई चोटी में फूल गूँथती है कोई दर्पण दिखा कर कहती है वाह अच्छी बनी है।"[3]

इसी प्रकार पं० किशोरी लाल गोस्वामी ने रज़िया के पुरुषोचित वस्त्रों का वर्णन किया है, "दर्बार के सिरे पर एक सोने के चबूतरे के ऊपर जड़ाऊ सिंहासन बिछा है और बादशाहों की तरह कबर और ताज पहिन कर सुलताना रजिया बेगम उस तख्त पर पुरुषोचित दर्प से विराजमान है।"[4]

एक ऐतिहासिक युग के पात्रों की वेशभूषा के वर्णन द्वारा विवेच्य उपन्यासकारों ने अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण के सफल प्रयास किए है।

(ख) **पात्रों का आचार, व्यवहार एवं शिष्टाचार**—देशकाल के चित्रण में पात्रों, के आचार, व्यवहार एवं शिष्टाचार के सम्बन्ध में सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। पाठकों के रसबोध के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है........ "छोटी-छोटी बातों में भी उसे सावधान रहना पड़ता है। सामान्य संबोधन शिष्टाचार के लिए प्रयुक्त शब्द और तत्कालीन अन्धविश्वासों के विरुद्ध प्रयोग किए जाने वाले वाक्यांश भी रस-बोध में बाधक हो जाते है। ऐतिहासिक उपन्यास के आलोचक को भी बहुत सावधानी बरतनी पडती है। जिस काल का उपन्यास लिखा जाता है, उसकी रीति-नीति, आचार-विचार, वस्त्र-आभूषण, राह-घाट, साज-सज्जा सबके प्रति उसकी दृष्टि सजग होनी चाहिए।"[5]

1. "वीर चूड़ा मणि", पेज 7.
2. "जगदेव परमार." पेज 24.
3. "रूठी रानी", पेज 3.
4. "रजिया बेगम," पहला भाग, पेज 7.
5. 'ऐतिहासिक उपन्यास क्या है ?' (पेज 17-18)

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने पात्रों के शिष्टाचार का वर्णन बहुत सीमा तक उनके युग की परिस्थितियों के अनुरूप ही किया है। परन्तु कहीं-कहीं लेखक के युग के शिष्टाचार भी अनैतिहासिक रूप से अतीत मे प्रक्षेपित हुए है।[1]

पात्रों के आचार-व्यवहार के वर्णन द्वारा 'पानीपत' में मराठा युग के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में मिश्र जी को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। समस्त उपन्यास उसके पात्र, उनका आचार-व्यवहार, उनकी धारणाएँ, उनके विश्वास अत्यन्त सजीव रूप में चित्रित किए गए है।

स्वामि-भक्ति, कर्त्तव्य-पालन तथा शौर्य-भावना के सम्बन्ध में इस अध्याय के पिछले खण्ड में अध्ययन किया जा चुका है।

"पानीपत" के 'दरबार' नामक परिच्छेद मे दरबारी संस्कृति, सामन्ती समाज एवं राजनीति तथा पेशवा सरकार के प्रति मुख्य सामन्तों की स्वामि-भक्ति को सजीव रूप से चित्रित किया गया है। पेशवा बाला जी बाजीराव के अन्तःपुर का चित्रण (पृष्ठ 45-51) पेशवा की पत्नी गोपिका बाई का राजनीतिक मामलों में परामर्श देना, दरबार में मुख्य-मुख्य दरबारियों के नाम तथा उनके बैठने के स्थान का वर्णन (पृष्ठ 53), पेशवा का व्याख्यान, सदाशिव राव भाऊ को मराठा सेना का मुख्य सेनापति बनाया जाना तथा अन्य सेनापतियों को मुख्य सेनापति के प्रति प्रतिबद्ध रहने के लिए प्रेरणा देना, दामा जी गायकवाड़ द्वारा पेशवा का अभिनन्दन तथा पेशवा द्वारा उन्हें गुजरात की स्वतन्त्रता प्रदान करने का वचन देना, पेशवा द्वारा सामंतों एवं सेनापतियों को विदाई का मान देना (पृष्ठ 53-64) आदि का चित्रण पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अपने युग की विशिष्ट परिस्थितियों से प्राप्त करने के सिद्धान्त को परिपुष्ट करता है।

'पानीपत' मे पं० बलदेव प्रसाद मिश्र एक पूरे युग को सजीव रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने 'तारा' तथा 'रजिया बेगम' उपन्यासों मे पात्रों के शिष्टाचार का चित्रण उनके युग के अनुरूप किया है।

'तारा' के पहले भाग के पहले एव दूसरे परिच्छेद मे जहानआरा का दारा और तारा के साथ आचार-व्यवहार तद्युगीन मुगल संस्कृति के अनुकूल है (पृष्ठ 3-23)। इसी प्रकार दारा और सलावत खाँ (पृष्ठ 32-34) तथा सलावत खाँ, और नरुलहक (पृष्ठ 35-38) का शिष्टाचार भी युगानुरूप है। शाहजहान् और जहानआरा (पृष्ठ 96-103) का शिष्टाचार एवं वार्तालाप ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार उपन्यास के तीसरे भाग में राजसिंह और चन्द्रावत जी (पृष्ठ 22-34) का आपस में मित्रता होने पर भी व्यवहार अत्यन्त औपचारिक

1. जार्ज लयूकाक्स के मतानुसार—17वी शताब्दी के तथाकथित ऐतिहासिक-उपन्यास केवल वाह्यरुचि तथा बनावट मे ही ऐतिहासिक हैं। न केवल पात्रों का मनोविज्ञान प्रत्युत उनका शिष्टाचार भी लेखक के युग का है "The Historical Novel" Page 19.

स्तर पर चित्रित किया गया है। तारा के उद्धार की समस्या पर जब राजसिंह चन्द्रावत जी से परामर्श करते है, तो चन्द्रावत जी कहते हैं,—'मानवीय, युवराज। आपकी बातों से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि राजकुमारी जी के उद्धार का कोई सुगम उपाय आपने अवश्य सोच लिया है। फिर आप बुद्धिमान हैं और सब भांति अपने कुल की रीति-भांति को जानते है।'[1]

इसी प्रकार 'रजिया बेगम' में भी मुसलमानी सल्तनत एवं दरबारी संस्कृति के शिष्टाचार को सजीव रूप से प्रस्तुत किया गया है,—"एक बाँदी ने शाहाना आदाब बजा लाकर अर्ज किया कि,—जहाँपनाह। वजीर आजम दरे दौलत पर हाजिर है और हुजूर की कदमबोसी हासिल किया चाहता है।"[2]

याकूब जो कि एक गुलाम था जब रजिया की सहेली सौसन के साथ प्रेम-पाश में बंध जाता है और सौसन उसके साथ बराबरी का व्यवहार करती है, तो याकूब कहता है—"हजरत! एक अपने गुलाम के साथ आपको इस तरह की गुफतगू न करनी चाहिए।"

सौसन,—"लाहौल वलाकूवत, साहब! खुदा के वास्ते ऐसा बदकलमा जुबाने शीरी मे न निकालिए। आखिर मैं भी तो सुल्ताना की एक अदनी लौंडी ही हूँ।"[3]

इसी प्रकार रजिया की लौंडी जौहिरा उसे कहती है,—"अय! हुजूर! मैं सदके, मैं कुर्बान। अय! तौबः! सर्कार की बलाए लूं। मेरी सरकार के दुश्मनों का चेहरा आज इस कदर गमगीन क्यों नजर आता है? हुजूर मेरे तनोबदन के खून का हर एक कतरा इसी आर्जू मे है कि वह अपने तईं हुजूर की खिदमत में क्यों कर सर्फ होकर खुशी-खुशी बिहिश्त हासिल करे।"[4]

(ग) भित्ति-चित्र एवं महलों के अवशेष—ऐतिहासिक युग के भित्ति-चित्र, किलों, महलों आदि के अवशेष अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण में सहायक होते है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार इस प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग दो प्रकार से करते है.......ऐतिहासिक युग की स्थिति को पाद-टिप्पणी में दे कर अथवा स्पष्ट रूप से चित्रण द्वारा।

जयराम दास गुप्त ने अपने 'काश्मीर पतन' में पहली पद्धति को अपनाया है। चौदहवे परिच्छेद मे आवडिल झील का वर्णन करते हुए लेखक ने झील मे 'रूप लका' नामक एक जमीनी टुकड़े का वर्णन किया है पाद-टिप्पणी में अपने कथन का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है,—"सन् 1835 ई० एक फ्रांसीसी यात्री ने काश्मीर

1. "तारा", भाग तीन, पेज 30.
2. "रजिया बेगम", भाग 1 पेज 31.
3. वही, पेज 61.
4. "रजिया बेगम", पेज 92. (भाग 1)

का भ्रमण करते हुए जब इस स्थान को देखा था तो वहाँ पर एक छोटे से मंदिर के देखने का बयान करता है। यद्यपि इस समय उसका कोई निशान नहीं है।"[1]

महलों, नगरों, किलों एवं बाजारों आदि का वर्णन भी किया गया है, जिसका अध्ययन अन्यत्र (भूचित्र शीर्षक के अन्तर्गत) किया गया है।

(घ) **शासकों की उपाधियाँ एवं संबोधन**—राजाओं एवं शासकों की उपाधियों एवं विशेषताओं के आधार पर उन्हें जिन विशेषणों से आभूषित किया जाता था उन शब्दों के प्रयोग द्वारा भी अतीत के वातावरण को प्रभावशाली ढंग से उभारने में सहायता प्राप्त होती है।

श्यामलाल गुप्त के उपन्यास 'रानी दुर्गावती' में अकबर को इस प्रकार संबोधित किया गया है—"जहाँपनाह! शाहजहाँ आलमगीर जनाब इकरामुद्दौला अकबर नाम इकबाल आलीजाह बहादुर शाहंशाह हिन्दुस्तान जहाँपनाह।"[2]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी मेवाड़ के युवराज राजसिंह को भुवनेश्वर मिश्र द्वारा यह कहलाते हैं—"मेवाड़-कुलकेशरी वीर-चक्र-चूड़ामणि श्री महाराणा जगतसिंह जी के आदरणीय पुत्र युवराज राजसिंह।"[3]

युवराज से मेवाड़ के महाराणा बन जाने के पश्चात् बाबू युगलकिशोर ने "राजपूत रमणी" में उन्हें 'कुलभूषण' (पृष्ठ 30) तथा 'हिन्दूपति' 'सूर्यकुल भूषण' कहा है।[4]

बाबू सिद्धनाथ सिंह ने "प्रणपालन" में चूड़ामणि को 'क्षत्रियकुल कमल दिवाकर' (पृष्ठ 9) कहा है।

जयराम दास गुप्त 'काश्मीर पतन' के सोहलवें परिच्छेद 'दरबार पंजाब' में महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में आते समय उच्चारित किए गए शब्दों[5] तथा काश्मीर के पंडित बीरबर द्वारा महाराजा रणजीतसिंह को किए गए सम्बोधन[6] ने प्रयुक्त किए गए शब्दों द्वारा अतीत के वातावरण को सजीव ढंग से पुनः प्रस्तुत करते हैं।

1. "काश्मीर पतन", पेज 76-77.
2. "रानी दुर्गावती", श्यामलाल गुप्त, पेज 4.
3. "तारा" तीसरा भाग, पेज 6.
4. "राजपूत रमणी", पेज 34.
5. "फतह! फतह! महाराजा साहब की फतह!!! खालसा जी की फतह श्रीवाहगुरु जी का खालसा, श्री वाहगुरु जी की फतह!!" पेज 85, "काश्मीर पतन"
6. वही, पेज 88.
   "प्रजा वत्सल! जुग जिओ, अन्नदाता! आज श्रीमान् के पुनीत चरणकमलों में मैं इस निमित्त से उपस्थित हुआ हूँ।"

(ब) देश

(i) स्थूल प्रकृति—ऐतिहासिक उपन्यास में जिन घटनाओं का वर्णन किया जाता है वे एक सुनिश्चित स्थान पर घटित होती है। देश अथवा स्थान का वर्णन कई प्रकार से किया जाता है। प्रकृति-चित्रण सस्कृत एवं हिन्दी के महाकाव्यों के समान ऐतिहासिक उपन्यासों में भी किया गया है।

मूल प्रकृति शाश्वत होती है, वह प्रत्येक युग में लगभग एक-सी रहती है। ऋतुएँ, पशु-पक्षी, नदियाँ, फूल, समीर, वनस्पति, रवि-शशि आदि सभी कालों मे उपलब्ध होते है। इसलिए इनमे केवल देश-तत्त्व होता है काल-तत्त्व नहीं।

विवेच्च ऐतिहासिक उपन्यासों में सामान्यत: पारम्परिक ढंग से प्रकृति-चित्रण किया गया है। प्रकृति के शान्त एव सौम्य रूप के साथ-साथ उसके भयकर एवं रौद्र रूप का भी चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त पारपरिक ढग के प्रकृति-चित्रण मे उसके उद्दीपन रूप को भी उभारा गया है।[1]

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' तथा 'रजिया वेगम' मे प्रकृति-चित्रण के माध्यम से अतीत के एक विशिष्ट काल-खण्ड के वातावरण को पुन: प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। 'तारा' के तीसरे भाग के आरम्भ मे पर्वतीय मार्गो की कठिनाइयों की पृष्ठ-भूमि मे प्रकृति का चित्रण किया गया है।[2] इस भाग के काल-रात्रि[3] नामक परिच्छेद मे प्रकृति का चित्रण पात्रो के मनोविज्ञान तथा स्थिति की जटिलता एव भयावहता, के अनुरूप किया गया हे।

'रजिया वेगम' मे प्रकृति सामान्यत: उद्दीपन रूप मे उभारी गई ह। पहले भाग के गुलामी[4] नामक परिच्छेद में अन्यान्य पक्षियों तथा शरद् ऋतु का सजीव चित्रण किया गया है। 'इश्क या फजीहत'[5] नामक परिच्छेद मे भी शरद् ऋतु का चित्रण विशिष्ट वातावरण के निर्माण के हेतु किया गया हे। रजिया के शाही बाग[6] का विवरण भी प्रकृति की उस अनिवार्य पृष्ठभूमि का निर्माण करता है जिसके सम्मुख विलास की मध्ययुगीन एव सामंती क्रीड़ाएँ की जाती थी। 'इश्क ह इश्क'!![7] नामक परिच्छेद मे भी प्रकृति का कामपरक चित्रण किया गया हे।

'रजिया वेगम' के दूसरे भाग के 'कुछ जलन मिटी'[8]....नामक परिच्छेद मे

1. 'रीतिकालीन सौन्दर्य एव प्रकृति-चित्रण', शीर्षक के अन्तर्गत तीसरे अध्याय मे पारम्परिक प्रकृति-चित्रण का अध्ययन किया जा चुका है।
2. "तारा", तीसरा भाग, पृष्ठ 1.
3. वही, पृष्ठ 59-64.
4. "रजिया वेगम", पहला भाग, पृष्ठ 21-26.
5. वही, पृष्ठ 90-98.
6. वही, पृष्ठ 22.
7. वही, पृष्ठ 99.
8. वही, पृष्ठ 81.

मनोविज्ञान तथा प्रकृति का कलात्मक सम्मिलन किया गया है। मानवीय भावनाओं एवं भावावेगों के साथ प्रकृति का यह सम्बन्ध गोस्वामी जी की वातावरण-निर्माण कला का प्रमाण है।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में 'मंजारा नदी का किनारा'[1] में मंजारा नदी का विस्तृत एवं काव्यपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'शयनगृह' नामक परिच्छेद में रात्रि का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। 'सलीमगढ़ में मल्लिका जमानिया' नामक परिच्छेद में सूर्यास्त का कलात्मक चित्रण किया गया है। अहमदशाह दुर्रानी द्वारा यमुना पार करते समय की प्रकृति का चित्रण एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना के वातावरण के निर्माण में कलात्मक रूप से सहायक सिद्ध हुआ है।[2]

बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह के "राजपूत रमणी" में वसंत ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव चित्रण किया गया है।[3] इसी प्रकार सातवें परिच्छेद के आरंभ में सैनिक तैयारियों की पृष्ठभूमि में प्रभात का चित्रण किया गया है।[3अ]

बाबू लालजी सिंह के 'वीरबाला' में प्रकृति का अत्यन्त प्रांजल भाषा में चित्रण किया गया है।[4] यहाँ पर प्रकृति रीतिकालीन ढंग से मानवीय मनोभावों की पृष्ठभूमि के रूप में उभरी है।

अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह के 'वीर चूड़ामणि' में रीतिकालीन पद्धति से प्रकृति-चित्रण किया गया है।[5]

जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर पतन' में डल झील के रात्रि के समय के सौन्दर्य तथा चान्द की प्राकृतिक सुषमा का सजीव चित्रण किया गया है।[6] इसी प्रकार राजकुमारी जैनब का डलझील के किनारे मानसिक उधेड़-बुन करने का चित्रण कलात्मक बन पड़ा है। इसी उपन्यास के झेलम नद का जन्म स्थान[7] नामक परिच्छेद में झेलम के स्रोत के भौगोलिक वर्णन के साथ-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को भी चित्रित किया गया है।[8]

गंगाप्रसाद गुप्त के 'पूना में हलचल' नामक उपन्यास में राजगढ़ के किले तथा खाई का भौगोलिक वर्णन प्रकृति के चित्रण से जुड़ा हुआ है।[9]

1. "पानीपत", पृष्ठ 1–14.
2. वही, पृष्ठ 265.
3. "राजपूत रमणी", पृष्ट 2.
3.(अ) वही, पृष्ठ 48.
4. "वीरबाला', पृष्ठ, 1. 12, 29.
5. "वीर चूड़ामणि", पृष्ठ 92.
6. "कश्मीर पतन", पृष्ठ 8.
7. वही, पृष्ठ 136-140.
8. वही, पृष्ठ 140.
9. "पूना मे हलचल", पृष्ठ 1.

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रकृति के भयंकर स्वरूप का भी चित्रण किया गया है।

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह के "वीर चूड़ामणि" में भयंकर प्रकृति-चित्रण उल्लेखनीय है—चित्तौड़ के पहाड़ी स्थानों मे, वर्षा काल के समय, प्रकृति भयंकर रूप धारण करती है।......पर्वत श्रेणी और अनन्त वन निविड़ अन्धकार से आच्छादित हो रहे हैं। पर्वत, वन, मैदान, तराई, दरीये, आकाश और वृक्षों में शब्द मात्र नही, मानो जगत्, शीघ्र ही प्रचण्ड पतन आता हुआ जान, भय से व्याकुल हो गया है।....थोड़े ही विलम्ब में, भयानक आंधी चलनी आरम्भ हुई। आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक दामिनी दमकने लगी और मेघ का गर्जन अनन्त मैदान में शतशत बार शब्दायमान होने लगा। इस समय करोड़ों राक्षसों के वल की निन्दा करने वाला पवन भीषण गर्जन करता हुआ चलने लगा, मानो अनन्त पर्वतों को जड़ से कंपाने लगा।[1] इस प्रकार प्रकृति मानवीय अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण रूप से उभरी है। मानवीय भावों का प्रकृति में प्रतिविम्बन तथा प्रकृति का मानवीय भावों पर प्रभाव इस चित्रण की निरन्तर एवं पारस्परिक प्रक्रिया है। विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में स्थान अथवा देश के वातावरण-निर्माण में प्रकृति के वर्णनों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(ii) भू-चित्र (Landscape)—भूचित्रों में प्रकृति के अतिरिक्त मानव-निर्मित नगर, किले, महल, बाजार, खेत, बावलियां आदि वर्णन के केन्द्र विन्दु होते है। ये मूल रूप से ऐतिहासिक मानव से एवं उसके कृतित्व से सम्बद्ध होते है।

युद्ध-क्षेत्र, युद्ध करने की कला, भिन्न प्रकार की किलेबाजी, हथियारों का वर्णन कालानुरूप किया जाना चाहिए क्योंकि वे समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं।

रामजीवन नागर ने जगदेव परमार मे, गुजरात देशांतर्गत पाटन नगर के विशाल सहस्रलिंग तालाब (पृष्ठ 85) तथा पाटन नगर का चित्रण इस प्रकार किया है,—'पाटन की शोभा देखने ही योग्य थी। बाजार के बीच में होकर पक्की सड़क गई थी। दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे मकान और दुकाने थी। नगर की बस्ती सघन, मकान कुशादा और हवादार, रंग-बिरंग के रंगों से रंगे हुए थे। मनुष्य स्वच्छ और सुन्दर तथा प्रसन्न मुख थे। बाजार में दुकाने बड़ी क्रम पूर्वक लगी हुई थी, ऊँची-ऊँची गद्दियों पर बैठे हुए बड़े-बड़े थोंद वाले सेठ साहूकार लोग रुपयों के तोड़े खनखना रहे थे, बजाजों की दुकानें मनोहर रंगों के सूती और रेशमी कपड़ों से सजी हुई थीं, सोनारों के हथौड़े और दरजियों की सुई बड़ी तेजी से चल रही थी, पान वाले स्वच्छ पात्रों में कत्था, चूना आदि सजाकर शौकीनों की बाट देख रहे थे। इसी तरह सब लोग अपने-अपने धन्धों में लगे हुए थे।[2]"

1. "वीर चूड़ामणि", पृष्ठ 1-4.
2. "जगदेव परमार", पृष्ठ 96-97.

यद्यपि बारहवीं शताब्दी में नगर के भीतर पक्की सड़कें नहीं भी हो सकती तथापि नागर जी नगर के वर्णन द्वारा अतीत के वातावरण को सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर पाए हैं।

प० किशोरलाल गोस्वामी ने 'रजिया बेगम' में रजिया के राजप्रासाद तथा दरबारे आम का वर्णन इस प्रकार किया है,—'आज राज प्रासाद ने कैसी अपूर्व श्री धारण की है। आज असंख्य दीप-मालिकाओ से शाही कोट जगमगा रहा है, प्रकाश इतना अधिक है कि वहाँ पहुँच कर लोगों को दिन का भ्रम होता है और राजलक्ष्मी की अलौकिक सभा सामने क्रीड़ा करती हुई प्रत्यक्ष दिखलाई देती है।.... बड़े भारी आलीशान दालान मे 'दर्बारे आम' सजाया गया है,....हजारों सोने चांदी के और जड़ाऊ झाड़ लटक रहे हैं, जिनमे बिल्लौरी फानूस और घड़ियों में काफूरी वत्तियाँ जल रही है।"[1]

"वीर चूड़ामणि" के लेखक ने इस उपन्यास मे चित्तौड के निकट की पर्वतीय शोभा का सजीव वर्णन किया है। इस भू-चित्र के माध्यम से मातृभूमि-प्रेम तथा आंचलिकता की प्रवृत्ति उभर कर सामने आई है। भू-चित्र इस प्रकार है—"आह्। क्या अनुपम शोभा है। पहाड़ों पर पहाड़, जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है, दो तीन हजार ऊँचे शिखर बराबर दिखाई देते है, उस पर्वत श्रेणी के पार्श्व में चारों ओर नहाए हरे रग के अनन्त वृक्ष सूर्य के प्रकाश से अनन्त शोभा धारण कर रहे है—बीच मे झरने सौ गुणों मे बढ कर एक शृंग मे दूसरे शृंग तक नृत्य कर रहे है।"[2]

इस प्रकार स्थानो, नगरो एव भू-चित्रो के वर्णन एव चित्रण के माध्यम से अतीत युगीन वातावरण का निर्माण किया गया।

(iii) लोक-तत्त्व—लोक-तत्त्वो का मानवीय अतीत के पुन: प्रस्तुतिकरण, पुनर्व्याख्या एव पुनर्निर्माण की प्रक्रिया मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोक-जीवन एव लोक-सस्कृति देश के चित्रण मे रग भरने एव चरित्र उभारने के कार्य में अत्यन्त सहायक होते है। इसी प्रकार लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक प्रथाएँ, लोक भाषा, लोक भूमि, (जन्म भूमि प्रेम) आदि के प्रयोग द्वारा इतिहास के कंकाल में जीवन भरा जाता है। अन्यान्य परपराएँ, प्रथाएँ, धारणाएँ, विश्वास, त्यौहार, पर्व, उत्सव एवं आन्दोलन आदि एक विशिष्ट कालखण्ड के जीवन के पुन: प्रस्तुतिकरण को सजीव बनाने के साथ-साथ अधिक रोचक एवं विश्वसनीय भी बनाते है, क्योंकि इन परम्पराओ एवं प्रथाओ के अवशेष वर्तमान मे उपलब्ध होते हैं।

मुशी देवीप्रसाद के "रूठी रानी" नामक उपन्यास मे लोक-तत्त्वो का प्रचुर मात्रा मे समावेश किया गया है। जैसलमेर की राजकुमारी उमा को शादी की तैयारी का वातावरण (पृष्ठ 3) शादी के रीति-रिवाज तथा अग्नि के फेरे लगवाने के

1. "रजिया बेगम", पृष्ठ 7.
2. "वीर चूड़ामणि", पृष्ठ 5.

व्याख्यापूर्ण वर्णन में लोक-तत्त्व का प्रयोग किया गया है।[1] इसी प्रकार दारूड़ों शर्खांरो नामक लोकगीत का प्रयोग किया गया है। इसमें शराब पीने की अच्छाइयों और बुराइयों का वर्णन किया गया है।[2] ईश्वरदास बारहट नामक चारण जब रानी उमादे को राव जी के लिए मनाने को जाता है, तो उमादे के पारिवारिक इतिहास का वर्णन करके उसे मनाने की चेष्टा करता है।[3]

अन्त में राव मालदेव के देहान्त पर रानी उमादे सती होती है। रानी उमादे शादी की रात से लेकर अन्त तक रावजी से रूठी रहती है। सती होने के चित्रण द्वारा एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण किया गया है। यहाँ जन-संस्कृति तथा जन-परम्पराएं भी उल्लिखित की गई है। इस प्रकार इस उपन्यास में लोकगीत, लोक-कथाएँ तथा लोक-प्रथाएँ विशद् रूप से चित्रित की गई हैं।

गंगाप्रसाद गुप्त के "हम्मीर" में लोक-कथाओं तथा लोक-प्रथाओं के साथ-साथ लोक-भूमि अथवा जन्म-भूमि-प्रेम का अत्यन्त रागात्मक स्तर पर चित्रण किया गया है। हम्मीर के पिता अरुणसिंह अलाऊद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण के पश्चात् चित्तौड से पलायन कर गए थे और अब चित्तौड़ पर अलाऊद्दीन के कठपुतली मालदेव का शासन था। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में हम्मीर, मालदेव द्वारा अपनी पुत्री से शादी के लिए भेजा गया नारियल स्वीकार करता है।[4] उसके मन्त्री उसे ऐसा करने से रोकते है परन्तु चित्तौड को एक बार देखने की कामना अपने पूर्वजों की धरती के प्रति रागात्मक प्रेम के वशीभूत वह यह न्यौता स्वीकार करता है।[5]

चन्द्रशेखर के "भीमसिंह" में लोक-कथाओं, लोक-प्रथाओं, जन्म-भूमि प्रेम, परम्पराएँ, धारणाएँ, विश्वास, त्यौहार, पर्व एवं उत्सवों का सजीव चित्रण किया गया है।[6] यहाँ परम्पराएँ एवं विश्वास एक विशिष्ट वातावरण की उत्पत्ति करने के साथ-साथ भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओं की ओर संकेत देने के साथ-साथ उन्हे नियोजित भी करती हैं।

रामजीवन नागर के "जगदेव परमार" मे अन्यान्य लोक-तत्त्वों के साथ-साथ लोक-भाषा का भी प्रयोग किया गया है।[7]

(iv) भारतीय मध्ययुगों का सामन्ती जीवन–विवेच्य उपन्यासों में भारतीय मध्ययुगों के सामन्ती जीवन को पुनः प्रस्तुत एवं पुनः व्याख्यायित किया गया है। मध्य युगीन सामन्ती जीवन का विस्तृत एवं सहृदयता-पूर्ण चित्रण टाड ने राजस्थान

1. "रूठी रानी", पेज 8.
2. वही॰, पेज 13-15.
3. वही॰, पेज 24-27.
4. "हम्मीर" पेज 24-25.
5. "हम्मीर" पेज 26-27.
6. "भीमसिंह", पेज 15-16.
7. "जगदेव परमार, पेज 83, 121-123.

के इतिहास में किया था। राजपूतों की एक "राष्ट्र" के रूप में उद्भावना का टाड का अत्यन्त महत्वपूर्ण इतिहास विचार था।[1] मुसलमानों के घोर विरोध तथा अत्यन्त विकट परिस्थितियों में भी राजपूत समुदाय अधिकांशतः अपनी सामन्तवादिता एवं शूरता के कारण ही जीवित रहा।[2] टाड की इस ऐतिहासिक कृति का विवेच्य युग के अधिकांश उपन्यासकारों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है।

सामन्ती युग की वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीतकला, गोष्ठियाँ, सभाएँ, महलों की विविध रूपा सजावटें, वेशभूषाएँ तथा अन्तःपुरों के वातावरण आदि का चित्रण सामन्ती युग को पुनर्जीवित करने में अत्यन्त सहायक होता है। विवेच्य उपन्यासों मे भारतीय सामन्ती जीवन का उत्तम चित्रण एवं निरूपण किया गया है।

(४) पात्र—ऐतिहासिक युगों के अन्यान्य ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक, प्रसिद्ध एवं अज्ञात पात्रो को उपन्यासों मे उभारा जाता है। पात्रों की चरित्रगत प्रवृत्तियाँ उनके युग की भिन्न स्थितियो के प्रभाव से ही अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं। अन्यान्य सामाजिक, धार्मिक, एवं जातीय मूल्य विशिष्ट कालखण्ड के अनुरूप पात्रों के चरित्र, एवं उनके कार्यों को प्रभावित करते हैं। विभिन्न जातियों की एवं नारियों की स्थिति भी काल के अनुसार परिवर्तमान रहती है।

विवेच्य उपन्यासों मे ऐतिहासिक कालखण्ड की स्थितियों को आंशिक रूप से ही ध्यान में रखा गया है। कतिपय महान् ऐतिहासिक पात्र जब महान् ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने के कारण एवं परिणामों के निमित्त के रूप में उभरते हैं, तो एक विशिष्ट ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण होता है। कई बार काल्पनिक पात्र ऐतिहासिक पात्रो की अपेक्षा अधिक सजीव रूप में उभरते है तथा कई बार ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक प्रसगो के माध्यम मे ऐतिहासिक सत्यों (ऐतिहासिक तथ्य नहीं) का उद्घाटन करते है। इस प्रकार वे कई बार महान् ऐतिहासिक पात्रों से भी अधिक प्रभावशाली एवं चिर स्मरणीय बन जाते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों एवं ऐतिहासिक सत्यों के माध्यम से एक समस्त अतीत का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं उसकी पुनर्व्याख्या का कार्य पात्रों के माध्यम से ही पूरा किया जाता है, जो एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होता है।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के "पानीपत" मे सामान्यतः सभी ऐतिहासिक पात्र लगभग सभी ऐतिहासिक घटनाओ के माध्यम से वातावरण निर्माण मे सहायक सिद्ध हुए हैं।

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के "तारा" तथा "रज़िया बेगम" नामक उपन्यासों में ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्र अपने कार्य-व्यवहारों, शिष्टाचार, एवं

1. Dr. J. S. Grewal. "British Historical writing on Muslim India". Page 321.
2. वही, पेज 334.

चारित्रिक, विशेषताओं के माध्यम से भारतीय मध्ययुगों के वातावरण के पुनः प्रस्तुतिकरण में सहायक सिद्ध हुए हैं।

युगलकिशोर नारायण सिंह के "राजपूत रमणी", श्यामलाल गुप्त के "रानी दुर्गावती", सिद्धनाथ सिंह के "प्रण-पालन", लालजीसिंह के "वीर बाला" अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह, के "वीर चूड़ामणि", गंगा प्रसाद गुप्त के "हम्मीर" तथा "वीर पत्नी" आदि में राजपूत पात्र अपनी चरित्रगत विशेषताओं द्वारा एक विशिष्ट वातावरण को उभारते हैं।

जयरामदास गुप्त के काश्मीर पतन में जुब्बारखाँ द्वारा काश्मीरी पंडितों पर अत्याचार करने तथा उनका खालसा सेना द्वारा उद्धार, चरित्रों के माध्यम द्वारा वातावरण निर्माण का एक उत्तम उदाहरण है।

(vi) **कालानुरूप राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं जातीय मानदण्ड**—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित अतीत का अध्ययन उन मध्ययुगीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं जातीय मानदण्डों के आधार पर किया जाना चाहिए जो दरबारी सस्कृति तथा सामंती सभ्यता की धारणाओं द्वारा रूपायित एवं नियोजित होते है।

विवेच्य उपन्यासो मे वर्णित मध्ययुगीन भारत में शासन एवं राज्य की केन्द्रीय शक्तिका ह्रास होता जा रहा था, और बिखरे हुए हिंदू रजवाड़े आपसी फूट के कारण अपना-अपना राग अलाप रहे थे। मुसलमानों के भयावह आक्रमणो की पृष्ठ-भूमि मे क्षात्र वीरता एवं सामन्ती आदर्शो की धवल कीर्ति जो कभी-कभी स्पष्ट होती थी, उसी को अधिकांश उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पुनः प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

समान्यतः उस कालखण्ड के शासक एवं साधारण जनता बहुत से अंधविश्वासों एवं रूढ़ियो का शिकार हो चुके थे।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी, पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र, मिश्रबधु,लालजीसिंह, अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, युगलकिशोर नारायणसिंह, श्यामलाल गुप्त तथा बाबू सिद्धनाथसिंह आदि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने मध्ययुगीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं जातीय मान-दण्डों को अतीत के पुनः प्रस्तुतिकरण तथा पुनर्व्याख्या के समय प्रयुक्त किया है।

(vii) **राजा और प्रजा के धर्म**—हिन्दू राजाओं एवं उनके उनकी प्रजाओं से सम्बन्धों को पौराणिक-आदर्शो के आधार पर वर्णित किया गया है। राजा को प्रजा का पिता एवं रक्षक माना जाता था और प्रजा भी राजा के प्रति श्रद्धा एवं स्वामि-भक्ति के भाव से परिपूर्ण थी। कई मुसलमान शासकों को भी न्यायप्रिय कहा गया है, जबकि अधिकाँश को अत्यन्त विलासी, कामुक एवं अत्याचारी कहा गया है।

'जगदेव परमार' में राजा को प्रजा के रक्षक एवं पिता के रूप में चित्रित किया गया है। जब जगदेव की पत्नी रूपमती किसी भी पर पुरुष का मुंह तक नहीं देखना चाहती तो जगदेव उससे कहता है—"राजा हमारे पूज्य और पिता समान हैं, इनको मुंह दिखलाने में कुछ चिन्ता नहीं है।"[1] इसी प्रकार पाटन नगर का राजा प्रजा के कर्त्तव्यों की विवेचना यूं करता है,—"प्रजा का कर्त्तव्य है कि, वह राजा के नियमों के अनुसार चले, उसकी आज्ञा का पालन करे और कभी ऐसा काम न करे जिससे राजा के नाम में बट्टा लगे....मेरे राज्य में बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।"[2]

सामान्यतः सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में राजपूत एवं हिन्दू राजा आदर्श शासक के रूप में चित्रित किए गए हैं। कतिपय मुसलमान शासकों को भी इसी रूप में उभारा गया है, जैसे किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' में शाहजहान्। इसके विपरीत सामान्यतः सभी मुसलमान शासकों को भ्रष्ट, अत्याचारी एवं ऐतिहासिक आततायी के रूप में चित्रित किया गया है, जैसे ठाकुर बलभद्र सिंह के 'जय श्री' में मुहम्मद बिन कासिम को।

राजा एवं प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों के चित्रों के माध्यम से एक विशिष्ट युग के वातावरण का निर्माण सामान्यतः सफलतापूर्वक किया गया है। राजपूतों की अपने शासक अथवा राजा के प्रति अपार स्वामि-भक्ति एवं राज-भक्ति इस प्रकार के वातावरण निर्माण के उत्तम उदाहरण है।

ग्राम व परिवार के तथा वर्णों के आपसी सम्बन्ध उपन्यासों में बहुत कम उभर कर आए है। पारिवारिक सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध कई स्थानों पर अत्यन्त सजीव बन पड़े हैं।

मध्य-युगों के वातावरण-निर्माण में उद्दाम-भोग, अनुपम शौर्य, अद्वितीय कौशल व शूरता, भयंकर प्रतिद्वन्द्विता, भोग-विलास, उन्मत्त काम, लीला-विलास तथा कला-विलास एक साथ अथवा आंशिक रूप से लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित किए गए है। भारतीय मध्य-युगों के सामन्ती जीवन के अभिन्न अंग के रूप मे ये सभी तत्त्व पात्रों के चरित्र[3] तथा घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया के नियामक के रूप में उभारे गए है।

(V) ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार के युग का प्रतिबिम्ब

ऐतिहासिक उपन्यासों मे अतीत युगों के देश एवं काल के पुनः प्रस्तुतिकरण का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि लेखक के युग की मान्यताएं एवं

1. "जगदेव परमार", रामजीवन नागर, पेज 107.
2. वही, पेज 109.
3. ऐतिहासिक उपन्यासों में चरित्र तथा इतिहास चेतना शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय का अध्ययन किया जा चुका है।

परिस्थितियाँ पर्याप्त मात्रा तक ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित की जाती हैं। इस सम्बन्ध में, वास्तव में, ऐतिहासिक उपन्यासकार की स्थिति इतिहासकार के समान ही होती है। वर्तमान में होकर भी जब वह अतीत की ओर दृष्टिपात करता हे, तो उसका कोण वर्तमान की सीमाओं को पार करता हुआ अतीत की ओर अग्रसर होता है। जब वह उस विशिष्ट अतीत को पुनः प्रस्तुत करने की प्रक्रिया से गुजर रहा होता है, तो उसका युग अतीत के युग मे प्रतिबिम्बित होने लगता है।

इस सम्बन्ध में कतिपय इतिहास दार्शनिको के मत उल्लेखनीय है। क्रोचे के मतानुसार सारा इतिहास समसामयिक इतिहास है।[1] ऐतिहासिक निर्णयों की व्यावहारिक आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे क्रोचे ने कहा था कि घटनाएँ कितने भी सुदूर काल की दृष्टिगोचर हो, वास्तव मे इतिहास वर्तमान आवश्यकताओं तथा वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में लिखा जाता है, जहाँ कि वह प्रतिगुंजित होता है।

इस प्रकार वर्तमान की समस्याओ के अनुरूप ही अतीत का पुनर्विलोकन एवं अध्ययन करना इतिहासकार एव ऐतिहासिक उपन्यासकार का कर्त्तव्य होता है।

इतिहासकार का मुख्य कार्य केवल (घटनाओं का) अभिलेख करना ही नही, उनका मूल्यांकन करना भी है, क्योंकि जब तक वह मूल्यांकन नहीं करता, वह कैसे जान सकता है कि क्या अभिलेख करने के योग्य है।[2]

"सभी ऐतिहासिक तथ्य इतिहासकारो की व्याख्यात्मक रुचियों के परिणाम-स्वरूप, हम तक पहुँचते है। ये रुचियाँ उनके युग के मानकों द्वारा प्रभावित होती हैं।"[3]

क्रोचे के मत को स्पष्ट करते हुए ए० एल० राउस ने लिखा है कि हम अतीत को उन्ही साक्ष्यों द्वारा ही जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान मे उपलब्ध है, अन्य किसी ज्ञान की तरह अपने मानस मे जान सकते है।[4]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारो का युग सामान्यतः निराशा एव गुलामी का युग था। सामाजिक एव साँस्कृतिक पुनरुत्थान की हिन्दू-धारणा अत्यन्त व्यापक रूप से क्रियाशील थी। सनातन हिन्दू धर्म की मान्यताओं, परम्पराओं एवं विश्वासों को पुनः स्थापित किया जा रहा था। यद्यपि बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशकों मे ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध स्वातन्त्र्य-आन्दोलन जोर पकडता जा रहा था। परन्तु

1. B Croce, "History as the story of Liberty", English translation, 1941, p. 19 "The practical requirements which underlie every historical judgement give to all history the character of "contemporary history", because, however remote in time events thus recounted may seem to be, the history in reality refers to present needs and present situations where in those events vibrate."
2. देखिए,—"व्हाट इज़ हिस्टरी", ई० एच० कार, पृष्ठ 21.
3. वहा, पीछे का आवरण पृष्ठ
4. ए० एल० राउस "दी यूज़ आफ हिस्टरी", पृष्ठ 44.

विवेच्य उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में इस राजनैतिक उथल-पुथल को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न नहीं किया। अप्रत्यक्ष रूप से किशोरीलाल गोस्वामी ने 'रज़िया बेगम' में तथा व्रजनन्दन सहाय ने 'लालचीन' में गुलामी के सम्बन्ध में मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक विवेचनाएँ की हैं।

सामाजिक सुधार, साम्प्रदायिकता एवं हिन्दू राष्ट्र की पुनः स्थापना आदि अप्रत्यक्ष रूप से विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णित किए गए हैं। यह बीसवीं शताब्दी की पहली दो दशाब्दियों की मुख्य समस्याएँ थीं जिनका अतीत के कालखण्डों में उद्घाटन[1] किया गया।

(क) वर्तमान का प्रत्यक्ष चित्रण—विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार के युग के प्रतिबिम्बन का सबसे भद्दा रूप है—अतीत का चित्रण करते हुए उपन्यासकार द्वारा एकदम ऐतिहासिक झटका देते हुए वर्तमान अथवा निकट अतीत के वर्णन एवं सन्दर्भ देना। इस प्रकार ऐतिहासिक खोज के नाम पर भद्दापन उभर कर आता है।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र 'पानीपत' में अफगानिस्तान के पठान आक्रमणकारियों द्वारा भारत पर निरन्तर आक्रमण किए जाने का वर्णन करते हुए अहमदशाह अब्दाली से सीधे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त पर सेना रखे जाने का सन्दर्भ देते हैं—"यह पहाड़ी देश भारतवर्ष से डाह करके इतिहास के पन्नों में विख्यात हुआ है....इस सूत्र के अनुसार भारत-भूमि को सदा ही कष्ट उठाना पड़ा है और आजकल कभी-कभी अंग्रेजों को भी इसी कारण से सीमा पर युद्ध करना पड़ता है। जब तक इस कुढंगे देश की प्रजा के हाथों में परतन्त्रता की जंजीर नहीं पहिराई जाएँगी तब तक भारत के लिए यह देश एक भार के समान रहेगा।"[2]

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के "रजिया बेगम" के "दर्बार-ई-सुल्ताना" नामक परिच्छेद में रजिया के राज दरबार का वर्णन करने से पहले गोस्वामी जी अंग्रेजों की कचहरियों, हाईकोर्ट तथा लाट साहब की कौंसिल का सन्दर्भ देते हुए फ्रांसीसी द्वारा शाहजहान् और औरंगजेब के दरबारों के आँखों देखे वर्णन का उद्धरण देते हैं। इस वर्णन में लेखक की आप बीती तथा उसके युग की स्थिति स्पष्ट रूप में वर्णित की गई है—"उस समय घूँस भी अवश्य चलती थी, और न्याय का अन्याय,

1. इस सम्बन्ध में गोपीनाथ तिवारी का मत उल्लेखनीय है, "ऐतिहासिक उपन्यासकार नवीन समस्याओं का उद्घाटन प्राचीन इतिहास के प्रकाश में करता है। लेखक एक विशेष समस्या को उठाता है। फिर इतिहास में उसी के अनुरूप घटना ढूंढता है। यदि मिल गई तो बहुत ठीक। यदि नितान्त साम्य न रखने वाली न भी मिली, तब भी प्राचीन घटना का विश्लेषण नवीन समस्या के प्रकाश में कर देता है।"—"ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास", डॉ० गोविन्दजी संपादित ऐतिहासिक उपन्यास, पेज 61.
2. "पानीपत", पेज 233.

और अन्याय का न्याय भी प्राय: होता था, पर सच्चा न्याय भी अवश्य होता था। उस समय स्टाम्पों की भरमार, वकील-मुखतारों के उत्पात और मुहर्रिरों की तहरीरी रसुमात का उलझेड़ा न था, और लोग सादे कागज पर अर्जी लिख कर पेश करते थे और कहीं-कहीं अपना उत्तर जबानी ही कह सुनाते थे, जिस पर जो कुछ फैसला होने को होता, वह या तो उसी समय हो जाता, या कई दिनों के भीतर ही खूब छानबीन के साथ उसका कुछ न कुछ निबटारा हो ही जाता था, पर आजकल की तरह वह खर्च इतना बढ़ा-चढ़ा न था कि लोगों को अखरता, या तबाह कर डालता है।[1]"

"बारहवीं सदी का वीर जगदेव परमार" में पंडित रामजीवन नागर ने पुलिस के कोतवाल तथा कान्सटेबलों की बेईमानी तथा लालच का वर्णन करने के साथ-साथ घड़ी के समय का प्रयोग भी किया है, जो 12वीं सदी का न हो कर एक दम लेखक के युग का है।[2]

इस प्रकार लेखक के युग का भारतीय मध्ययुगों में प्रतिबिंबन एक कलात्मक दोष है तथा कथानक के प्रवाह में रसभंग की स्थिति उत्पन्न करता है। बहुत से ऐतिहासिक उपन्यासों मे उपन्यासकार के युग का इस प्रकार का चित्रण किया गया है।

(ख) **लेखक के युग का अप्रत्यक्ष प्रक्षेपण**—भारतीय मध्ययुगो के मुख्य पात्रों तथा काल्पनिक चरित्रों की उद्भावना करने की प्रक्रिया में लेखक के युग के विचारों, मान्यताओ, धारणाओ तथा मानदण्डों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार अतीत युग में समय की रूढ़ियों को तोडने के लिए अथवा उनके अनुरूप आधुनिक धारणाओ का समावेश चरित्रों के माध्यम से किया जाता है। यहाँ नैतिकता का द्वन्द्व तथा आस्था के स्थान पर बौद्धिकता का समावेश किया जाता है।

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने "रजिया बेगम" तथा "तारा" में इस प्रकार अप्रत्यक्ष एवं कलात्मक ढंग से भारतीय मध्ययुग के दो भिन्न कालखण्डों में अपने युग की धारणाओं एवं मान्यताओं का प्रक्षेपण किया है।

"रजिया बेगम" मे सुल्ताना एक बूढ़े फकीर के रूप में इस्लाम की एकदम नई एव विपरीत व्याख्या करती है, जब बहुत से मुसलमान मिल कर पं० हरिहर

1. "रजिया बेगम", पेज 51
2. "सवेरा होते ही जमादार उठा और कोतवाल के आने की राह देखने लगा। छ: बज कर पचपन मिनट पर कोतवाल साहब थाने मे पहुँचे। फिर क्या देर थी? इनाम का भूखा जमादार भी तुरन्त उनके पास गया और कहने लगा—आज रात को मैं इन दोनों कान्स्टेबलों को साथ लेकर वास्ते गश्त के गया था। मैंने फिरते-फिरते दरमियान सड़क के कई चोरों को यह माल की गठरी लेकर जाते देखा · एक गठरी हम उनसे छीन लाए हैं, वह मौजूद है। अब तक कोई रपट करने वाला तो आया नही अब जो हुकुम हो सो किया जाए।"
—"जगदेव परमार", पेज 101-102.

शर्मा के मंदिर का नाश करने को उद्यत होते है, तो रजिया उन्हें रोकती है और व्यंग्य करती है—"तब तो तुम लोग खासे फकीर हो और नाहक "दीन", "दीन" का शोर मचा कर पाक इस्लाम मज़हब के वसूलों पर दाग लगाते हो।"[1] इस प्रकार असहिष्णु मध्ययुगीन मुसलमान शासकों के चरित्र के माध्यम से लगभग आधुनिक विचारों का निरूपण किया गया है। इसी उपन्यास के दूसरे भाग में, "फूट का फल" नामक परिच्छेद में किशोरीलाल गोस्वामी एक धार्मिक नेता के माध्यम से तद्युगीन राजनीति का विशद् विवेचन करते है। रजिया के युग में जबकि हिन्दू राजपूत राजा तो लगभग पराजित हो चुके थे परन्तु मुसलमान शासन भी अभी पूरी तरह से भारत में दृढ़ नही हो पाया था, राजस्थान तथा मध्य भारत के अन्यान्य राजपूत राजाओं को जो अपना-अपना राग अलाप रहे थे। धार्मिक नेता स्वामी ब्रह्मानन्द अपने युग की राजनीति तथा उसकी पूर्व-पीठिका को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"यदि यहाँ के राजाओं में एका होता और यहाँ के नरेश परस्पर मिले हुए एक दूसरे की सहायता पर सन्नद्ध रहते तो एक महमूद गजनवी तो क्या हजार महमूद की भी सामर्थ्य न होती कि वह भारतवर्ष की सीमा के पास तक भी अपने को लाने का साहस करता।"[2] वास्तव में यह गोस्वामी जी के अपने युग की पुनर्उत्थानवादी धारणा की गूंज है, जिसे मध्ययुग में प्रक्षेपित किया गया है। स्वामी ब्रह्मानन्द एक धार्मिक नेता के रूप में राजस्थान के सभी राजाओ को एक कडी में बाँधने का विफल प्रयास करते है।[3] जयचन्द और पृथ्वीराज चौहान की आपसी फूट मे शिक्षा लेने की बात कहते हुए गोस्वामी जी ने धर्म को वास्तव मे भारतीय एकता के मूल आधार तथा संपर्क-सेतु के रूप में उपस्थित किया है। आर० सी० दत्त की अंग्रेजी पुस्तक "भारत की मौलिक एकता" का यहाँ पर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामी जी के युग में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रांतिकारियों के भूमिगत अड्डों का प्रतिबिंब रज़िया के विरुद्ध उसके सरदारों द्वारा किए जाने वाले विद्रोह में परिलक्षित होता है। रात्रि के समय उनका एक भूमिगत गृह में मिलना तथा रजिया के विरुद्ध कई शिकायतों पर विचार-विमर्श करना गोस्वामी जी के युग की स्थिति को प्रतिबिंबित करता है।

1. "रजिया बेगम", पेज 29.
2. "रजिया बेगम", दूसरा भाग, पेज 10.
3. "रजिया" दूसरा भाग पेज 11

   नौ महीने तक राजस्थान के राजाओ के यहाँ गए और उन राजाओं को बहुत समझाया कि—"अपनी जननी समान जन्मभूमि के ऊपर अब वे दया करें और परस्पर मिलकर किसी एक राजा को अपना सम्राट बनावें, तदंतर सब के सब मिल कर दिल्ली के तख्त को उलट दे और अपवित्र भारत-भूमि का पुन: संस्कार करके अपने देश की विलुप्त स्वाधीनता की पताका फिर से भारत के आकाश मे उडावे; क्योंकि इस समय दिल्ली की सल्तनत बिलकुल कमजोर हो रही है इस समय यवनों के पैर एक प्रकार से उखड़ गए हैं और गुलाम बादशाह शमसुद्दीन अलतिमश के शाही खानदान में घोर गृहविवाद उपस्थित हुआ है।"

"तारा" मे जहानआरा तथा तारा के बीच सांस्कृतिक विषयों पर वार्तालाप अतीत युगों में लेखक के युग के प्रतिबिंबन का उत्तम उदाहरण है जबकि जहानआरा बाल्मीकि की रामायण की प्रशंसा करती है ।[1]

व्रजनन्दन सहाय के "लालचीन" मे लालचीन के चरित्र-चित्रण के माध्यम मे नैतिकता के द्वन्द्व की आधुनिक एवं लेखकयुगीन धारणा का चित्रण किया गया है। *उसने सम्राट गयासुद्दीन को अंधा बनाकर स्वय सिंहासन हथियाने का* जो कुचक्र चलाया था, उसकी पृष्ठ-भूमि मे व्रजनन्दन सहाय ने उसके चरित्र के द्वन्द्व को कलात्मक ढग से चित्रित किया है—कुवासना की सफलता होते न होते लालचीन के मन मे खलबली मच गई। आत्मा की कठोर याचना सहने की इसमे अब शक्ति न रह गई। आतिथ्यसत्कार का भाण करते अब न बना। सुषुप्त करुणा इसके हृदय मे जाग उठी। धर्म ने अपनी ओर इसे एक बार और खींचा। आत्मा की पुकार यह पुनः सुनने लगा। अनुताप के ताप से व्याकुल होकर यह गयास के सामने ठहर नही सका।[2] इसी उपन्यास में आस्था के स्थान पर बौद्धिकता की आधुनिकतम धारणा का समावेश किया गया है। यहाँ "लालचीन" अपनी परिस्थितियो के प्रति असंतुष्ट होकर विद्रोह करता है। उसकी पत्नी लालचीन के इस विद्रोह का अपनी महत्त्वा-कांक्षाओ की पूर्ति के लिए प्रयोग करती है और लालचीन को स्वा-मिद्रोह के लिए उद्यत करती है।[3] *यद्यपि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है* तथापि इसका चित्रण नितान्त नवीन ढंग मे किया गया है। विशेषतः हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों के संदर्भ मे यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

"लालचीन" तथा "रज़िया" दोनों ही उपन्यासों में क्रमशः लालचीन, याकूब तथा अयूब गुलाम होते है। इनका चित्रण करते समय लेखक के युग मे गुलामी की धारणा स्पष्ट रूप से उभर कर आई है।

गयासुद्दीन द्वारा सिंहासनारूढ होने के पश्चात् जब "लालचीन" की कोई विशेष उन्नति नहीं की जाती तो वह असंतुष्ट होने के साथ ही विद्रोह के दावानल मे जल उठता है। वह सम्राट गयासुद्दीन से कहता है:—"उनके (गुलामों) साथ मनुष्य जैसा व्यवहार करना तो उचित है। हित-अनहित के विचारने की शक्ति दासो मे भी है। दुःखसुख का वे भी अनुभव करते हैं। वे भी मर्म रखते है। उन्हे भी वेदना होती है। उनका भी हृदय न्याय और अत्याचार अनुभव करता है, हर्ष-विषाद प्रकट करता है। उनका भी मन उच्च अभिलाषा से भरा रहता है।"[4] इसी प्रकार "रजिया बेगम" में याकूब तथा अयूब अपनी वर्तमान गुलामी की स्थिति के बारे मे जब सोच-विचार करते है, तो उनके विचार लगभग आधुनिक स्तर के है।[5]

1. "तारा" पहला भाग पेज 12-23.
2. "लालचीन" व्रजनन्दन सहाय, पेज 76.
3. "लालचीन", पेज 40-42.
4. "लालचीन", पृष्ठ 5.
5. "रज़िया बेगम", पहला भाग, पेज 21-26.

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तथा 20 वीं शताब्दी के पहले दो दशकों में धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीयता की धारणा धीरे-धीरे उभर रही थी तथापि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार जाति-पाँति अथवा चतुर्वर्ण एवं चतुर्फल की धारणा के प्रबल पोषक थे। इसी के आधार पर विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों में धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीयता के स्थान पर हिन्दू राष्ट्रीयता की धारणा का प्रतिपादन किया गया है।[1]

विवेच्य युग, एक महान् सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक सम्मिलन तथा टकराहट की प्रक्रिया का युग था। यद्यपि सामान्यतः विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार एक निश्चित सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक धारणा के प्रति प्रतिबद्ध थे फिर भी उनके युग में उभरने वाली उदारतावादी तथा मानवतावादी जीवन-दृष्टियाँ उभर कर आई हैं। मिश्र बन्धुओं के "वीरमणि" में विवेच्य युग की धार्मिक एव सांस्कृतिक समस्याओं का कलात्मक ढंग से प्रक्षेपण किया गया है।

विवेच्य कालखण्ड में हिन्दू धर्म पर कई आपत्तियाँ लगाई जा रही थीं, मिश्र बन्धुओं ने उनका मध्ययुगों में प्रक्षेपण किया है। वीरमणि का शिष्य मकरंद उनसे पूछता है—"महाशय, पृथ्वी पर हिन्दू, बौद्ध, ईसाई और मुसलमान नामक चार प्रधान मत हैं, सो इन में से तीनों अंतिम धर्मों के चलाने वाले एक-एक महात्मा थे किन्तु हिन्दूमत का प्रवर्तक कोई नहीं देख पड़ता। इसी प्रकार मुसलमानी मत के दो सिद्धांत परम दृढ़ एवं प्रकट हैं, तथा दोनों मतों के सिद्धान्त भी सरलता से ज्ञात हो सकते हैं, किन्तु हिन्दू मत के सिद्धान्त क्या हैं, सो पूर्ण विचार से भी नहीं प्रकट होते और न आपने कुछ बताए। आपने तो आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनों की साथ ही साथ शिक्षा दी.....आपने सभी आचार्यों की सदैव पूर्ण भक्ति सिखलाई किन्तु विचार करने से उनके सिद्धान्तों में अनेक छोटी बड़ी प्रतिकूलताएँ पाई जाती हैं।.......जिस हिन्दू-मत की आप सदैव प्रशंसा किया करते हैं, वह केवल एक पंसारी की दूकान है। उसमें निश्चित सिद्धान्ताभाव और आचाराभाव के दो बड़े दूषण समझ पड़ते हैं।"[2] हिन्दूमत पर यह दो आक्षेप लेखक के युग में सामान्यतः उभरते थे। मिश्र बन्धुओं ने वीरमणि के माध्यम से इन संशयों का समाधान प्रस्तुत किया है।[3]

विवेच्य उपन्यासकारों का युग ब्रिटिश पराधीनता का, राजनीतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त निराशाजनक कालखण्ड था। राजनीतिक स्वाधीनता के अन्यान्य प्रयत्नों के विफल हो जाने के पश्चात् भारतीयों ने अपने समाज, धर्म एव संस्कृति पर ईसाई मिशनरियों द्वारा कुठाराघात किए जाने के प्रतिक्रिया स्वरूप जो पुनरुत्थानवादी धारणा उभरी थी, उसी को भारतीय मध्ययुगों में प्रतिबिंबित एव प्रक्षेपित किया गया है। लेखक के युग का भारतीय मध्ययुगों में प्रतिबिंबित किया जाना उनके द्वारा

1. जाति-पाँति तथा हिन्दू राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इस अध्याय के आरम्भ में इतिहास की धारणाएँ तथा पुनर्व्याख्याएँ शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है।
2. "वीरमणि", पेज 12.
3. "वीरमणि", पेज 13-20, इस विषय को जीवन-दर्शन शीर्षक के अन्तर्गत लिया जाएगा।

इतिहास में से चुने गए काल-खण्डो द्वारा भी प्रमाणित होता है । सामान्यत: विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारतीय अतीत के उन कालखण्डों को अपने उपन्यासों का आधार बनाया है जब या तो हिन्दू जाति (विशेषत. राजपूत) अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए घोर संघर्ष में रत थे अथवा समस्त भारत में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए अदम्य वेग एवं प्रबल आकॉक्षा द्वारा क्रियाशील थे और इसी रूप में लेखक के युग की धारणाओं का मध्ययुगो मे प्रतिबिंबन किया गया है ।

(VI) ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टियाँ एवं जीवन-दर्शन

इतिहास केवल अन्यान्य घटनाओं की शृँखला ही नही होती, इन घटनाओं की व्यवस्था करते समय, एवं उन्हें बुद्धिगम्य स्वरूप प्रदान करते समय इतिहासकार एक विशेष दर्शन की धारणाओं एवं मान्यताओं का प्रयोग करता है । अतीत की घटनाओं का विवरण यदि एक विशिष्ट इतिहास दर्शन द्वारा अनुप्राणित न हो तो उसे इतिहास कहना कठिन होगा । इतिहास-दर्शन के कारण ही डॉ० ए० एल० राउस ने व्यक्तित्व, विवरण (Vividness) तथा विशदता (Vitality) के आधार पर सर विंस्टन चर्चिल की 'वर्ल्ड क्राइसिस' को ट्राटस्की की हिस्ट्री ऑव द रशियन रैवोल्यूशन' से घटिया बताया था क्योंकि इसके पीछे इतिहास का कोई दर्शन न था ।[1]

इतिहासकार जिस प्रकार मानवोय अतीत का अध्ययन एवं निरूपण एक विशिष्ट इतिहास-दर्शन के अनुरूप करता है, उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार विशिष्ट अतीत के एक कालखण्ड के पुन: प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में अपनी जीवन-दृष्टि एवं जीवन-दर्शन का प्रयोग कर अपने ऐतिहासिक-उपन्यास को एक अर्थ प्रदान करता है । विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने सामान्यत एक विशिष्ट एवं सुनिश्चित जीवन-दृष्टि एवं जीवन-दर्शन के आधार पर अतीत का पुन: प्रस्तुतिकरण किया है ।

(i) हिन्दू-धर्म—हिन्दू-धर्म, समाज एवं संस्कृति का पुनरुत्थानवादी जीवन-दर्शन इन उपन्यासों की आत्मा है । लगभग सभी उपन्यासकार हिन्दू-धर्म की सनातन मान्यताओं, धारणाओं, परम्पराओं एवं विश्वासों के प्रति प्रतिबद्ध हैं । इसी जीवन-दर्शन के अनुकूल भारतीय अतीत के उन युगों को चुना गया जबकि इन धारणाओं की रक्षा के लिए समस्त जाति एवं संप्रदाय अपने प्राणों की बलि देने को उद्यत था, अथवा इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिया जाता था । इसी जीवन-दर्शन के कारण सांप्रदायिकतापरक दृष्टिकोण ने लगभग सभी उपन्यासकारों को प्रभावित किया ।

हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति के पुनरुत्थान के साथ-साथ उसकी पुन. स्थापना की उत्कट महत्त्वाकांक्षा भी इसी जीवन-दर्शन का परिणाम थी ।

1. *A. L. Rouse* : "The End of an Epoc" 1947, Page 282-83.

इस जीवन-दर्शन के अनुरूप विवेच्य उपन्यासकारों ने समस्त प्रयुक्त भारतीय अतीत की पुनः व्याख्या की है। राजपूताना के हिन्दू राजाओं एवं राणाओं को आदर्श शासक के रूप में तथा मुसलमान सम्राटों एव नवाबों को अत्यन्त कामुक, विलासी एवं अत्याचारी के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ तक कि अकबर को भी कामुक, विलासी एवं अत्याचारी के रूप में प्रस्तुत किया गया। उदाहरणतः किशोरीलाल गोस्वामी के 'सोना और सुगन्ध व पन्ना बाई' तथा श्यामलाल गुप्त के 'रानी दुर्गावती' उपन्यासों में।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र का 'पानीपत' सनातन हिन्दू धर्म की पुनः स्थापना के इतिहास दर्शन द्वारा आद्योपाँत अनुप्राणित है। यहाँ हिन्दू राष्ट्रीयता की धारणा लेखक के आस्तिक विश्वासों से जुडकर उभरी है। दैवी शक्ति के रूप मे भगवान् की कृपा कार्य-सिद्धि के लिए अनिवार्य है, दैवी शक्ति यहाँ केवल प्रेरणा का स्रोत ही नहीं है, प्रत्युत घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा तथा विशिष्ट स्वरूप भी प्रदान करती है। यही कारण है कि जय हो या पराजय दैवी शक्ति ही उसके लिए उत्तरदायी होती है, पात्र चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, वे जगदवा अथवा खुदा को ऐतिहासिक घटनाओं की नियोजक शक्ति के रूप में स्वीकारते हैं।

मिश्र बन्धुओं ने हिन्दू मत पर लगाए जाने वाले अन्यान्य आक्षेपों का तार्किक ढंग से खण्डन किया है। हिन्दू-धर्म के किसी एक अनुयायी प्रवर्तक के न होने तथा हिन्दू-धर्म में अन्तर्विरोधों का एक विशाल सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर स्पष्टीकरण किया है। हिन्दू-धर्म के एक पुरुषावलम्बी न होने को बुद्धि-विकास के लिए उचित ठहराया है,—क्योकि अनुयायी प्रवर्तक के विचारों के आगे नहीं बढ सकते। जो विचार वह एक पुरुष कर गया है, उसके आगे बढना अनुयायी के लिए पातक है।' यह नभ मण्डलवत् एक महा विस्तृत धर्म है, और प्रायः सभी बड़े-बड़े महात्माओं के सदुपदेश इसमें आदर पाते हैं।......"इस भाँति किसी एक व्यक्ति की अधीनता न स्वीकार करने में हिन्दू मत ने श्रेष्ठ मार्ग का अवलंबन किया है......किसी एक का मत मानने को बाध्य कर देने से मनुष्यो की स्वतन्त्रता मे बाधा पडती है। ....जब तक उसके आचार शुद्ध है, तब तक विचारो के लिए हिन्दू किसी से लड़ने नहीं जाएगा, चाहे वह विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, काली, महावीर.कलवावीर, आदि में से किसी को भी माने। ध्यान रखना चाहिए कि यह वह उदार मत है कि जिसने एक द्वितीय धर्म चलाने वाले गौतम बुद्ध को भी अवतार कह कर पूजा और सैकडों वर्षो तक बौद्धमत को हिन्दूमत से पृथक् ही न माना।"[1]

मिश्र बन्धुओं ने हिन्दू मत को सांप्रदायिक न मानते हुए उसके एक बृहत्तर एव भौगोलिक स्वरूप का प्रतिपादन किया है।[2]

1. "वीरमणि", पेज 13-18.
2. वही, पेज 19. 'हिन्दू वास्तव में एक भौगोलिक शब्द है, न कि साम्प्रदायिक। हिन्द का प्रत्येक निवासी हिन्दू है। यह शब्द वास्तव में भारतवासी के समान अर्थबोधक है, किन्तु

प० किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो मे सनातन हिन्दू-धर्म तथा उसके पूरक के रूप मे जाति अभिमान के सामंती स्वरूप एव आधुनिक पुनर्उत्थानवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। 'तारा' मे जब अन्यान्य हिन्दू एव मुसलमान पात्र धर्म एव सस्कृति के सम्बन्ध मे वार्तालाप करते है, तो गोस्वामीजी का आधुनिक पुनर्उत्थानवादी जीवन-दर्शन अपने सर्वाधिक स्पष्ट रूप मे उभर कर आता है। यहाँ धर्म के साथ-साथ साहित्य भाषा तथा संस्कृति सभी क्षेत्रों में हिन्दुओं को मुसलमानो की अपेक्षा बेहतर रूप मे उभारा गया है।[1] इसी प्रकार जब चन्द्रावती तारा की दारा के साथ शादी करने की अर्जुन की सलाह को ठुकराती है, तो हिन्दू-धर्म का कट्टर सनातनी स्वरूप, उदयपुर के राजपूत राजाओं के प्रति गहरी भक्ति तथा मुसलमान विरोधी इतिहास-चेतना के साथ-साथ जातीय दर्प, आत्माभिमान एवं धर्म-निष्ठा का मध्ययुगीन स्वरूप उभरता है, जो प० किशोरीलाल गोस्वामी के जीवन-दर्शन के अनुरूप है। इसी प्रकार "रजिया बेगम" मे हिन्दू-धर्म तथा इस्लाम दोनो को एक नवीन दृष्टि से देखा एव व्याख्यायित किया गया है।[2]

प० रामजीवन नागर का जीवन-दर्शन हिन्दू-मत तथा राजपूतो के प्रति अगाध श्रद्धा तथा दृढ विश्वास द्वारा रूपायित होता है। राजपूतों के अपार शौर्य एव वीरता के साथ-साथ उनके अन्त.पुरो की स्थितियो का चित्रण करते हुए वे पौराणिक आदर्शों के पुनः प्रस्तुतिकरण तथा पुनर्स्थापन के जीवन-दर्शन के समर्थक है। नायक की मध्ययुगीन धारणाओ द्वारा अनुप्राणित होते हुए भी वे एक स्वर्णिम अतीत की परिकल्पना करते हैं। स्वर्णिम अतीत के इस चित्रण द्वारा वे पुनर्उत्थानवादी जीवन दर्शन का निरूपण करते हैं।

ठाकुर बलभद्र सिंह 'वीर बाला वा जयश्री' मे सनातन धर्म परक नैतिक धारणा का प्रतिपादन करते हैं।[3]

चन्द्रशेखर पाठक के 'भीमसिंह' रामनरेश त्रिपाठी के 'वीरांगना' गिरिजानन्दन तिवारी के 'पद्मिनी' तथा रूपनारायण के 'सोने की राख' मे हिन्दू-धर्म के मध्ययुगीन स्वरूप तथा उसके प्रति लेखकों की व्यक्तिगत श्रद्धा एव प्रतिबद्धता उनके जीवन-दर्शन को रूपायित करती है।

गगाप्रसाद गुप्त के 'हम्मीर', 'वीरपत्नी',जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान', हरिचरणसिह चौहान के 'वीरनारायण', श्यामलाल गुप्त के 'रानी दुर्गावती', तथा ब्रजबिहारी सिंह के 'कोटारानी' नामक विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो मे हिन्दूमत

बहुत दिनो से अब धर्म अथवा मत को अर्थबोधकता में रूढि मान लिया गया है। हिन्दूमत का शुद्ध अर्थ भारतवर्षीय मत मानना चाहिए। धार्मिक विचार से प्रत्येक सदाचारी पुरुष हिन्दू है, चाहे जिस मत को वह मानता हो।'

1. "तारा", पहला भाग, पेज 12-23.
2. "रजिया बेगम", पहला भाग, पेज 41-49, 50-59.
3. "वीर बाला वा जयश्री" बलभद्रसिंह, पेज 20.

तथा राजपूतों की नैतिक धारणाएँ लेखकों के जीवन-दर्शन को उभारने के साथ-साथ उसको नियोजित भी करती हैं।

बाबूलाल जी सिंह के 'वीरबाला' तथा युगलकिशोर नारायणसिंह के 'राजपूत रमणी' में उदयपुर के महाराणा राजसिंह द्वारा रूपनगर की राजकुमारी का उद्धार करने तथा औरंगजेब के अत्याचारों के प्रति सशक्त एवं सफल विरोध करने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लेखक राजपूतों की नैतिकता तथा हिन्दू मत की महानता का चित्रण करने के साथ-साथ उसके पुनः स्थापन के जीवन-दर्शन का निरूपण करते हैं। इस विशिष्ट ऐतिहासिक युग में एक सशक्त ऐतिहासिक आततायी औरंगजेब के विरुद्ध एक प्रबल हिन्दू राजा राजसिंह का अभियान इस प्रकार के जीवन-दर्शन को और भी मुखर करता है।

अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह के 'वीर चूड़ामणि' तथा सिद्धनाथ सिंह के 'प्रण पालन' नामक उपन्यासों में मेवाड़ के राणा लाखा तथा उनके सुपुत्र चूड़ाजी के अद्भुत त्याग तथा देशभक्ति के चित्रण के माध्यम से हिन्दू मत की महानता की धारणा का प्रतिपादन किया गया है।

हिन्दू-धर्म के प्रति एक दृढ़ आस्था तथा गहरा विश्वास विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों के जीवन-दर्शन का मेरुदण्ड है जो उसके स्वरूप को निर्धारित एवं नियोजित करता है।

(ii) हिन्दू राष्ट्रीयता—हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थानवादी जीवन-दर्शन के साथ-साथ हिन्दू-राज्य की परिकल्पना का मध्ययुगों में प्रक्षेपण भी विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों के जीवन-दर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग है। यद्यपि लालजीसिंह के 'वीरबाला' युगलकिशोर नारायण सिंह के 'राजपूत रमणी,' अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह के 'वीर चूड़ामणि,' सिद्धनाथ सिंह के 'प्रण पालन' जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान,' गंगाप्रसाद गुप्त के 'वीर पत्नी,' एवं हम्मीर' तथा जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर पतन' में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना का मौलिक जीवन-दर्शन अपने पूर्ण वेग से उपन्यास की घटनाओं के प्रवाह तथा हिन्दू पात्रों के क्रियाकलापों को नियोजित करता है तथापि वह इन उपन्यासों में अपना पूर्ण स्वरूप प्राप्त नहीं कर पाया।

पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में हिन्दू राष्ट्रीयता का जीवन-दर्शन तथा हिन्दू राष्ट्र की पुनः स्थापना का प्रयास अपने संपूर्ण रूप में उभर कर आया है। 'शयन-गृह' नामक अध्याय में मराठा सेना का मुख्य सेनापति सदाशिव राव भाऊ भारतवर्ष का नक्शा देखते हुए क्षत्रियों की पराजय से खिन्न हृदय होता हुआ तथा साथ ही भविष्य के प्रति आशावान् होता हुआ स्वयं ही कह उठता है,—'यदि अब भी वीर-गण अपने गत गौरव को प्राप्त करने के लिए कमर बांधें तो विजय लक्ष्मी उन पर दयालु हो सकती है। कारण कि मुगलों का बल इस समय क्षीण होता हुआ दिखाई दे रहा है। परन्तु अफगान लोगों में अब तक साहस वीरत्व और उद्योग का

अभाव नही है । तथापि क्या चिन्ता है यदि हिन्दू प्रजा एकत्र होकर यत्न करेगी, तो अफगान लोग भी तृण की भाँति उड़ जाएँगे । महाराष्ट्री सेना की तत्परता और वीरता देख कर आशा होती है कि दुर्रानी अवश्य ही पराजित होगा ।"[1]

इस प्रकार विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों मे हिन्दू-धर्म के समान हिन्दू राष्ट्रीयता का जीवन-दर्शन, मुसलमान विरोधी (अंग्रेज विरोधी नही) धारणाओं पर आधारित है । यह जीवन-दर्शन साँप्रदायिकता तथा धर्म के संघातों के परिणाम-स्वरूप कइ बार अत्यन्त प्रबल रूप मे उभर कर आता है ।

(iii) **नारी**—नारी के सम्बन्ध मे विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार लगभग मध्ययुगीन एव प्राचीन हिन्दू-दृष्टियों द्वारा प्रभावित हुए है । परन्तु कभी-कभी वे अपनी समयुगीन एव पुनरुत्थान वादी धारणा के अनुरूप नारी की आधुनिक धारणा का प्रतिपादन करते है ।

ईसाई तथा मुस्लिम धर्मो के संघातो के परिणामस्वरूप विवेच्य उपन्यासकार भारतीय नारी के मध्य-युगीन स्वरूप को अत्यन्त श्रद्धापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते है । मध्य युगो में भारतीय नारियो द्वारा पति की मृत्यु के पश्चात् जौहर-व्रत धारण करने की प्रथा का विवेच्य लेखकों ने विपुल प्रयोग किया है । नारी के जौहर-व्रत धारण करने की प्रथा पर चन्द्रशेखर पाठक ने 'भीमसिह', रामनरेश त्रिपाठी ने 'वीरांगना', गिरिजा नन्दन तिवारी ने 'पद्मिनी', तथा रूप नारायण ने 'सोने की राख' की रचना की । इन उपन्यासो मे चितौड की महारानी पद्मिनी द्वारा असख्य राजपूत नारियों के साथ चिता मे जल जाने के भावोत्तेजक चित्रण द्वारा भारतीय नारी के प्रति गहन श्रद्धा तथा आदर का भाव उत्पन्न किया गया है ।

मु शी देवीप्रसाद ने 'रूठी रानी' मे राव मालदेव की रानी उमादे के माध्यम से भारतीय नारी के उदात्त स्वरूप को उभारा है । उमादे शादी की रात को ही अपने पति से रूठ गई थी । और अन्त तक रूठी ही रही । राव मालदेव की मृत्यु का समाचार मिलने के पश्चात् वह सती हो जाती है ।[2] इस प्रकार समस्त विवाहित जीवन मे निरंतर रूठे रहने पर भी उमका सती होना मध्ययुगीन भारतीय नारी की गरिमा का परिचायक है ।

रामजीवन नागर के 'जगदेव परमार' मे भी राजा उदयादित्य के साथ उसकी बाघेली और सोलंकिनी पति के माथ सती हुई,—और शास्त्र रीति तथा कुल रीति के अनुसार तीनों का दाहकर्म तथा उत्तर-क्रिया की गई ।[3] सती होने की प्रथा 18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चलती रही, यद्यपि वह अनिवार्य नही रह गई

1. 'पानीपत', पेज 37-38
2. "रूठी रानी", मु शी देवीप्रसाद, पृष्ठ 46-48.
3. "जगदेव परमार", पृष्ठ 167.

थी। पंडित बलदेवप्रसाद के 'पानीपत' में 'सती लक्ष्मी' नामक परिच्छेद[1] में मराठा सेनापति बलवन्तराव मेढले के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् उसकी पत्नी लक्ष्मी बाई सती होने का निश्चय करती है। जनार्दन भानू (नाना फड़नवीस) तथा सदाशिवराव भाऊ आदि लक्ष्मी को सती न होने की सलाह देते हैं तथा उसके लिए उसके छोटे से पुत्र आपाराव के संरक्षण को मुख्य कारण बताते हैं। परन्तु लक्ष्मी अपने दृढ निश्चय पर स्थिर रहती है और लेखक ने उसके सती होने का सजीव चित्रण किया है,—'भूमि ने इस समय देव-भूमि का रूप धारण किया है। सती को देवी समझ कर मनुष्य उसके चरण में कमल चढ़ाते और प्रणाम करते है। सती आन्तरिक बुद्धि के प्रभाव से सबको आर्शीवाद देती चली जाती है। पेशवा सरकार के संपूर्ण लशकर ने मान्यता करके सती को सम्मानित किया।'[2]

इस प्रकार पातिव्रत्यपूर्ण नारी विवेच्य लेखकों की आराध्य देवी के रूप में उभरी है। मध्ययुगीन सामन्ती सभ्यता एवं संस्कृति में स्वामिभक्ति तथा राज-भक्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चारित्रिक विशेषता थी। पति की अर्धांगिनी के रूप में नारी पति द्वारा स्वामिभक्ति एवं कर्त्तव्य-पालन करने में अपूर्व रूप से सहायक होती है तथा इसके लिए वह अपने प्राणों का बलिदान भी दे सकती है।

बाबूलाल जी सिंह के 'वीर बाला' तथा युगलकिशोर नारायण सिंह के 'राजपूत रमणी' मे मेवाड़ के राणा राजसिंह के मंत्री एवं सेनापति चूडावत जी की पत्नी हाड़ो रानी जब अपने कारण चूड़ावत जी के कर्त्तव्य-पालन तथा स्वामिभक्ति में रुकावट पहुँचते हुए देखती है, तो वह अपना सिर काट कर चूड़ावत जी को भेज देती है और दूत से कहती है,—'मैं अपना सिर तुम्हें देती हूँ इसे अपने स्वामी को मेरी ओर से भेंट स्वरूप देना और कहना कि हाड़ी जी पहले ही सती हो गई। अब आप अपने दिल से सब शंका त्याग कर रण-क्षेत्र मे जाइए। युद्ध में जौहर दिखाइए और सफल मनोरथ हूजिए। अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिए। मैं पहले ही से स्वर्ग में उनके स्वागत के लिए तैयार रहूंगी।[3] ठीक यही स्थिति लालजी सिंह के 'वीर बाला' में भी उभारी गई है,—'हाड़ीजी ने चट-पट लिखने का सामान लेकर एक पत्र लिख सेवक के हाथ में दिया और एक तीक्ष्ण खग उठा कर अपनी गर्दन पर मारी, फिर क्या देर थी सिर धड़ से अलग गिर पड़ा, रानी की सुन्दर प्रतिमा पृथ्वी पर छटपटाने लगी।'[4] भारतीय नारी के इस महान् पक्ष का उद्घाटन विवेच्य लेखकों की नारी के प्रति जीवन-दृष्टि का उदाहरण है।

ब्रजविहारीसिंह के 'कोटारानी' तथा श्यामलाल गुप्त के 'रूठी रानी' में पति की मृत्यु के पश्चात् रानी दुर्गावती तथा कोटा रानी राजनैतिक एवं कूटनीतिक

1. "पानीपत", पेज 363-364.
2. "पानीपत", बलदेवप्रसाद मिश्र, पेज 368.
3. "राजपूत रमणी", युगल किशोर नारायणसिंह, पेज 56-57.
4. "वीर बाला", पेज 49.

मामलों मे सक्रियता से भाग लेती हैं। रानी दुर्गावती गढ़ मण्डाले पर मुसलमान सेना के दो आक्रमणो को विफल करती है तथा तीसरे मे पराजित होकर लड़ाई में ही मारी जाती हे और लेखक कह उठता है—'दुर्गावती तुम धन्य हो। जब तक भारत का इतिहास रहेगा तब तक तुम्हारा नाम नही भूल सकता।'[1] इसी प्रकार 'कोटारानी' मे रानी अमीर सिंह की सहायता से शाहमीर द्वारा छीना गया अपना राज्य वापिस प्राप्त करने मे सफल होती हे। यह भारतीय नारी का एक अन्य स्वरूप है जिसे विवेच्य लेखकों ने उभारा है।

प० किशोरीलाल गोस्वामी तथा पडित बलदेवप्रसाद मिश्र के ऐतिहासिक उपन्यासो मे नारी की धारणा मूलतः सनातन हिन्दू-धर्म तथा लेखकों की समकालीन पुनर्उत्थानवादी सामाजिक चेतना की अन्तर प्रक्रिया द्वारा निर्मित हुई है। पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' मे नारी की सनातन हिन्दू-धर्मपरक धारणा का प्रतिपादन किया है। 'पार्वती जी का मंदिर' नामक अध्याय के आरम्भ मे उन्होंने एक पद्यांश प्रस्तुत किया है,—

"अहो धन-धन भारत की बाला।
जिनकी कीर्त्ति कथा सब जग मे गावत दस दिग्पाखा।।
पतिव्रत रहत सदा ही राखे स्वामि ईश सम जानी।।
रहि है नाम अमर युग युगलों जबलो राम कहानी।।"[2]

पेशवा बाला जी बाजीराव की पत्नी गोपिका बाई सदाशिवराव भाऊ को मुख्य सेनापति के रूप में उत्तर भारत की ओर भेजते समय जब उस पर संशय प्रकट करती है, तो[3] वह एक सामान्य स्त्री की चारित्रिक विशिष्टता का उद्घाटन करती है। नाना फडनवीस का उसकी पत्नी के साथ व्यक्तिगत प्रेम तथा कुसंगति में पडना आदि मिश्र जी की नारी-धारणा को स्पष्ट रूप से उभारते हैं। यहाँ उन्होंने पर स्त्री-गमन पर एक लम्बा भाषण दिया है।[4] तथा उससे शुद्धि का भी उपाय बताया हे।[5]

इसके साथ मिश्र जी ने नारी के सम्बन्ध मे समकालीन धारणा का भी चित्रण किया है। सदाशिवराव भाऊ जी की पत्नी स्त्रियों को भी युद्ध में साथ ले जाने के लिए कहती है।[6] इसी प्रकार दिल्ली विजय के समय तीन मराठा वीरागनाएँ पुरुष वेष में किले का दरवाजा खोलने मे सहायता करती हैं।[7] इस प्रकार यह लगभग आधुनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करती हैं।

1. "रानी दुर्गावती", श्यामलाल गुप्त, पेज 24.
2. "पानीपत", पृष्ठ 29.
3. वही, पेज 46–49.
4. वही, पेज 98–100
5. वही, पेज 101–102.
6. वही, पेज 43–44.
7. वही, पृष्ठ 278–280.

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने 'तारा' में मुगल शाहज़ादियों तथा राजपूत रमणियों के माध्यम से नारियों के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि का प्रतिपादन किया है। जहानआरा तथा रोशनआरा क्रमशः दारा तथा औरंगजेब की राजनैतिक स्तर पर सहायता करती हैं। जहानआरा का दारा तथा शाहजहान से अवैध सम्बन्ध औपन्यासिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं को नियोजित करता है। जहानआरा दारा को दिल्ली में तथा शेष भाइयों को बंगाल, कंधार आदि भेजने की बात कहती है।[1] इस प्रकार जहानआरा सारे 'मुसलमानी सल्तनत की कुँजी' अपने हाथ में रखती है जबकि रोशनआरा उसे हस्तगत करने के लिए विभिन्न षड्यंत्रों का नेतृत्व करती है, इस प्रकार सक्रिय राजनीति को नियोजित करती हुई मुगल शाहज़ादियाँ सामान्यतः अवैध रूप से शाहज़ादों एवं गुलामों के साथ सेक्स परक सम्बन्ध रखती हैं। इसके विपरीत तारा तथा रंभा जो राजपूत कुमारियाँ हैं दृढ़ एकनिष्ठ तथा उच्च स्तरीय चारित्रिक नैतिकता के पुँज के रूप में उभारी गई हैं। तारा के माध्यम से गोस्वामी जी ने नारी के सम्बन्ध में सनातन धर्म परक नारी धारणा का प्रतिपादन किया है—

भाजु भानु-प्रतिमा पै नैन उलूक चलावत,
साम, दाम, बहु, भेद, दंड, कर गहि नियरावत,
मेटन चहत, सनातन धर्म, दंग जग छावत,
क्षत्रियबाला लेन चहत है, यवन सलावत।।
यह अपनी 'भावी पत्नी' की दुसह कहानी,
सुनि, मन में करि ग्लानि, विचार करौ, यदि मानी।[2]

वह राजपूतों की जातीय उत्तमता के प्रति सजग है तथा जाति, धर्म एवं कुल के गौरव के प्रति जागरूक है—

भूलि न धर्म-जाति कुल गौरव विनसन दैहौं।
मरि जैहों, पै अधरम अरु अपजस नहिं लैहौं।
होइ राज हंसिनी यवन बक सौ अनुरागौं ?
गंगधार-सी विमल, कर्मनासा-रस पागौं ?
चंद छांडि, संग राहु रोहिनी कब अनुरागै ?[3]

इस प्रकार गोस्वामी जी ने नारी के सम्बन्ध में दो परस्पर विपरीत जीवन-दृष्टियों को 'तारा' में प्रतिपादित किया है।

पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने "रज़िया बेगम" में तथा व्रज नन्दन सहाय ने 'लालचीन' में नारी के सम्बन्ध में एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया है। 'रज़िया बेगम' की रज़िया तथा 'लालचीन' की कुलसुम को इन लेखकों ने क्रमशः

1. "तारा", पृष्ठ 4–5.
2. "तारा", भाग 3, पेज 19.
3. वही, पृष्ठ 17.

क्लियोपेट्रा तथा लेडी मैकवेथ के समान महत्त्वाकांक्षी रूप मे उभारा है। 'रजिया वेगम' मे रजिया सत्ता हस्तगत करने के पश्चात् उसका पूरा भोग करती है परन्तु सत्ता खो जाने के पश्चात् वह अपने प्रति अलतूनिया के प्रेम का प्रयोग अपनी महत्त्वाकांक्षाओं तथा सत्ता पुनः प्राप्त करने की योजनाओं की सिद्धि के लिए करती है। यह सब कुछ रज़िया सेक्सपरक परिस्थितियों के माध्यम से करती है। 'लालचीन' मे कुलसुम लालचीन द्वारा सत्ता हथियाने के लिए किए गए षड्यंत्रों मे सक्रिय भाग लेती है। जब लालचीन सम्राट के प्रति कुछ कोमल होता है तो कुलसुम अत्यंत भयावह रूप से उसे सम्राट के विरुद्ध विश्वासघात करने के लिए सन्नद्ध करती है। इस प्रकार नारी के सम्बन्ध मे यह जीवन-दृष्टि लेखकों की वहुमुखी प्रतिभा की परिचायक है।

प० शेरसिह काश्यप के 'आदर्श वीरांगना दुर्गा' मे दुर्गा अपने वहनोई द्वारा छुए जाने पर उसे काट कर फैंक देती है—"यह हाथ इस पापी और चण्डाल के छू लेने से इस योग्य नही रहा कि वूंदी के धर्मात्मा राजा की सेवा कर सके।"[1] अनुभवानन्द के 'यमुना वाई' मे भी लगभग इसी प्रकार की नारी-धारणा का प्रतिपादन किया गया है।

गंगाप्रसाद गुप्त ने 'हम्मीर' तथा 'वीर पत्नी' मे, जयन्तीप्रसाद उपाध्याय ने 'पृथ्वीराज चौहान' मे, अखौरी कृष्ण प्रकाशसिह ने 'वीर चूड़ामणि' मे, सिद्धनाथ सिह ने 'प्रणपालन' मे, तथा जयरामदास गुप्त ने 'काश्मीर पतन' मे, नारी के सम्बन्ध मे सामान्य मध्ययुगीन क्षत्रिय कुमारियों की धारणा का प्रतिपादन रासोयुगीन तथा रीतिकालीन वैचारिक धरातल पर किया है।

(iv) **दास-प्रथा**—दास-प्रथा मध्ययुगों की एक विशिष्ट एवं मौलिक समस्या है जो सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक धरातल पर उभरती है। पडित किशोरीलाल गोस्वामी ने "रजिया वेगम" मे तथा व्रजनन्दन सहाय ने 'लालचीन' मे दास-प्रथा के सम्वन्ध मे अपनी जीवन-दृष्टियो का निरूपण किया है। 'रजिया वेगम' मे याकूव तथा अयूव जो वास्तव मे एक वड़े घराने से सम्वन्धित थे और परिस्थितिवश उन्हे दास बनना पड़ा था। गुलामी के वारे में मौलिक रूप से सोचते हैं तथा अपनी स्थिति के लिए दैवी शक्ति को उत्तरदायी ठहराते है,—'ओफ ! उस पाक पर्वरदिगार की क्या शान है कि गुलाम का खानदान वादशाही करे और अमीर खानदान गुलामी की जजीर से मजवूर किया जावे।'[2] गोस्वामी जी दासों के प्रति अपना विचार मौसन के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त करते हे—"वी, गुलशन। यह तुम्हारा महज गलत खयाल है। क्या गुलामों को खुदा ने किसी और हाथ या

1. "आदर्श वीरांगना दुर्गा", शेरसिह काश्यप सन् 1912 राष्ट्रीय पुस्तक माला, अजमेर, पेज 40.
2. "रज़िया वेगम", पहला भाग, पेज 24.

मसाले से बनाया है और क्या गुलाम इन्सान ही नहीं, गोया, तुम्हारे खयाल से निरा हैवान है। जरा तो तुमने इस बात पर गौर किया होता है कि वह शख्स जिसका कि नाम अब मालूम हुआ है कि 'याक़ूब' है, कितना ख़ूबसूरत जवाँ-मर्द और दिलेर शख्स है।'[1]

'लालचीन' में ब्रजनन्दन सहाय दासत्व की परिभाषा लालचीन के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'दासत्व स्वयम् ही एक महायंत्रणा है। सेवा में मुझ से कभी त्रुटि नहीं हो सकती। किन्तु जब स्वामिभक्त दास उचित पुरस्कार नहीं पाता, उसका जी टूट जाता है और उसमें असंतोष की मात्रा अवश्य ही बढ़ जाती है।'[2]

यहाँ दास-प्रथा का चित्रण वर्ग भावना तथा प्रारब्ध से एक साथ प्रभावित हुआ है। गयासुद्दीन लालचीन से कहता है—'दासों के साथ राजकुमारों का सा बर्ताव नहीं किया जा सकता। दोनों एक कक्षा में नहीं रक्खे जा सकते।........मैं समझता हूँ कि स्वतन्त्र मनुष्यों की श्रेणी में गुलाम को बिठाना न्याययुक्त नहीं है। जब प्रारब्ध ने दासों को दासत्व की बेड़ी में जकड़ दिया है तब उन्हें उचित है कि वे अपनी अवस्था का यथार्थ ज्ञान रख हर्षपूर्वक अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह करें।"[3]

(४) **अन्य जीवन-दृष्टियाँ**—सांप्रदायिकता,[4] विवाह तथा प्रेम[5] के सम्बन्ध में विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर अपनी जीवन-दृष्टियों का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यास विशिष्ट जीवन-दर्शन एवं जीवन-दृष्टियों द्वारा अनुप्राणित होते हुए अपनी सार्थकता एवं अर्थवत्ता को प्रमाणित करते हैं।

---

1. "रज़िया बेगम", पहला भाग, पेज 28.
2. "लालचीन", ब्रजनन्दन सहाय, पेज 5.
3. वही, पेज 5-6.
4. साम्प्रदायिकता के प्रति लेखकों की जीवन-दृष्टि के सम्बन्ध में चौथे एवं पाँचवें अध्याय में अध्ययन किया गया है।
5. ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस की ओर जाने की प्रवृत्ति के अन्तर्गत इनके प्रति लेखकों की जीवन-दृष्टि का अध्ययन चौथे अध्याय में किया गया है।

ऐतिहासिक रोमांसकार तथा ऐतिहासिक-रोमांसों में रोमांस के अनेकरूपेण संबंध

ऐतिहासिक रोमासो में तथ्यों की प्रामाणिकता तथा ऐतिहासिक उपन्यासों मे कल्पना की विश्वसनीयता के प्रश्न अनेक कथारूपों और व्याख्याओं को उभारते है। विशेष रूप मे ऐतिहासिक रोमांसों मे रोमांसकारों के युग का तथा इतिहास-खण्ड का एक विचित्र अन्तर-रूपान्तरण होता है। हम इसकी छानबीन करेंगे।

इसके अलावा ऐतिहासिक रोमांसकार अपने युग की यथार्थता और अपनी जीवन-दृष्टियों तथा सामाजिक दर्शनों से भी प्रभावित होते है। इनके सयोग से भी रोमांस के अनेक रूपेण सम्बन्ध उभरते है। इस अध्याय मे हम इनका भी अन्वेषण करेंगे।

(I) ऐतिहासिक रोमांसों में रोमांस के तत्त्व

ऐतिहासिक रोमांस, इतिहास अथवा अतीत (ऐतिहासिक अतीत नही) के साथ रोमास के अन्यान्य तत्त्वो के कलात्मक सम्मिलन से अपने साहित्य-रूप की विशिष्टिता प्राप्त करता है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों मे अधिकाँशतः भारतीय मध्ययुगों को कथाभूमि का आधार बनाया गया है। सामान्यत., इस कालखण्ड में केन्द्रीय राज्यसत्ता हिन्दू राजाओं से छिन चुकी थी। कुछ राजाओं ने केन्द्रीय मुसलमान शासकों की अधीनता स्वीकार कर ली थी, कुछ स्वतन्त्रता की भावना एवं जातीय-अभिमान से प्रेरित होकर निरन्तर मुसलमान सम्राटों के साथ सघर्ष करते रहे। अपेक्षाकृत कम संख्या एव शक्ति के साथ विशाल एव प्रवल केन्द्रीय सत्ता के साथ सघर्ष, शौर्यपूर्ण जीवन के चित्रण के लिए उपयुक्त भूमि प्रदान करता है। शौर्यपूर्ण जीवन-रोमांसों का मूल तत्त्व है।

यद्यपि मध्य-युगो का शौर्यपूर्ण जीवन प्राचीन युगो के नायकत्व-पूर्ण जीवन मे भिन्न अपना अस्तित्व रखता है, परन्तु विवेच्य उपन्यासो मे शौर्यपूर्ण जीवन के चित्रण एवं प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया मे नायकत्व-पूर्ण जीवन की कई विशेषताएँ भी आ गई हैं। इसका मुख्य कारण लेखकों की हिन्दू राजाओं एवं योद्धाओं के प्रति अनन्य भक्ति

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों के ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्वों एवं इतिहास विचारों यथा स्वयंवर एवं दिग्विजय, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, शूरता एवं कामुकता तथा इतिहास एव काल के प्रवाह में अन्त:पुर, राज-सभा, युद्ध-स्थल एवं मन्त्रणा-गृह आदि के प्रभाव का चित्रण किया गया है ।

इन वैयक्तिक तत्त्वों का समावेश अतिरंजित रूप में किया गया है। मौलिक मानवीय भावनाओं एवं भावावेगों का अतीत की ऐतिहासिक अथवा अनैतिहासिक कथा-भूमि में प्रक्षेपण ऐतिहासिक रोमांसों के कलात्मक मूल्य को अतिरिक्त महत्त्व प्रदान करता है ।

(क) **समकालीन युग के विशिष्ट तत्त्व**—उपन्यासकार के वैयक्तिक तत्त्वों के साथ-साथ उसके युग के विशिष्ट तत्त्व ऐतिहासिक रोमांसों में अप्रत्यक्ष रूप से उभर कर आते हैं। ऐतिहासिक अतीत के पुर्ननिर्माण में जिस प्रकार लेखक अथवा इतिहासकार के युग के मान-दण्ड इतिहास की प्रक्रिया को नियोजित करते हैं, ऐतिहासिक रोमांसों में समकालीन युग के विशिष्ट तत्त्व उससे कुछ परिवर्तित रूप में रोमांसों में अभिव्यक्त किए जाते हैं।

(1) **नारी-उद्धार एवं समाज-सुधार**—यद्यपि विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकार हिन्दू धर्म के प्राचीन एवं सनातन स्वरूप एवं धारणाओं को पुनः स्थापित करने के पक्षपाती थे तथापि वे आंशिक रूप से नारी-उद्धार[1] तथा समाज-सुधार मे भी रुचि रखते थे। इसमें नारी शिक्षा तथा समाज के अन्यान्य अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों के विरुद्ध अपने मत का प्रतिपादन करना भी सम्मिलित है । सामान्यत: विवेच्य लेखक नारी के परम्परागत स्वरूप एवं उसके सम्बन्ध मे धारणाओं के पक्षपाती थे जबकि वे उसे आदर्श रूप में प्रस्तुत करते है ।

किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक रोमांसों का नामकरण इसी आधार पर किया गया है। उदाहरणतः 'हृदयहारिणी' मे कनकलता को 'आदर्श रमणी', 'लवंगलता' में लवंग को 'आदर्श बाला' तथा 'मल्लिकादेवी' में मालती को 'बंगसरोजिनी' कहा गया है। 'लवंगलता' तथा 'मल्लिका देवी' में नायिकाओं का मुसलमान शासकों द्वारा अपहरण किया जाता है तथा नायक उनका उद्धार करते हैं । इसी प्रकार 'हृदयहारिणी' में भी नायक-नायिका का एक मतवाले हाथी द्वारा कुचले जाने से बचा कर उद्धार करता है ।

इसी प्रकार जयरामदास गुप्त ने 'किशोरी वा वीर बाला' में किशोरी को 'वीर बाला' के रूप में तथा 'वीर वीरांगना' में कनकलता को वीरांगना एव आदर्श ललना के रूप में वर्णित किया है। कनकलता अन्त में अहमदशाह को कटार से मार कर इसे चरितार्थ करती है । 'किशोरी वा वीर बाला', 'माया रानी', 'कलावती', 'प्रभात

1. नारी. उद्धार के सम्बन्ध में विवेच्य लेखको की धारणाओं का अध्ययन नारी के सम्बन्ध मे उनकी जीवन दृष्टि शीर्षक के अन्तर्गत पाँचवें अध्याय में किया गया है ।

कुमारी' तथा 'रानी पन्ना' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में भी जयरामदास गुप्त ने राजपूत नारियों की वीरता का चित्रण किया है।

कार्तिकप्रसाद खत्री के 'जया' में जया का चरित्र तब बहुत जटिल हो जाता है, जब एक ओर वह एक वीर क्षत्राणी के रूप में उभरती है तथा दूसरी ओर अत्यन्त कोमल एवं रोमांसिक नायिका के रूप में,[1] यहाँ भी सरफ़राज द्वारा हरण किए जाने के पश्चात् जया का नायक वीरसिंह द्वारा उद्धार किया जाता है।

गंगाप्रसाद गुप्त के 'नूरजहाँ', बलदेवप्रसाद मिश्र के 'अनारकली,' जयराम लाल रस्तोगी के 'ताजमहल व फतहपुरी बेगम' तथा मथुराप्रसाद शर्मा के 'नूरजहाँ' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में मुसलमान नायिकाएँ सामान्यतः सेक्सपरक एवं रोमांसपरक कामुकता की चारित्रिक विशेषताओं से युक्त हैं। यहाँ नारी-सुधार अथवा नारी-उद्धार के स्थान पर नारी का सेक्स की दृष्टि से शोषण किया गया है।

युगों के दासत्व के कारण हिन्दू समाज, संस्कृति एवं धर्म अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हो चुके थे। इसके उद्धार एवं सुधार के लिए ब्रह्म-समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी तथा रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएँ सक्रिय रूप से क्रियाशील थीं।[2]

विवेच्य ऐतिहासिक रोमाँसकारों के युग का यह एक विशिष्ट तत्त्व था जिसने लगभग सभी ऐतिहासिक रोमांसों की रचना-प्रक्रिया को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया।

नारी-उद्धार एवं समाज-सुधार के तत्त्वों का विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में सम्मिलन लेखकों की रचना-प्रक्रिया के सिद्धान्तों के अनुकूल उभर कर आया है। ये दोनों तत्त्व मूलतः रोमांसिक प्रवृत्तियों के विपरीत होते हुए भी लेखकों के युग के एक सशक्त इतिहास-विचार एवं साहित्य-विचार होने के कारण विवेच्य कृतियों में उभर कर आए हैं।

(ख) ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्व—लेखक तथा उनके युग के वैयक्तिक तत्त्वों के साथ-साथ विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में ऐतिहासिक अथवा अतीत काल के विशिष्ट एवं निजी तत्त्वों को भी समाविष्ट किया गया है। इन तत्त्वों के आधार पर घटनाओं के चुनाव तथा उनका अतिरंजित चित्रण रोमांसकार की उनके प्रति गहन रुचि का परिचायक है।

(i) स्वयंवर एवं दिग्विजय—स्वयंवर एवं दिग्विजय की मूल इतिहास-धारणा मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासों में एक पारम्परिक इतिहास-विचार के रूप में उभर कर आई है तथा ऐतिहासिक रोमांसों में ये धारणाएँ अप्रत्यक्ष रूप में उभर कर

1. 'जया' कार्तिकप्रसाद खत्री, पृष्ठ 27 तथा 6
2. चौथे अध्याय में सांस्कृतिक पुनर्जागरण शीर्षक के अन्तर्गत समाज-सुधार के अन्यान्य प्रयासों का अध्ययन किया गया है।

आती है जबकि राजकुमारी अथवा नायिका अपने वर का स्वयं चुनाव करती है तथा विवाह से पहले नायक-नायिका का मिलन तथा उनके भावावेगो का चित्रण किया जाता है।

इसी प्रकार अपेक्षाकृत कम संख्या में होने पर भी शक्तिशाली मुसलमान शत्रुओं का सामना करते समय राजपूतों की अपार वीरता एवं अनुपम शौर्य दिग्विजय की इतिहास धारणा का आभास देते हैं।

स्वयंवर तथा दिग्विजय की धारणा यहाँ राज्यश्री तथा कीर्ति की धारणा के साथ-साथ उभरी है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता' तथा 'हृदयहारिणी' में नरेन्द्र का लॉर्ड क्लाईव की ओर से प्लासी की लड़ाई में भाग लेना इसी का परिचायक है। 'मल्लिका देवी' में नरेन्द्रसिंह का गयासुद्दीन वलवन के साथ मिलकर तुगरलखाँ को पराजित करना भी राजसी कीर्ति, राज्यश्री एवं दिग्विजय के आभास को प्रतिबिम्बित करते हैं। 'कनक कुसुम वा मस्तानी' में केवल पच्चीस सवारों के साथ पेशवा बाजीराव का निजाम की दो हजार सेना के साथ भिड़ जाना तथा उनमें से अधिकांश को युद्ध-क्षेत्र में ही खेत कर देना लेखक की इसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

कार्तिकप्रसाद खत्री के 'जया' में वीरसिंह द्वारा अलाउद्दीन के सिपह-सालार सरफराज खाँ को पराजित करना तथा जया का उद्धार करना यद्यपि एक सामान्य घटना है तथापि राजपूतों के संख्या में कम होने तथा प्रबल शत्रु को पराजित करने से दिग्विजय की प्राचीन इतिहास धारणा का आभास मिलता है।

इसी प्रकार जयरामदास गुप्त के 'वीर-वीराँगना वा आदर्श ललना' में पर्वत-सिंह अपने सामन्तों तथा योद्धाओं के साथ सिन्ध के नवाब अहमदशाह के विरुद्ध युद्ध करता हुआ रणभूमि में ही खेत रहता है। युद्ध-भूमि में शत्रु के साथ लड़ते हुए मर जाने में जिस मध्ययुगीन राजपूती एवं सामन्तवादी नैतिकता को उभारा गया है वह दिग्विजय तथा राज्यश्री की इतिहास धारणाओं के साथ जुड़ी हुई है।

विवेच्य लेखक स्वयंवर का चित्रण पारम्परिक ढंग से करते हैं। गंगाप्रसाद गुप्त के 'वीर पत्नी' तथा जयन्तीप्रसाद उपाध्याय के 'पृथ्वीराज चौहान' में स्वयंवर का वर्णन लेखकों की रुचि के परिचायक हैं, यद्यपि ये दोनों इतिहास कथा पुस्तकें ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में आती हैं तथापि इनका भारतीय मध्ययुगों के विशिष्ट वैयक्तिक तत्त्वों के साथ गहन सम्बन्ध है।

(ii) हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष—हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में वर्णित भारतीय मध्ययुगों का मुख्य एवं केन्द्रीय इतिहास विचार था जिसने विवेच्य लेखकों को सर्वाधिक प्रभावित किया। वास्तव में लेखक स्वयं इस साम्प्रदायिक इतिहास दृष्टि के पक्ष में थे कि मुसलमान शासक सदियों तक अपनी हिन्दू जनता का

शोषण करते रहे है। मुसलमान शासकों के साथ-साथ मुसलमान इतिहासकारों के प्रति भी इन लेखकों ने स्पष्ट रूप से अविश्वास की घोषणा की है।[1]

प्रेमचन्द पूर्व लगभग सभी ऐतिहासिक रोमांसों मे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का अतिरंजनापूर्ण वर्णन किया गया है।

प० किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता' तथा 'हृदयहारिणी' में नरेन्द्र तथा मदनमोहन लॉर्ड क्लाईव के साथ मिलकर बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध युद्ध मे भाग लेते है। 'कनक कुसुम व मस्तानी' नामक ऐतिहासिक रोमांस में पेशवा बाजीराव बहुत कम सवारों के साथ ही निज़ाम की दो सहस्त्र सेना के साथ युद्ध के लिए जूझ पड़ते है। यह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों की मुसलमान-विरोधी इतिहास-धारणा तथा हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के इतिहास-विचार का उत्तम उदाहरण है। 'मल्लिका देवी वा वंग सरोजिनी' नामक ऐतिहासिक रोमांस में गोस्वामीजी उपन्यास के नायक नरेन्द्र को बंगाल के नवाब तुगरल खाँ के विरुद्ध बलबन की सहायता करते हुए दर्शाकर हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के स्थानीय स्वरूप को उभारते हैं। यह इसलिए कि नरेन्द्र केन्द्रीय शासक बलबन की स्थानीय शासक तुगरल के विरुद्ध सहायता करता है।

गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुंवरसिंह सेनापति' तथा 'वीर जयमल व कृष्ण कान्ता' नामक ऐतिहासिक रोमांसों मे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की मध्ययुगीन इतिहास-धारणा का प्रतिपादन किया गया है। 'कुंवरसिह सेनापति' में नायक कुंवरसिंह तथा रसीद खाँ की आपसी टकराहट[2] का चित्रण हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को अच्छे एवं बुरे तथा नैतिक एवं अनैतिक स्तरो पर उभारता है। 'वीर जयमल व कृष्ण कान्ता' में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष स्थानीय राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में उभरा है।

जयरामदास गुप्त के 'किशोरी वा वीर बाला', 'वीर वीरांगना' तथा 'प्रभात कुमारी' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का स्वरूप राजपूतों की मध्ययुगीन नैतिकता तथा सामन्तवादी प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में तथा हिन्दू राष्ट्रीयता के संदर्भ मे उभारा गया है।

कार्तिकप्रसाद खत्री के 'जया' में अलाउद्दीन द्वारा अपने सिपहसालार सरफराज खाँ को 'जया' को हस्तगत करने के लिए भेजने के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थिति के कारण राजपूतों तथा मुसलमानों के कई युद्धों के रूप मे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का इतिहास-विचार उभारा गया है।

यद्यपि ऐतिहासिक रोमांसों में ऐतिहासिक अतीत के स्थान पर लोकातीत के चित्रण को प्राथमिकता दी जाती है तथापि विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों ने हिन्दुओं एवं राजपूतों की शूरवीरता तथा मुसलमानों की अनैतिकता एवं यौनाचार

1. देखिए, 'तारा' का निवेदन।
2. 'कुंवर सिंह सेनापति' गंगाप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 14-20.

की धारणा को उभारने के लिए भारतीय इतिहास के मुसलमान युग को अपने ऐतिहासिक रोमांसों की कथा-भूमि का आधार बनाया है। जहाँ उन्हें हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के मध्ययुगीन इतिहास-विचार को उभारने के लिए उपयुक्त भूमि प्राप्त होती है।

(iii) शूरता एवं कामुकता—विवेच्य रोमांसकारों ने सामान्यतः अपनी कृतियों के प्लाट के लिए मुसलमान युगों को ही चुना है। महमूद गजनवी के आक्रमण से लेकर दिल्ली के अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह तक के काल खण्ड में शूरता तथा कामुकता दोनों ऐतिहासिक युगों के वह विशिष्ट तत्त्व हैं जो विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों की रचना-प्रक्रिया को गहराई तक प्रभावित करते हैं।

एक सशक्त मुसलमान केन्द्रीय शक्ति के विरुद्ध हिन्दू रजवाड़ों के राजाओं के संख्या में बहुत कम होने पर भी प्रबल विरोध किया जाना शूरता की धारणा के अनुरूप है और विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों ने अपनी कृतियों में इसका विपुलता से प्रयोग किया है।

इन ऐतिहासिक रोमांसों में शूरता की इतिहास-रोमांस-धारणा, कामुकता तथा अश्लीलता[1] के तत्त्वों के साथ मिलकर उभरी है। सामान्यतः मुसलमान शासकों के कामुकता द्वारा प्रेरित अभियानों का सामना करने के लिए हिन्दू शासकों द्वारा उनका वीरतापूर्वक सामना किया जाना भारतीय मध्ययुगों के शूरता एवं कामुकता के विचार के अनुरूप चित्रित किया गया है। उदाहरणार्थ जयरामदास गुप्त के 'वीर वीरांगना व आदर्श ललना' में राजकुमारी कनकलता को प्राप्त करने के लिए जब सिन्ध का नवाब अहमदशाह आक्रमण करता है, तो पर्वतसिंह उसका सामना करते हुए रणभूमि में ही स्वर्गलोक को सिधार जाता है। इसी प्रकार सरफराज खाँ अलाउद्दीन के लिए जया का अपहरण करता है जबकि नायक वीरसिंह उसका उद्धार करता है।

इस प्रकार मुसलमान शासकों की कामुकता तथा हिन्दू शासकों की शूरता एक दूसरे के पूरक के रूप में इतिहास एवं ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया को नियोजित करती है।

(iv) अन्तःपुर, राज-सभा, युद्ध-स्थल, मंत्रणा-गृह एवं आश्रम—विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में भारतीय अतीत के जिन युगों का पुनर्निर्माण किया गया है उन काल-खण्डों में अन्तःपुर, राजसभाएँ, युद्ध-स्थल, मंत्रणा-गृह एवं आश्रम आदि वे विशिष्ट स्थल होते थे, जो दरबारी संस्कृति के इतिहास विचार के अनुरूप समस्त राजनैतिक निकाय को गति देने के साथ-साथ उसे नियोजित भी करते थे।

1. कामुकता तथा अश्लीलता के सम्बन्ध में विवेच्य लेखकों की धारणाओं का 'ऐतिहासिक रोमांसों में कामुकता' तथा 'ऐतिहासिक रोमांसों में अश्लीलता' शीर्षकों के अन्तर्गत छठे अध्याय में विशेष अध्ययन किया गया है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में अन्तःपुर, राज-सभाएँ, युद्ध-स्थल एवं मंत्रणा-गृह ऐतिहासिक एवं राजनैतिक घटनाओं को नियोजित करने वाले निकाय के स्थान पर शासक के नितान्त व्यक्तिगत मामलों को, जो कि सामान्यतः किसी नारी को प्राप्त करने से सम्बन्धित होते थे, को ही मुख्य स्थान दिया गया है।[1]

भारतीय मध्ययुगों के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में जब इतिहास और अतिकल्पना मिलते है तो युद्ध-स्थल एव मन्त्रणा-गृह का चित्रण अधिक सजीव हो जाता है। इन ऐतिहासिक रोमांसों में मन्त्रणा-गृह तथा युद्ध-स्थलों को रोमांसिक धारणाओं के आधार पर उभारा गया है। वास्तव मे यह रोमांसिक आधार भारतीय मध्ययुगों का एक विशिष्ट तत्त्व है।

विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में लेखकों की वैयक्तिकता, उनके युग के विशिष्ट तत्त्व तथा कृतियों में वर्णित ऐतिहासिक काल के विशिष्ट तत्त्वों का समावेश अतीत के पुनर्निर्माण को अधिक सजीव एवं बुद्धिगम्य बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

(II) ऐतिहासिक रोमांसों में तथ्यों तथा घटनाओं की अवनमिल (असामान्य) विकृतियाँ

ऐतिहासिक रोमांसों मे रोमांस के तत्त्वों के सम्मिलन से उनमें आंशिक रूप से दुष्कर एवं असंभव घटनाओ एव प्रसंगों की उद्‌भावना की कलात्मक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में घटनाओं एव तथ्यों की असामान्य विकृतियाँ प्रेमचन्दपूर्व के साहित्यिक युग की विशिष्ट प्रवृत्तियों के प्रमाण-स्वरूप उभर कर आई है।

रोमांस के अन्यान्य तत्त्वों यथा बौद्धिकता विरोध, शास्त्रीयता विरोध, समकालीनता विरोध तथा जादू-टोना आदि का ऐतिहासिक रोमांसों में प्रयोग करने की प्रक्रिया में सामान्यतः अलौकिक, असम्भव एवं असामान्य तत्त्व इन कथा-रूपों मे उभर कर आते है।[2] रोमांस के ये तत्त्व कृतियों में तथ्यों तथा घटनाओं की असामान्य विकृतियो का कारण बनते है।

रोमांसों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में 'अति' उपसर्ग का बहुत प्रयोग होता है। यह प्रयोग भी तथ्यों तथा घटनाओं की अवनमिल विकृतियों के लिए उत्तरदायी है। विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों मे सामान्यतः सेक्स, जाति, घटनाओं तथा युगों की धारणाओं के संबंध में तथ्यों एव घटनाओं को असामान्य रूप से विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सेक्स

यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में एक साथ और लगभग एक ही ढंग से सेक्स तथा उसकी समस्याओं का चित्रण एवं प्रतिपादन

1. ऐतिहासिक रोमांसों मे अन्तःपुर एव राजसभा की स्थिति का विधिवत् अध्ययन चौथे अध्याय मे किया गया है।
2. ऐतिहासिक रोमांसो में 'कामकता के तत्त्व' शीर्षक के अन्तर्गत छठे अध्याय मे इस विषय का अध्ययन किया गया है।

किया गया है तथापि ऐतिहासिक रोमांसों से सामान्यतः सेक्स का रूप असमान्य रूप से विकृत हो गया है। यहाँ कामुकता तथा अश्लीलता के माध्यम से सेक्स का चित्रण किया गया है।[1]

सेक्स के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विकृति यह है कि विलास-लीलाओं का चित्रण करने की प्रक्रिया में पतन दिखाते-दिखाते लेखक पतन का भोग करने लगते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसकार मानवीय अतीत के पुनिर्माण की प्रक्रिया में निर्वैयक्तिक चित्रण के स्थान पर स्वयं भागीदार बन जाते हैं। अन्तःपुरों, ख्वाबगाहों, प्रेम तथा नारी को लेकर वे सामान्यतः उनके स्वरूप को असामान्य रूप से विकृत कर देते हैं।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लखनऊ की कब्र' तथा 'लालकुंवर' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में सेक्स की अभिव्यंजना इतने अतिरंजित रूप में की है कि वे विकृत हो गई हैं। उदाहरणतः 'लखनऊ की कब्र' के लगभग सभी भागों में अवैध यौन सम्बन्ध, वेश्या-वृत्ति तथा नसीरुद्दीन हैदर की अदम्य सेक्स कामना इसके उदाहरण हैं। 'लखनऊ की कब्र' के चौथे हिस्से के सातवें, आठवें, नवें तथा दसवें[2] बयान में शाहजादे द्वारा मशहूर रण्डी मुश्तरी के पास जाने का, रण्डियों के हावभाव का अतिरंजित चित्रण तथा नसीर द्वारा सभी वस्तुओं के दाम दिए जाने की परिस्थिति उत्पन्न करके उसके ठगे जाने की प्रक्रिया का चित्रण यद्यपि सजीव एवं वास्तविक है तथापि लेखक उसका चित्रण करते समय स्वयं उसमें भागीदार बन जाता है।

इसी हिस्से के तेरहवें बयान में (पृष्ठ 88-97) लियाकत जिसने नसीरुद्दीन को मुश्तरी से मिलवाया था दो और नाजनीनों से मिलवाता है। यहाँ भी शाहजादे की कामुकता का विकृत चित्रण किया गया है,—'वे दोनों निहायत हसीन, कमसिन और नजाकत से भरी हुई थीं, यहाँ तक कि अगर वे बाजार में बैठतीं तो उनकी सानी की खुबसूरत रण्डी शायद देहली में न दिखलाई देती, पर उनके हुस्न और भोले-पन को देख कर शाहजादा सन्नाटे में आ गया और जहाँ वे दोनों बैठ गई थीं, वहीं जाकर वह भी बैठ गया।'[3] इसी प्रकार पहले हिस्से में यूसुफ नाम के चित्रकार का शाहीमहल की बेगमों के पास रह कर उनके साथ विलास की लीलाएँ तथा मधुचर्या आदि वास्तविक तो हो सकते हैं, परन्तु उनका विकृत रूप से चित्रण किया गया है। इसी हिस्से के चौथे बयान में एक ऐसे अमीर मुसाहब की दास्तान लिखी गई है जो दिल्ली की मुश्तरी नामक रण्डी के जाल में फंस कर शाही महलों में पहुँचता है,—'एक हफ्ते तक मैंने उस परीजमाल के साथ····मजे उड़ाए और उसने अपने कमरे के करीब ही एक····तिलस्मी कोठरी में मुझे छिपा रक्खा। आठवें रोज जब मैं नींद से

1 ऐतिहासिक रोमांसों में 'कामुकता' तथा 'अश्लीलता' शीर्षकों के अन्तर्गत छठे अध्याय में इस विषय का अध्ययन किया जा चुका है।

2. लखनऊ की कब्र, चौथा हिस्सा, पृष्ठ 39-65.

3. वही, पृष्ठ 93

जागा तो मैंने अपने तईं इस अजीब इमारत के अन्दर पाया'[1] जहाँ वह घुटघुट कर मर गया।

तीसरे हिस्से के दसवें परिच्छेद मे शाहज़ादा नसीरुद्दीन हैदर नकली दुलारी के साथ यौनाचार करता है तथा वह नसीर का सारा जर वा जवाहिर उससे ठग लेती है। 'नसीरुद्दीन,—'हाँ, इस सदूक मे एक करोड़ रुपये की लागत के जवाहिरात वगैरह है।'

यह सुन कर दुलारी बड़े प्यार के साथ नसीरुद्दीन के सीने से लिपट गई और बहुत ही नखरे से कहने लगी—

"वल्लाह, मैं तो आज यह संदूक ही तुमसे तोहफे मे लूँगी।" नसीरुद्दीन—(उसके चम्पई गालो को प्यार से चूम कर) 'माहेलका, तुम्हारे हुस्न के ऊपर ये सब सदके है। ! !"[2]

'लखनऊ की कब्र' के समान 'लाल कुंवर वा शाही रग महल' मे भी किशोरी-लाल गोस्वामी ने 'ईद की मजलिस' नामक परिच्छेद मे जहाँदार का अपने राज-दरबार मे गानेवालियो तथा रण्डियों के साथ व्यवहार का अतिरजित एव विकृत चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त लाल कुंवर नामक एक वेश्या के साथ ईद मनाने का कार्यक्रम बनाने के बाद भी वह और स्त्री प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करता रहता है। अपनी व्याही हुई बेगमो के सम्बन्ध मे वह उन्हे चुड़ैले कह कर पुकारता है।[3] यहाँ सेक्स का स्वरूप अत्यन्त विकृत हो जाता है।

गगाप्रसाद गुप्त के 'नूरजहाँ' मे जहाँगीर का मेहरुन्निसा के प्रति प्रेम सेक्स की विकृति का उदाहरण है। जब मेहरुन्निसा की शादी शाह अफगन से हो जाती है, तो वह गुलबदन नामक कुटनी को मेहरुन्निसा को अपनी ओर वरगलाने के लिए उसके पास भेजता है। जहाँ वह कई अमानुषिक कार्य करती है।[4] जब गुलबदन कुटनी असफल होकर लौटती है, तो जहाँगीर बुन्देलखण्ड के राजा नरसिंह को अबुल-फज़ल के कत्ल करने का काम सौपता है।[5] जिसे वह पूरा करता है।[6] बादशाह बनने के पश्चात् वह कई बहानो से शेर अफगन की मृत्यु करवा कर स्वयं नूरजहाँ के साथ शादी करता है। इस प्रकार से सेक्स का अत्यन्त विकृत रूप उभारा गया है।

जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह' मे भी सेक्स का विकृत रूप मे चित्रण किया गया है। नवाब वाजिदअली शाह का विलास, उसकी

1. 'लखनऊ की कब्र,' पहला भाग, पृष्ठ 33-34
2. 'लखनऊ की कब्र,' तीसरा भाग (हिस्सा), पृष्ठ 86-90.
3. 'लालकुँवर,' पृष्ठ 25.
4. 'नूरजहाँ' गगाप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 56-63.
5. वही, पृष्ठ 68.
6. वही, पृष्ठ 76.

मधुचर्या तथा नित्य नई-नई नाजनियों को अपने हरम में दाखिल करना आदि सभी कुछ इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। 'नवाब और रोशनआरा' नामक झलक में नवाब रोशनआरा नामक स्त्री को अपने हरम में दाखिल करने के लिए कई लालच वगैरह देता है।[1] नवाब के साथ -साथ शाही हरम की बेगमें भी अन्य लोगों के साथ अपने यौनपरक सम्बन्ध रखती हैं जो कि सेक्स के विकृत रूप को उभारता है। 'अब भी उज्र है' नामक झलक में जहाँनआरा नामक बेगम शमशेर के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।[2] जब जहाँनआरा शमशेर से प्रणय निवेदन करती है और वह कहता है कि 'मेरा धर्म आड़े आता है,' तो जहाँनआरा उससे कहती है,—'आह धर्म यह कौन सी बड़ी बात है। इसको तो हम सब लोग मामूली समझती हैं मगर आपको जो इसका ख्याल हो, तो जिस तरह आप इतने दिनों तक रहे हैं, उसी तरह हमेशा रह सकते हैं।....आप तो मर्ला इस जगह आराम से रहेंगे, मगर आप ही के ऐसे और तो महल में खोजों के भेष में दिन को खिदमतगुजारी किया करते हैं।"[3]

इस प्रकार लगभग सभी ऐतिहासिक रोमांसकारों ने सेक्स को असामान्य रूप से विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि सेक्स की ये विकृतियाँ सामान्यतः मुसलमान पात्रों के माध्यम से उभर कर आई हैं।

जाति—विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकार सामान्यतः मुसलमान विरोधी धारणा के प्रबल पोषक थे। इस विशिष्ट जीवन-दृष्टि को उभारने के लिए वे सामान्यतः अतीत के युगों का पुनर्निर्माण करते समय मुसलमान पात्रों को बहुत बुरा तथा उसके विपरीत हिन्दू पात्रों को अत्यन्त नैतिकतापूर्ण एवं आदर्श रूप मे चित्रित करते है। जातीयता के सम्बन्ध में यह विचार-धारा यद्यपि कुछ अंशों तक ऐतिहासिक रूप से सत्य भी हो सकती है परन्तु इसका अतिरंजित चित्रण करके इसे विकृत बना दिया गया है। मुसलमान-विरोधी धारणा तथा हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष[4] मध्ययुगीन भारत में राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साम्प्रदायिक[5] धरातलों पर उभरा है।

प० किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता', 'हृदयहारिणी' 'मल्लिका देवी' तथा 'कनक कुसुम' नामक ऐतिहासिक रोमांसो में हिन्दू पात्रों को अत्यन्त उच्च-स्तरीय एवं अति मानवीय तथा मुसलमान पात्रों को दुराचारी एवं अति दानवीय

1. 'नवाबी परिस्तान'. दूसरा भाग पृष्ठ 10-13.
2. 'नवाबी परिस्तान,' दूसरा भाग, पृष्ठ 67-70.
3. वही, पृष्ठ 69-70.
4. हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष तथा मुसलमान विरोधी धारणा के सम्बन्ध में पाँचवें अध्याय में 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' शीर्षक के अन्तर्गत लेखकों की इस विचार-दृष्टि का विधिवत् अध्ययन किया जा चुका है।
5. साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों की धारणाओं का अध्ययन 'ऐतिहासिक रोमांसों में साम्प्रदायिकता' शीर्षक के अन्तर्गत छठे अध्याय में किया जा चुका है।

धरातलों पर उभारा गया है, जो जाति के सम्बन्ध में लेखक की धारणा के विकृत स्वरूप का परिचायक है।

गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुंवरसिंह सेनापति' तथा 'वीर जयमल वा कृष्णकांता', जयरामदास गुप्त के 'किशोरी वा वीर बाला','मायारानी,' 'कलावती', 'प्रभातकुमारी एवं वीर वीरांगना' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में भी लेखकों की जातीय धारणा का विकृत स्वरूप उभर कर आया है।

कातिक प्रसाद खत्री के 'जया' में राजपूतों को अत्यन्त स्वामिभक्त तथा शौर्यपूर्ण[1] रूप में चित्रित किया गया है जबकि अलाउद्दीन[2] तथा उसके सिपहसालार सरफ़राज खाँ[3] को अतिदानवीय रूप में उभारा गया है। अलाउद्दीन जया को पाने के लिए उसके पिता रतनसिंह को कैद कर लेता है और उन्हें कष्ट पहुँचाता है जबकि सराफराजखाँ अलाउद्दीन के मरने का समाचार पाकर स्वयं ही जया के साथ बलात्कार करने को तत्पर होता है।

इस प्रकार जातीय स्तर पर हिन्दुओं को अत्यन्त आदर्श एवं नैतिक तथा मुसलमानों को कामुक एव अति दानवीय रूप में उभारते समय विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकार तथ्यों तथा घटनाओं को असामान्य रूप से विकृत कर देते हैं।

घटनाएँ—विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों में भारतीय मध्ययुगों का पुनर्निर्माण करने की प्रक्रिया में अपनी मौलिक जीवन-दृष्टि एवं जीवन-दर्शन के अनुरूप विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों ने घटनाओं को विकृत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि ऐतिहासिक रोमांसों में ऐतिहासिक प्रमाणिकता के बन्धन पर्याप्त सीमा तक ढीले पड़ जाते हैं, परन्तु घटनाओं के स्वरूप को विकृत रूप में प्रस्तुत करना विवेच्य लेखकों का एक निश्चित एवं विशिष्ट जीवन-दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध होना ही उत्तरदायी है।

भारतीय मध्ययुगों की अन्यान्य घटनाओं का चित्रण करते समय विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसकारों ने हिन्दुओं के कार्यों तथा अभियानों को बलिदान तथा त्याग के रूप में चित्रित किया है जबकि मुसलमानों के आक्रमणों तथा उनकी युद्ध-नीति को कपटपूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार की मौलिक प्रतिबद्धता के कारण विवेच्य कृतियों में घटनाएँ सामान्यतः विकृत रूप में उभर कर आती हैं।

भारतीय मध्ययुगों में अधिकांशतः मुसलमान शासकों के साथ केन्द्रीय सत्ता तथा विशाल सेनाएँ हुआ करती थीं और सामान्यतः वे इस सत्ता का दुरुपयोग हिन्दू राजकन्याओं तथा सामान्य युवतियों को प्राप्त करने के लिए किया करते थे। इस

1. 'जया,' कातिक प्रसाद खत्री, पृष्ठ 27.
2. वही, पृष्ठ 63.
3. वही, पृष्ठ 108-112.

हिन्दू एवं राजपूत जाति अपनी पूरी शक्ति के साथ जान पर खेल कर अत्याचार का प्रतिकार किया करती थी ।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'लवंगलता' में नायिका लवंगलता का सिराजुद्दौला द्वारा हरण करवाया जाना तथा 'मल्लिकादेवी' मे मल्लिका आदि का बंगाल के दुराचारी नवाब द्वारा हरण किया जाना तथा उनका उनके नितांत विशुद्ध रूप मे उद्धार किया जाना मध्यकालीन कथानक-रूढ़ियों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति का परिचायक है ।

इसी प्रकार के 'कनक कुसुम वा मस्तानी' मे निजाम द्वारा पेशवा बाजीराव को धोखे से सन्धि के लिए बुलवा कर उन पर दो हजार व्यक्तियों के साथ आक्रमण करवाना मुसलमानो के कपट को प्रतिपादित करना है तथा केवल पच्चीस या तीस सवारों के साथ मराठा वीर का उनसे जूझ पड़ना उनके बलिदान की धारणा का पोषण करता है ।

कार्तिक प्रसाद खत्री के 'जया' मे अलाउद्दीन के सिपहसालार सरफराज खाँ द्वारा जया का हरण करने का प्रयत्न करना तथा राजपूतों द्वारा वीरतापूर्वक उसका उद्धार किया जाना जाति के सम्बन्ध में लेखक के एक विशिष्ट इतिहास-विचार का प्रमाण है ।

इसी प्रकार गंगाप्रसाद गुप्त तथा जयरामदास गुप्त के ऐतिहासिक रोमांसों मे हिन्दू पात्रों के कार्यो को बलिदान, त्याग एव किसी उच्च आदर्श को प्राप्त करने के हेतु किया गया प्रदर्शित करने के साथ-साथ मुसलमानों के आक्रमणों तथा उनकी युद्ध-नीति को अत्यन्त कपटपूर्ण, धूर्ततापूर्ण तथा बेहद भ्रष्ट रूप में चित्रित किया गया है । इस प्रकार बलिदान तथा कपट के दो परस्पर विरोधी ध्रुवों की अन्त:प्रक्रिया के माध्यम से घटनाओं को चित्रित एवं प्रतिपादित करते समय उनका स्वरूप कई बार विकृत हो गया है ।

युग—विवेच्य ऐतिहासिक रोमामकार सेक्स, जाति एवं घटनाओं के साथ-साथ दो परस्पर विरोधी युगों का चित्रण करते समय भी तथ्यों को सामान्यत: विकृत रूप मे प्रस्तुत करते है ।

इन लेखकों के मानस पर एक आदर्श युग की छाप बहुत गहराई तक उनके जीवन-दर्शन एवं जीवन-दृष्टि को प्रभावित करती है । सामान्यत: यह आदर्श युग सनातन हिन्दू-धर्म तथा प्राचीन युगो की महान् मान्यताओं, धारणाओं तथा विश्वासों के आधार पर परिकल्पित किया गया है । लेखक के युग की पुनरुत्थानवादी धारणा का इस आदर्श युग के स्वरूप पर महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभाव पडा है । वे इस आदर्श युग की परिकल्पना के साथ-साथ उसके मध्ययुगों में तथा अपने युग मे पुर्नस्थापन के प्रबल पोषक थे । इमके विपरीत वे भारतीय मध्ययुगों के मुस्लिम युग को बेहद भ्रष्ट रूप में उभारते है । इस प्रकार दो परस्पर विरोधी युगो की धारणाओं का

प्रतिपादन करते समय वे तथ्यों तथा घटनाओं को असामान्य रूप से विकृत रूप में चित्रित एव प्रस्तुत करते है ।

प० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'कनक कुसुम वा मस्तानी' में बाजीराव पेशवा को आदर्श युग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है जबकि निज़ाम उल्मुल्क को मुसलमान युग के बेहद भ्रष्ट प्रतिनिधि के रूप में उभारा है। निज़ाम पेशवा को दौलताबाद के निकट सन्धि के लिए बुलवाकर अचानक उस पर आक्रमण कर देता है जबकि पेशवा निज़ाम के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता है । निज़ाम के दोषों तथा कुटिलताओं की ताड़ना करने के पश्चात् नवाब से कहता है—"हमारे धर्म-शास्त्रों में विजित शत्रु के साथ मित्रवत् व्यवहार करना ही लिखा है । पर आपने तो मुसलमानों की ही कूटनीति को पास किया । अगर मुसलमान बादशाह छल-छिद्र और धोखे-बाजी को काम में न लाते तो यह देश कभी उनकी गुलामी में दाखिल न होता ।' इसी प्रकार 'हृदयहारिणी,' 'लवंगलता' तथा 'मल्लिकादेवी' में किशोरीलाल गोस्वामी ने हिन्दू नायकों तथा मुसलमान शासकों को दो परस्पर नितान्त विरोधी स्वरूपों में प्रस्तुत कर आदर्श युग तथा मुसलमान युग के अन्तरों को विकृत रूप में प्रस्तुत किया है ।

गंगाप्रसाद गुप्त के 'कुंवरसिंह सेनापति' तथा 'वीर जयमल वा कृष्ण कान्ता' तथा जयरामदास गुप्त के 'किशोरी वा वीर बाला', 'प्रभात कुमारी', 'रानी पन्ना', तथा 'वीर वीरांगना' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में इस प्रकार के दो युगों की परस्पर विरोधी धारणाओं को उभारा है। कई बार इस प्रकार के चित्रण में असामान्य विकृतियां भी आ गई हैं ।

रोमांस के तत्त्वों का ऐतिहासिक रोमांसों में सम्मिलन होने से अलौकिक, असम्भव तथा असामान्य तत्त्व घटनाओं तथा तथ्यों की असामान्य विकृति के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

इस प्रकार ऐतिहासिक रोमांसों में तथ्यों एवं घटनाओं की अवनमिल विकृतियाँ एक विशिष्ट इतिहास अभिप्राय एवं साहित्यिक अभिप्राय के रूप में उभारी गई हैं ।

8 ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में कलापक्ष

इस अंतिम अध्याय में अब हम ऐतिहासिक उपन्यासों एवं रोमांसों की उपन्यासकला, कथानक शैलियाँ, अभिव्यंजना विधियाँ, भाषा-शैली आदि का निरूपण करेंगे ।

यह खण्ड हमारे प्रतिपाद्य से दार्शनिक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि से सीधे संबंधित नहीं है । तथापि इतिहासदर्शन और भाषिकी में जो परस्पर सम्बन्ध है उनके आधार पर शब्द-योजना एवं पात्र-निरूपण के आधारों को विश्लेषित किया जा सकता है ।

अतएव इस अध्याय में दार्शनिक संदर्भों को छोड़ते हुए ही हम निरूपण करेंगे ।

(क) प्रेमचन्द-पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास, रोमांस-धारा की उपन्यास-कला

मानवीय अतीत के अन्यान्य युगों की महत्त्वपूर्ण एवं अभिलेखनीय घटनाओं का संकलन एवं सम्पादन करना मूलतः इतिहासकार का कार्य होता है । परन्तु जब मनीषी साहित्यकार अतीत युगों का अपनी औपन्यासिक कृतियों में पुनः प्रस्तुतिकरण एव पुनर्निर्माण करते हैं तो इतिहास एवं कला के सम्मिलन से जिस कृति का निर्माण होता है वह ऐतिहासिक एवं कलात्मक मूल्य की होती है । इस प्रकार यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक रोमांसकार इतिहास से अपनी कृति के लिए सामग्री प्राप्त करता है, परन्तु उसकी कृति इतिहास न होकर कलात्मक महत्त्व की एक साहित्यिक कृति होती है ।

इतिहास तथा ऐतिहासिक रोमांस एव ऐतिहासिक उपन्यास को पृथक करने वाला. मूल तत्त्व ऐतिहासिक घटनाओं के औपन्यासिक एवं कलात्मक प्रस्तुतिकरण में निहित होता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास से कुछ संकेत प्राप्त करता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि घटनाओं के प्रवाह-क्रम की एक बनी बनाई कहानी हो । बहुत से ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास की एक पुस्तक से सीधे ही कहानी प्राप्त करते हैं । उन्हें कल्पना (Fiction) द्वारा बढ़ाया जाता है तथा कुछ परिवर्तनों के साथ दोहराया जाता है । इतिहास, प्लाट तथा साहसिकता के तत्त्व प्रदान कर सकता है तथा कल्पना

उन रिक्त स्थलों को भर सकती है जहाँ इतिहास अनौचित्यपूर्ण तथा अपूर्ण और निराशाजनक होता है।

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो एव ऐतिहासिक रोमासों की उपन्यास-कला का अध्ययन करने से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जायेगा कि इतिहास तथा ऐतिहासिक उपन्यास एव ऐतिहासिक रोमाम यद्यपि लगभग एक ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होते है तथापि वे एक समान नही होते और इसी मे ऐतिहासिक उपन्यासो एवं ऐतिहासिक रोमासो की उपन्यास-कला का महत्व एव उद्देश्य निहित है।

प्रेमचन्द तथा उनके युग के उपन्यासो, उनके शिल्प अथवा उनकी कला को प्रौढ़ एव स्तरीय कहा जाता है। उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों को सामान्यत: तथा ऐतिहासिक उपन्यासकारो को विशेषत: औपन्यासिक कला अथवा शिल्प की त्रुटियो एव अल्पताओ के लिए दोषी ठहराया गया है तथा उनकी उपन्यासकला की प्रौढता पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है।[1] इस प्रकार की स्थिति स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासो एव ऐतिहासिक रोमासो की कला के अध्ययन के अवसर पर भी उभरी थी।[2]

प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास एव ऐतिहासिक रोमांसधारा की शिल्पकला की सामान्यत: उपेक्षा की गई है। उसे अप्रौढ़ एव अपेक्षाकृत कम कलात्मक भी समझा गया है। इस युग के मुख्य ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस लेखको के सम्बन्ध मे डॉ गोविन्द जी का मत उल्लेखनीय है—"गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासो के बारे मे, सच बात तो यह है कि उनमे इतिहास का आधार नाम-मात्र को ग्रहण किया गया है और लेखक की कल्पना और ऐतिहासिक चरित्रो को उनके यथार्थ-रूप मे न प्रस्तुत कर विकृत-रूप मे प्रस्तुत किया गया है। गोस्वामी जी के ऐतिहासिक कहे जाने वाले उपन्यास तिलिस्म एव जासूसी कहे जाने वाले उपन्यासो

1. 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास का प्रयोग' पृष्ठ 288,—"इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए जिन ऐतिहासिक विवेक अर्थात् सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक परिस्थिति, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का ज्ञान तथा इतिहासमूलक कल्पना की आवश्यकता होती है, उसका इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारो मे पूर्ण अभाव था। सभवत: इन्ही कारणो से वे श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास नही लिख सके।"
2. 'ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास', गोपीनाथ तिवारी, पृष्ठ 63, "जिन परिस्थितियो मे स्कॉट ने इन उपन्यासो को लिखा, उन पर विचार करते हुए कहना पड़ता है कि ये त्रुटियाँ क्षम्य है।
(1) यह सब से पहला प्रयास था। पहली बार ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए। आरम्भ मे एकदम पूर्णता नही आ जाती। (2) उस समय तक स्कॉटलैण्ड के इतिहास का सम्यक् विवेचन नही हुआ था। स्कॉट को स्कॉटलैण्ड के ऐतिहासिक सग्रहो पर निर्भर रहना पडा था, जो लिखे गए थे। (3) इनका प्रधान लक्ष्य लोकप्रिय उपन्यास लिखना, धन कमाना था, न कि साहित्य की सेवा। (4) स्कॉट इतिहास खोजक थे।"

तारा, रम्भा तथा चन्द्रावती को आदर्श राजपूत रमणियों के रूप में चित्रित किया गया है, जो अपने नैतिक कर्त्तव्यो के लिए जान तक देने को तत्पर रहती है। इनके विपरीत मुसलमान शाहजादियां जहाँनआरा, रोशनआरा, मोती बेगम आदि नैतिक रूप से भ्रष्ट तथा षड्यन्त्रकारी स्त्रियो के रूप मे उभरी है। उदाहरण स्वरूप जहाँनआरा का दारा (पहला भाग, पृष्ठ 4) तथा इनायतुल्ला (दूसरा भाग, पृष्ठ 5-10) के साथ अवैध सम्बन्धो का चित्रण, सलावत और गुलशन का यौन सम्बन्ध (पहला भाग, पृष्ठ 54-57), सलावत तथा मोती बेगम का अवैध सम्बन्ध (दूसरा भाग, पृष्ठ 61-67) तथा नरुलहक का जोहरा नामक बादी के साथ यौन सम्बन्ध (पृष्ठ 39-44 पहला भाग) आदि का चित्रण। इस प्रकार, इस उपन्यास मे दो परस्पर विरोधी कोटियों के हिन्दू एव मुसलमान चरित्रों की उद्भावना गोस्वामी जी की उपलब्धि है।

'रजिया बेगम' मे चरित्र-चित्रण की पद्धति बदल जाती है, क्योकि वहाँ पर रजिया के चरित्र के कई रूपो मे से एक रूप हिन्दुओ के पक्षपात का भी प्रस्तुत किया गया है (पहला भाग, पृष्ठ 41-49)।

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक रोमांसों में इस प्रकार के विरोधी पात्रो का चित्रण अतिरंजित रूप से किया गया है। यहाँ हिन्दू राजाओ एव शासको के अतिमानवीय तथा मुसलमान शासकों के अतिदानवीय स्वरूप को उभारा गया है। 'कनक कुसुम वा मस्तानी' मे पेशवा बाजीराव को अतिमानवीय तथा निज़ाम को अतिदानवीय रूप मे चित्रित किया गया है। 'लवगलता' तथा हृदयहारिणी' मे एक ओर नरेन्द्र एवं मदनमोहन को आदर्श नैतिकतापूर्ण राजकुमारों के रूप मे उभारा गया है। इनके विपरीत बगाल के नवाब सिराजुद्दौला को कामुक, लम्पट, अत्याचारी एव अतिदानवीय रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'मल्लिका देवी वा बगसरोजिनी' मे भी उपन्यास के नायक नरेन्द्र को मध्ययुगीन सामन्ती नैतिकता के आदर्शो के अनुरूप उभारा गया है जबकि नवाब तुगरलखाँ को भ्रष्ट, अनैतिक एव अतिदानवीय रूप मे चित्रित किया गया है। लगभग यही स्थिति 'हीरा बाई व वेहयायी का बोरका' नामक इतिहास-कथा की भी है जिसमे अलाउद्दीन को ऐतिहासिक आततायी के रूप मे उभारा गया है।

जयरामदास गुप्त के 'वीर वीरागना' मे पर्वतसिंह, सत्येन्द्र तथा मधुर को आदर्श राजपूतों के रूप मे तथा नवाब अहमदशाह को अति कामुक तथा ऐतिहासिक आततायी के रूप मे चित्रित किया गया है। जयरामदास गुप्त के ही 'काश्मीर पतन' में जब्बारखाँ व अजीम खां को ऐतिहासिक आततायी के रूप मे चित्रित किया गया है जबकि महाराजा रणजीतसिंह को काश्मीर के उद्धारकर्त्ता के रूप में उभारा गया है।

बाबूलालजी सिंह के 'वीर बाला' तथा युगलकिशोर नारायणसिंह के 'राजपूत-रमणी' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों में औरगजेब को ऐतिहासिक आततायी के रूप

में चित्रित किया गया है इसके विपरीत मेवाड़ के राणा राजसिंह तथा उनके सहयोगी चन्द्रावत जी को आदर्श एवं नैतिक हिन्दू राजा तथा नारियों एव निरीह जनता के संरक्षक एवं उद्धारक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह के 'वीर चूड़ामणि' तथा सिद्धनाथ सिंह के 'प्रण-पालन' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों में मेवाड़ के राणा लाखा तथा उनके पुत्र चूड़ा जी के उदात्त चरित्र का चित्रण किया गया है। चूड़ा जी अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए मेवाड़ के राजसिंहासन के अपने अधिकार को त्याग देते है। इसके विपरीत मुहम्मद शाह लोधी को अनैतिक, भ्रष्ट एवं ऐतिहासिक आततायी के रूप मे चित्रित किया गया है।

कार्तिक प्रसाद खत्री के 'जया' में अलाउद्दीन तथा उसके सिपहसालार सरफराज खाँ को कामुक एवं अतिदानवीय रूप मे उभारा गया है। इसके विपरीत नायक वीरसिंह तथा रतनसिंह को मध्ययुगीन सामन्ती नैतिकता के आदर्शो के पालक के रूप में उभारा गया है।

मिश्र बन्धुओ के 'वीर मणि', चन्द्रशेखर पाठक के 'भीमसिंह', राम नरेश त्रिपाठी के 'वीरांगना', रूप नारायण के 'सोने की राख', गिरिजानन्दन तिवारी के 'पद्मिनी', बसन्त लाल शर्मा के 'महारानी पद्मिनी' में अलाउद्दीन को ऐतिहासिक आततायी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जबकि उसके विपरीत मेवाड़ के राणा लक्ष्मणसिंह तथा भीमसिंह को अत्यन्त पराक्रमी तथा आदर्श हिन्दू शासकों के रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में दो परस्पर विरोधी एवं विपरीत चरित्रों को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के मध्ययुगीन इतिहास-विचार के आधार पर उभारा गया है। चरित्र-चित्रण की यह तकनीक प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में भी पाई जाती है।

जब भी भारतीय मध्ययुगों का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण किया जाएगा तभी हिन्दू तथा मुसलमानों के परस्पर विरोधी एवं संघर्ष का वास्तविक इतिहास-विचार जो मध्ययुगों के कलात्मक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अभिप्राय बन जाता है, चरित्र-चित्रण की इस तकनीक को जन्म देगा।

(ii) पात्र-द्वय की तकनीक—प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक रोमांसों एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र-द्वय की तकनीक के माध्यम से भी चरित्रों को उभारा गया है। सामान्यतः नायक के साथ उसके मन्त्री अथवा एक प्रिय मित्र की परिकल्पना की गई है। इसके साथ-साथ नायिका के साथ उसकी एक अत्यन्त प्रिय सखी की भी उद्भावना की जाती है। कथानक के अन्यान्य मोड़ों से गुज़रते समय नायक का मित्र तथा नायिका की सखी उनके अन्यान्य क्रियाकलापों में अन्यान्य रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। कई बार वे अपनी जान पर खेल कर अथवा अत्यन्त कठिन एव

दुष्कर कार्य सम्पन्न करके नायक अथवा नायिका की सहायता करते है। सामान्यत: सभी कृतियों मे नायक-नायिका की शादी के साथ उनके मित्र एवं सखी की भी शादी हो जाती है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' नामक उपन्यास मे पात्र-द्वय की तकनीक का सर्वोत्तम उदाहरण उपलब्ध होता है। यहाँ लेखक ने उपन्यास की नायिका तारा के साथ उसकी सखी रम्भा की उद्‌भावना की है। इसके साथ-साथ नायक राजकुमार राजसिंह के साथ उनके सखा एव मंत्री चंद्रावत जी को उभारा है और अन्त में तारा और राजसिंह के साथ-साथ रम्भा एवं चन्द्रावत जी का व्याह चरित्र-चित्रण की इस तकनीक को चरितार्थ करता है।

'रजिया बेगम' मे पात्र द्वय की यह तकनीक कुछ परिवर्तित रूप से उभर कर आई है। यहाँ पर दो त्रिकोनो का निर्माण होता है।
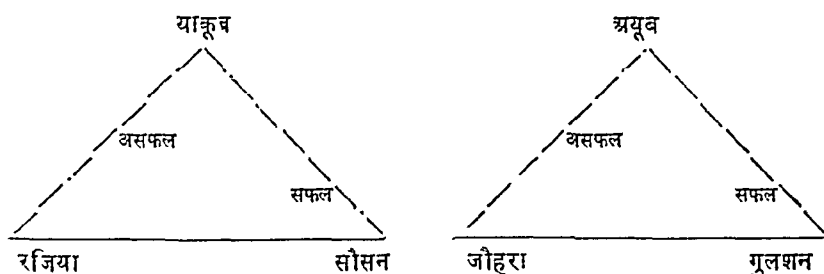
एक ओर रजिया तथा सौसन याकूव के प्रेम-पाश मे उलझती हैं तथा दूसरी ओर जौहरा तथा गुलशन अयूव की ओर आकर्षित होती है। परन्तु अन्त मे सौसन तथा गुलशन सफल होती है तथा रजिया एवं जौहरा असफल रहती है।

'मल्लिका देवी वा वग सरोजिनी' मे गोस्वामी जी ने इस तकनीक का कुछ परिवर्तित रूप मे प्रयोग किया है। उपन्यास का नायक नरेन्द्र दोनों नायिकाओं मल्लिका देवी तथा मालती के साथ शादी करता हे तथा उपनायक वलवन के पुत्र के साथ तुगरल की पुत्री शीरी के साथ प्रेम एवं विवाह का चित्रण किया है।

इसी प्रकार वावूलालजी सिह के 'वीर वाला' तथा युगलकिशोर नारायणसिह के 'राजपूतरमणी' में उदयपुर के राणा राजसिह के मन्त्री एवं सखा अपनी जान पर खेल कर राणा को रूपवती का उद्धार करने में सहायता प्रदान करते हैं।

पात्र-द्वय की, चरित्रांकन की तकनीक प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यासो में भी उपलब्ध होती हे।

(iii) चरित्रों में विरोधाभास—यद्यपि विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो एव ऐतिहासिक रोमांसों के चरित्रों के मानसिक द्वन्द्व तथा अन्तर्विरोधों का अत्यन्त आधुनिक स्वरूप प्राप्त नहीं होता तथापि पं० वलदेव प्रसाद मिश्र के 'पानीपत' तथा व्रजनन्दन सहाय के 'लाल चीन' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व तथा

तथा मानव मन की अतल गहराइयों के गूढ़ रहस्यों तथा विरोधाभासों का अत्युत्तम चित्रण किया गया है।

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के 'पानीपत' में मराठा सेना के सेनापति सदाशिवराव भाऊ का चरित्र-चित्रण मानसिक द्वन्द्वों का अनुपम उदाहरण है। अजित सेना नामक अध्याय में जब मराठों की विशाल वाहिनी उत्तर की ओर कूच करती है उस समय सेनापति गर्व से सेना की ओर देखता है (पृष्ठ 110)। वह इससे पहले की अपनी विजयों का स्मरण करता है (पृष्ठ 111), तथा उसका हृदय आत्म-विश्वास से भर उठता है। परन्तु एकाएक भाऊ के हृदय में सतोगुणी विचार उत्पन्न हुए और वह कुरुक्षेत्र बनाम पानीपत को हिन्दुओं की पराजय एवं विनाश का कारण समझने लगता है और उसके हृदय में भविष्य के अनिष्ट की आशंका उत्पन्न होती है। सेनापति के मानस का यह द्वन्द्व अद्वितीय बन पड़ा है। 'परामर्श में विघ्न' नामक अध्याय में भाऊ मल्हारराव होल्कर, जनकोजी सिन्धिया, राजा सूरजमल तथा दामाजी गायकवाड़ के उचित परामर्श के विरुद्ध बलवन्त राव मेंडले तथा गोविन्द पंथ बुन्देला की खुले में युद्ध करने की सलाह मान कर तनाव, अन्तर्द्वन्द्व तथा अपराध-भावना अनुभव करता है—'सदाशिवराव भाऊ का मन निराश हो रहा था, न्याय-बुद्धि तो उसको अपनी ओर खेंचती थी, परन्तु निर्बल मन दूसरी ओर को गिरा पड़ता था।'[1]

'निद्रा में सदाशिवराव भाऊ' नामक अध्याय में सेनापति के मनोविज्ञान को स्वप्न मनोविज्ञान के साथ मिलाकर उभारा गया है (पृष्ठ 147,159)। यहाँ धार्मिक मान्यताओं, मानसिक दुर्बलता तथा मनोवैज्ञानिक तनाव की अभिव्यक्ति स्वप्न के माध्यम से की गई है। दिल्ली विजय के पश्चात् मराठों के दरबार में एक बार फिर मराठा सरदारों की आपसी टकराहट और सेनापति का सिन्धिया व होल्कर के विरुद्ध मेंडले की बातों को स्वीकार करना उसके मानसिक तनाव का कारण बनता है जिसे कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है (पृष्ठ 297-298)।

व्रजनन्दन सहाय के 'लाल चीन' में गयासुद्दीन के गुलाम लाल चीन अपने स्वामी गयासुद्दीन को कैद करने तथा उसका सिंहासन हथियाने का कार्यक्रम बनाता है, परन्तु ठीक इसी अवसर पर लाल चीन के हृदय में एक भयानक द्वन्द्व उठ खड़ा होता है—'मन थिर न रहने के कारण इसके चित्त में विकृति सी हो आई थी। शृंखलाबद्ध विचार इस समय इसके नहीं होते थे। भावों की मानों बाढ़ इसके हृदय सरोवर में आ गई थी और भावों की तरंग पर तरंग उठने लगी थी।

'बहुत देर तक सुन्दर दालान में लाल चीन इधर-उधर घूमता हुआ कुछ आप ही आप कह रहा था। अधिक देर तक जब अपने को सम्हाल न सका तो वह उच्च स्वर से बोल उठा 'नहीं'! नहीं! यह काम मुझसे नहीं होगा। यदि काम करते ही,

1. 'पानीपत,' पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 132.

वह समाप्त हो जाता तो जहाँ तक शीघ्र होता उसे कर ही देना उत्तम था। यदि क्रिया के साथ उसके फल तथा परिणाम की इतिश्री हो जाती तो क्या भय था। यदि कार्य की सफलता के परिणाम का भी विनाश हो जाता तो सब ठीक था। किन्तु ऐसा होता तो नहीं।'[1]

इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण एक कलात्मक उपलब्धि है।

(iv) चरित्र-चित्रण की सीधी या वर्णनात्मक शैली—सामान्यत: विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक रोमांसकार चरित्रों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन स्पष्ट रूप से स्वयं ही कर देते है। यद्यपि कलात्मक दृष्टि से इस प्रकार के चरित्र-चित्रण की तकनीक को बहुत उच्च कोटि का नहीं समझा जाता तथापि प्रेमचन्दपूर्व युग में जबकि हिन्दी उपन्यास अपनी शैशव-अवस्था में था, चरित्र-चित्रण की यह तकनीक ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

इस प्रकार का चरित्र-चित्रण लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासकारों तथा ऐतिहासिक रोमांसकारो ने अपनी कृतियों मे किया है। यहाँ वह सामान्यत: पात्रों के स्वभाव, संस्कार, वेषभूषा, सौन्दर्य एवं अन्यान्य चारित्रिक विशेषताओं का स्वयं परिचय देते है।

कई बार विवेच्य लेखक अपनी कृतियों के आरम्भ में ही चरित्रो की विशेषताओं का वर्णन करते है, जो ऐतिहासिक एवं लोक अतीत के पुन: प्रस्तुनिकरण एव पुन: निर्माण की प्रक्रिया में पात्रों के क्रिया-कलापों तथा उनकी अन्यान्य ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक घटनाओं के प्रति प्रतिक्रियाओं को नियोजित करता है।

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'तारा' नामक उपन्यास के आरम्भ में ही जहाँनारा की चारित्रिक विशेषताओं का प्रत्यक्ष वर्णन किया है,—'यद्यपि जहाँनारा बहुत ही पढ़ी लिखी, अरबी फारसी में फाजिल, दस्तकारी और मुसव्विरी में होशियार थी, पर ये तारा की दोनों तस्वीरें·······सचमुच·······अशरफ खाँ की बनाई हुई थी, जो कि जहाँनारा के हुक्म से बनाई गई थी।'[2] इसी प्रकार दूसरे भाग के आरम्भ में भी गोस्वामी जी जहाँनारा के चरित्र के सम्बन्ध में वक्तव्य देते हैं—'जहाँनआरा अद्वितीय सुन्दरी थी और उसकी सुन्दरता ही उसके सभी कामों के साधने वाला अमोघ अस्त्र था। उसका सुन्दर मुखड़ा चंचल और बड़ी नुकीली आँखें, मीठी और चित के लुभाने वाली बातें ऐसी थीं कि क्षण भर के लिए भी उन सभी के सुख लूटने की लालसा से प्राय: बड़े ऊँचे दर्जे के दरबारी और राज कर्मचारी लोग भी उसके हाथ आत्मविक्रय कर डालते थे, और वह (जहाँनआरा) भी ऐसी चतुर, राजनीति में निपुण और रोबीली औरत थी कि बड़े-बड़े प्रभावशाली राज दरबारियों को चकमे

1. लाल चीन, ब्रजनन्दन सहाय, पृष्ठ 76-77.
2. 'तारा' भाग 1, पृष्ठ 9.

बतला कर अपना काम निकाल लेती थी ।[1] इसी प्रकार तीसरे भाग के आरम्भ में गोस्वामीजी ने उदयपुर के राजकुमार राजसिंह की वेशभूषा तथा वीरता का चित्रोपम चित्रण किया है । उन सभों में जो अपने बर्छे पर बोझ दिए हुए अवेड़ की ओर झुका हुआ था, अपनी बेशकीमत और भड़कीली पोशाक और अपने देव दुर्लभ स्वरूप के कारण अपने सब साथियों का सरदार मालूम होता था । इसकी उम्र चौबीस-पच्चीस बरस के लगभग थी और उसके प्रत्येक अंग की गढ़न ऐसी अनोखी थी कि देखने वालों पर उसका भरपूर असर पड़ता था और जो उसे देखता यदि वह सचमुच वीर होता तो चित्त से उस वीर युवा पर श्रद्धा करता था ।"[2]

'रजिया बेगम' में गोस्वामी जी ने रजिया के सम्बन्ध में उसके पर्दा-प्रथा के विरुद्ध होने के सम्बन्ध में वक्तव्य दिया है—'पाठक लोग रजिया के स्वाधीन और पुरुषोचित हृदय का कुछ-कुछ परिचय अवश्य पावेंगे और यह भी समझ सकेंगे कि मुसलमानों में पर्दे की चाल जितनी बढ़ी चढ़ी है, रजिया उतना ही उसके विरुद्ध आचरण करती थी ।'[3]

पं० रामजीवन नागर ने 'जगदेव परमार' नामक उपन्यास में जगदेव की वेषभूषा तथा उसके व्यक्तित्व का स्वयं चित्रण किया है—'सवार की अवस्था लगभग 15 वर्ष की होगी, रंग कुछ साँवला, परन्तु देखने में चित्ताकर्षक, शिर पर जिसके गुलाबी राजपूतों की सी पगड़ी, लम्बा अंगरखा, रेशमी किनारे की धोती, कमर बंधी हुई, एक ओर तलवार और दूसरी ओर कटार, हाथ में भाला, कन्धे पर तीरों का कमठा और दूसरे हाथ में चाबुक लिए अच्छे अरबी घोड़े पर आते हुए सवार को देख कर दोनों उसकी ओर देखने लगे ।'[4]

प० बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' नामक उपन्यास में नाना फड़नवीस के चरित्र का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया है—'अनेक राजा-महाराजा को अपने वश में लाता, बार-बार पेशवाओं को राज्याभिषेक देता, अंग्रेज और टीपू को पराजित कर निजाम को इच्छानुसार नचाता, पेशवाई कीर्ति का प्रचार करता है, उन्नति अवनति के उदय अस्त में भी तेजोमय प्रकाशमान होता हुआ वह संसार को चकित करने वाला होगा ।[5]

श्यामलाल गुप्त ने 'रानी दुर्गावती' उपन्यास में दुर्गावती के साहस तथा धैर्य के सम्बन्ध में स्वयं वक्तव्य दिया है,—'दुर्गावती कच्चे हृदय की स्त्री न थी । वह समय की गति को भली प्रकार जानती थी । विपत्ति में साहस ही काम आता है ।

1. 'तारा' भाग 2, पृष्ठ 2.
2. वही, भाग 3, पृष्ठ 6.
3. 'रजिया बेगम,' पहला भाग, पृष्ठ 8
4. 'जगदेव परमार,' पृष्ठ 24.
5. 'पानीपत,' पृष्ठ 103

यह भी वह जानती थी। विपत्ति के समय सोच करने से कुछ लाभ नही होता, उसकी शान्ति करने योग्य उपायो को करना ही विपत्ति मे लाभदायक है।'[1]

मुन्शी देवीप्रसाद ने 'रूठी रानी' नामक उपन्यास के आरम्भ मे, उपन्यास की नायिका उमादे के चरित्र का स्वयं चित्रण किया है—'उसके जन्म लेने से पृथ्वी पर नए ढग की चहल पहल मची थी। थोड़े दिनो मे उसके सौन्दर्य की धूम राजपूताने मे मच गई।.........'उसके आगे राजाओ की गुणावली सुनाती थी और उसके जी की थाह लेती थी पर वह अपने रूप के घमण्ड मे कुछ न सुनती थी। उसे केवल रूप ही का गुमान न था, दूसरे गुण भी रूप के सदृश ही रखती थी। मन के साहस और हृदय की उदारता मे भी कम न थी। स्वभाव ससार से निराला था। छुई मुई की तरह जरा किसी ने उगली दिखाई और वह कुम्हलाई।'[2]

इस प्रकार सामान्यतः सभी विवेच्य उपन्यासकार अपने उपन्यासो मे चरित्र का चित्रण स्वय ही सीधी अथवा वर्णनात्मक शैली मे करते है। वे पात्रो के व्यक्तित्व को उभारने के लिए उनकी अन्यान्य चारित्रिक विशेषताओ का वर्णन करते है।

(v) **सामूहिक चरित्रांकन**—कई बार मानवीय अतीत का चित्रण, पुनः प्रस्तुतिकरण एव पुनर्निर्माण करते समय विवेच्य लेखक किसी एक महान् व्यक्ति अथवा पात्र की चारित्रिक विशेषताओ के स्थान पर एक विशिष्ट युग के समूह के चरित्र की विशेषताएँ चित्रित करते है। इस प्रकार के चरित्रांकन मे सामान्यतः सेनाओ, भीडो, जातियों तथा समुदायो आदि की चारित्रिक विशेषताओ का सामूहिक रूप से चित्रण किया जाता है।

बाबूलालजी सिह ने 'वीरबाला' नामक ऐतिहासिक उपन्यास मे उदयपुर के महाराणा की सहायक राजपूत जातियो का सामूहिक चरित्रांकन किया है—'फिर महाराणा ने राठौड़ कुल कलश जयमल के वश के और जगावत कुल के सरदार और अपने कुल के अन्य सरदारों और कोटारी के चौहान, बिजुली के प्रमार और झाला कुल आदि-आदि अपने समस्त सरदारो के प्रति कहा, वीरगण... .... मेवाड़ के आप ही लोग स्तम्भ स्वरूप हैं। उसकी सब प्रकार से रक्षा करना आप ही लोगो का काम है।'[3]

प० बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'पानीपत' के 'अजित सेना' नामक अध्याय मे मराठा सेना का चित्रांकन अत्यन्त सजीव एव ओजपूर्ण भाषा मे किया है—'अमानुषी शक्ति सा चित्र दिखाती शौर्य-प्रवाह से मदोन्मत्त बनी प्रसन्न सेना विजयी निशान उडाती हुई तैयार हो गई, पेशवा जी जिसका अत्यन्त विश्वास करते थे, जिसके बल और जिसकी शूरता पर प्रजा को बड़ा भरोसा था, जिसकी विजय कीर्ति के यशोगान से शत्रुगण

1. 'रानी दुर्गावती,' पृष्ठ 12.
2. 'रूठी रानी,' पृष्ठ 1.
3. 'वीरबाला' लालजीसिह, पृष्ठ 33-34.

कंपायमान हुआ करते थे जिसका अद्भुत दृश्य मित्रों को हर्षित करता था, जिसकी प्राप्त की हुई कीर्ति से इब्राहीम खाँ गार्डी बहुधा गर्वित हो जाता था, जिसकी महानता भरी हुई कीर्ति सम्पूर्ण भारत-भूमि में उस समय गरज रही थी, जिसके घोड़ों टापों से मध्य, दक्षिण हिन्दू स्थान भली भाँति से खुद गया था। वही अजित सेना आज दृढ़ निश्चय दिखाती, अनन्त पुण्य कर्मों के प्रभाव से राज-राजेश्वर पद को प्राप्त हुए पेशवा की कीर्ति को गाती, भारतवर्ष से मुसलमानों को निकालने की इच्छा करती, सनातन धर्म की महान् महिमा को दिखाती, अटक देश तक भगवे झण्डे को फहराती बनी-ठनी कूच करने की तैयारी करती है।"[1]

इस प्रकार सामान्यतः जातियों, सेनाओं तथा भीड़ों की चारित्रिक विशेषताओं का अन्यान्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों में सामूहिक चित्रांकन किया गया है।

(vi) घटनाओं, कथोपकथनों तथा पात्रों के माध्यम से चरित्र का उद्घाटन—सीधा अथवा वर्णनात्मक ढंग से चरित्र-चित्रण करने के साथ-साथ विवेच्य लेखक कतिपय घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारते हैं।

कई बार दो अथवा अधिक पात्र वार्तालाप करते समय किसी अन्य पात्र अथवा स्वयं अपनी चारित्रिक विशेषताओं का आभास दे जाते है। इसी प्रकार घटनाओं तथा तथ्यों के प्रति अन्यान्य पात्रों की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से भी चरित्रों का उद्घाटन किया गया है।

इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने तथा उनके सम्बन्ध मे संकेत एव आभास देने की तकनीक कलात्मक दृष्टि से उच्च-स्तरीय तथा साहित्यिक बन पड़ी है।

प० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'तारा' नामक उपन्यास में कथोपकथन के माध्यम से दारा एवं जहाँनारा के चरित्र को उभारा है। जब दारा जहाँनारा को तारा उपलब्ध करने को कहता है तो वह उसे उसकी बीबी मेहर-उलन्निसा, शाह बुखारा की भेजी हुई बुगदादी बांदी तथा फिरंगिनों का सदर्भ देते हुए कहती है—"ईद की शब को कुरान की कसम खाकर,—मुझी से, जिसके साथ तुमने किसी किस्म का कौल व करार करना सरासर तुम्हारी वेहयायी और वेइनसाफ़ी नही जाहिर करता। अफसोस! मैंने तुम्हारी कसम पर एतवार करके नाहक अपने तई आप बरबाद किया और अपनी पाक[2]"।····इसी भाग में सलावत के अत्यन्त अश्लील चरित्र को उसके इन शब्दों द्वारा उभारा गया है,—"या तो तारा को ही इस सीने से लगाऊँगा, या उमी परी-पैकर के ऊपर निसार हो जाऊँगा।"[3] इसी प्रकार दूसरे भाग

1. 'पानीपत,' भाग 2, पृष्ठ 104
2. 'तारा,' भाग 1, पृष्ठ 3-4.
3. वही, भाग 1, पृष्ठ 50.

मे सलावत तथा रम्भा के कथोपकथनों के माध्यम से सलावत के अश्लील चरित्र को उभारा गया है। जबकि वह तारा से शादी करने के पश्चात् भी रम्भा से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की बात कहता है।[1] 'तारा' के ही दूसरे भाग के जहाँनारा के कथोपकथनो के माध्यम से तारा की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण किया गया है—'इनायतुल्ला ! तारा ऐसी नेक, हुनरमंद, खूबसूरत और दिमागदार लडकी है कि उसे देख, उस पर मुझे रश्क तो होता है।'[2] जब तारा का सौतेला मामा अर्जुन तारा की माँ चन्द्रावती से तारा का ब्याह दारा से करने को कहता है तो चन्द्रावती के उत्तर मे अमरसिंह, तारा तथा स्वयं चन्द्रावती की चारित्रिक विशेषताओं को उभारा गया है,—"इतना तुम खूब याद रक्खो कि तारा उस हठी बाप की बेटी है कि जिसने अपने राज्य को तृण-समान त्याग दिया। फिर उस (तारा) के स्वभाव को भी मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वह दारा के सामने जाने के पहले ही अपना काम आप तमाम कर डालेगी, क्योंकि मान-सहित मरना, अपमान-सहित जीने की अपेक्षा करोड दर्जे बढ़ कर है। और मैं भी उस समय बहुत ही प्रसन्न होऊँगी, जब यह बात सुन और जान लूंगी कि तारा ने यवन-ससर्ग से बचने के लिए अपनी जान दे दी।"[3]

'रजिया बेगम' नामक उपन्यास मे गोस्वामी जी ने रजिया के कामुकतापूर्ण व्यवहार को संवाद के माध्यम से उभारा है—रजिया ने नर्मी के साथ कहा—'प्यारे! याकूब। यह सलतनत, यह तख्त, यह रियासत, यह रुतबा, यह जर और यह जवाहिर सब कुछ मैं तुझ पर निसार करती हूँ, क्या इतने पर भी तू मेरे हुकुम को न मानेगा और मेरे कहे मुताबिक न चलेगा।'[4]

इस प्रकार संवादो के माध्यम से चरित्रो की विशेषताओ को उभारा जाना गोस्वामीजी की एक कलात्मक उपलब्धि है।

रामजीवन नागर के 'जगदेव परमार' मे टोंक-टोडा के राजा राजसिंह के संवाद के माध्यम से जगदेव के चरित्र की विशेषताओ का चित्रण किया गया है—'धारा नगर के राजा उदयादित्य का छोटा कुँवर जगदेव है, वह बड़ा स्वरूपवान, तीर्थवान और तेजस्वी है। यदि बन सके तो उसी के साथ वीरमती का विवाह कर देना चाहिए।'[5]

ठाकुर बलभद्रसिंह ने 'जयश्री वा वीर बाला' नामक उपन्यास मे जयश्री के ही संवाद के माध्यम से उसके धैर्य की चारित्रिक विशेषता को उभारा है। जब जयश्री व उसकी सखियों को भारत पर यवनों के आक्रमण की सूचना मिलती है और

1. 'तारा' भाग 2, पृष्ठ 25-26.
2. वही, पृष्ठ 8.
3. वही, पृष्ठ 35.
4. 'रजिया बेगम,' भाग-2, पृष्ठ 64-65.
5. 'जगदेव परमार,' पृष्ठ 38.

सखियाँ घबराती हैं, तो जयश्री कहती है—'सलीन क्या करना चाहिए। किन्तु घबराने की अपेक्षा धर्मपूर्वक वह सब बात विचार कर उससे बचने का प्रयत्न करना उचित है।'[1]

जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर पतन' में अमीर अबदुल्ल रहमान खाँ की अश्लीलता का चित्रण कथोपकथन के माध्यम से किया गया है। वह अपने ख्वाजासरा से कहता है 'सीफ़ू खाँ। बतलाओ, अब भी कोई सूरत कम से कम उसके मिलाप की निकल सकती है या नहीं! हाय! हाय!! ओफ सीफ़ू खाँ! तुम नहीं जानते कि मुझे उसके इश्क ने कैसा खराब व खस्ता और परेशान हाल बना रक्खा है। यह तमाम अमीराना साज व सामान उसके बगैर मेरी जिन्दगी को तल्ख किए हुए हैं।'[2]

बाबू युगल किशोर नारायण सिंह ने अपने 'राजपूत रमणी' नामक उपन्यास में उदयपुर के महाराणा राजसिंह को लिखे गए रूपवती के पत्र के माध्यम से राणा तथा रूपवती के चरित्र को उभारा है—"श्रीमान् सूर्यकुल कमल, क्षत्रियकुल दिवाकर, हिन्दू सिरमौर, श्रीमान् हिन्दू-पति महाराणा साहिब के चरण कमक में एक अनाथिनी बालिका श्रीमान् की दासी का साष्टांग प्रणाम स्वीकार हो! ....परन्तु हाय जिन यवनो के नाम से मुझे घृणा, हार्दिक घृणा-रही है, जिन सनातन धर्म के शत्रु तुर्कों का नाम सुन कर मेरा हृदय काँप उठता है। जिनके स्पर्श से भी मुझे ग्लानि होती है। हाय! लिखते हुए हृदय फटता है कि मैं उनके साथ संसर्ग (ब्याह) कैसे करूँगी? नहीं-नहीं और कदापि नहीं।"[3]

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह ने अपने वीर चूड़ामणि नामक उपन्यास में चूड़ाजी के साहस और शौर्य का चित्रण प्रत्यक्ष कथन एवं कथोपकथन के मिश्रित तकनीक के माध्यम से किया है—"चूड़ा जी का साहस और बल विपद में सहस्र गुणा बढ़ जाता था। कुमार ने बड़े गर्व से कहा, "मित्र आज मैं प्रण करके आया हूँ कि दुर्ग दखल करूँगा या प्राण दूंगा।"[4]

इस प्रकार विवेच्य लेखक भारतीय मध्ययुगों का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण करते समय चरित्र-चित्रण की कई तकनीकों का प्रयोग करते हैं। यद्यपि सामान्यतः चरित्र-चित्रण की सीधी अथवा वर्णनात्मक शैली को ही अपनाया गया है फिर भी मध्ययुगों के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उनके विशिष्ट युग की परिस्थितियों द्वारा नियोजित किया जाना तथा इसके लिए अन्यान्य तकनीकों का प्रयोग करना विवेच्य लेखकों की कलात्मक उपलब्धि है।

1. 'जयश्री का वीर बाला,' पृष्ठ 8.
2. 'काश्मीर पतन,' पृष्ठ 28.
3. 'राजपूत रमणी,' युगलकिशोर नारायणसिंह, पृष्ठ 41-42.
4. 'वीर चूड़ामणि,' अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह, पृष्ठ 15-16.

(ग) प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों की भाषा-शैली

मानवीय भावो, भावनाओं, मनोकामनाओं, इच्छाओ, आकांक्षाओं, क्षुधाओं एव मनोभावो की अभिव्यक्ति की कहानी मनुष्य के सभ्य होने की कहानी के साथ जुड़ी हुई है। मानवीय क्रियाकलापों तथा घटनाओं की अभिव्यक्ति करने के लिए सभ्य होने के पश्चात् मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया होगा और मनुष्य की उन्नति के साथ-साथ भाषा भी उन्नति एव प्रगति की ओर बढ़ती गई। धीरे-धीरे मानवीय अध्ययन एव ज्ञान के क्षेत्रों का विभाजन होने से साहित्य एक कला के रूप मे उभरा। कथा साहित्य मानवीय भावों तथा विश्व की वास्तविकताओं का यथा-तथ्य वर्णन करने के लिए कदाचित् सब से अधिक समर्थ एवं महत्त्वपूर्ण है।

प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस-धारा की भाषा एवं शैली का अध्ययन करते समय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह होगा कि विवेच्य काल-खण्ड उपन्यास साहित्य का शैशव काल था और यह प्रकृति का नियम है कि आरम्भ में ही कोई साहित्यिक विधा अपनी पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं कर सकती। इस प्रकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रेमचन्द पूर्व ऐतिहासिक रोमांस एव ऐतिहासिक उपन्यासधारा की भाषा-शैली का अध्ययन न्याय-पूर्वक किया जा सकता है।

भाषा तथा शैली के सम्बन्ध में डॉ० गोबिन्द जी का मत उल्लेखनीय है— "भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है और शैली उस साधन को उपयोग करने की रीति। यो तो सभी साहित्यिक कृतियो मे शैली का महत्त्व है, किन्तु कदाचित् इसलिए कि उपन्यास जीवन की समग्रता का एक संश्लिष्ट एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करता है, उपन्यास में उसका विशेष महत्त्व है।"[1]

विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासो एवं ऐतिहासिक रोमांसों मे भाषा का स्वरूप भारतेन्दुयुगीन गद्य भाषा के अनुरूप है। प्रेमचन्दपूर्व युग में तुकबंदियों तथा नाटकीय भाषा का बोल बाला था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य की भाषा को एक निश्चित एवं विशिष्ट रूप प्रदान किया जो जन सामान्य की भाषा के निकट होने के साथ-साथ साहित्यिक प्रयोग के लिए उचित सिद्ध हो सकती हो।

विवेच्य लेखकों पर भाषा के संबंध मे भारतेन्दु की धारणाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि तिलिस्मी एव ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासों

1. *'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों मे इतिहास का प्रयोग,'* पृष्ठ 113.

की भरमार के फलस्वरूप भाषा के साथ खिलवाड़ किए जा रहे थे। फिर भी भारतेन्दु ने भाषा तथा शैली को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया।[1]

"उपन्यास मानव-जीवन की कथा है तो भाषा उसका माध्यम है, भाषा घटनाओं को स्वाभाविक रूप में, मनोभावों को मूर्त रूप में और अन्तर्द्वन्द्वों को व्यवस्थित रूप में प्रकट करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। उपन्यास के प्रायः सभी उपकरणों में अनिवार्य अन्तः सम्बद्धता के रूप में जिस तत्त्व का महत्त्व सामान्य सन्दर्भ में सब से अधिक है, वह भाषा-तत्त्व ही है।"[2]

उपन्यास मानव-समाज और जीवन के अत्यधिक निकट होता है और उसके माध्यम से जीवन तथा जगत् की वास्तविक एवं यथार्थ अभिव्यक्ति की जाती है। विशेषतः मानवीय अतीत के विशिष्ट एवं सामान्य कालखण्डों का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण करने के लिए तथा विवरण को स्वाभाविक एवं विश्वसनीय बनाने के लिए भाषा इतनी सशक्त होनी चाहिए कि अतीत के मनुष्यों के मनोभावों, कामनाओं धारणाओं, मान्यताओं अन्तर्द्वन्द्वों, आदि को बुद्धिगम्य एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर सके।

प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासकारों तथा ऐतिहासिक रोमांसकारों ने भाषा को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। उस काल-खण्ड मे हिन्दी गद्य भाषा का कोई विशिष्ट स्वरूप भी निश्चित नहीं हुआ था।

विवेच्य लेखकों ने भी यद्यपि भाषा के संबंध में इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया तथापि वे भारतीय मध्ययुगों का पुनः प्रस्तुतिकरण करते समय कई बार भाषा के उत्तम प्रयोग कर पाए है। उनकी भाषा का अध्ययन उनके द्वारा भाषा के पात्रानुकूल, अलकृत एव काव्यात्मक प्रयोगों द्वारा, उर्दू, अंग्रेजी एवं संस्कृत तथा ग्रामीण भाषाओं के प्रयोगों के शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा।

(i) **पात्रानुकूल भाषा**—विवेच्य लेखकों की कृतियों मे यद्यपि ऐतिहासिक काल के अनुरूप कई भाषा–दोष दृष्टिगोचर होते हैं तथापि पात्रानुकूल भाषा का उपयोग उनकी एक उपलब्धि है।

1. 'किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन,' डॉ० कृष्णा नाग, आगरा 1966, पृष्ठ 347.

   "भारतेन्दु ने सरल, सहज और सुन्दर शैली को चुना। उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का वह रूप चुना जो सर्वसाधारण की समझ मे आजावे। उनके विचार से हिन्दी भाषा में उन संस्कृत शब्दों का प्रयोग हो सकता था, जो प्रचलित हैं तथा उर्दू और फारसी के वे शब्द भी आ सकते हैं, जिन्हें हिन्दी ने अपना लिया था।....अपनी पीढ़ी और आने वाले युग के साहित्यकारों को अपने भावों को प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने भाषा का माध्यम बताया है। बोलचाल के हिन्दी के शब्दों का प्रयोग आरंभ हुआ, जिससे उस समय के साहित्य में सरलता, सजीवता मनोरंजकता और स्वाभाविकता आई।"

2. 'हिन्दी उपन्यास कला', डॉ० प्रतापनारायण टण्डन, सन् 1965, पृष्ठ 234.

पं० किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में पात्रों की भाषा उनकी जाति, स्तर एव स्थिति के अनुरूप नियोजित होती है। सामान्यतः मुसलमान पात्र उर्दू एवं अरबी मिश्रित उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं। हिन्दू पात्र भी कई बार उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः हिन्दू पात्र हिन्दी एव संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा का प्रयोग करते है।

इस संदर्भ में आचार्य विजयशंकर मल्ल का मत गोस्वामी जी की भाषा के संबंध मे उल्लेखनीय है,–"गोस्वामी जी के उपन्यासों में तीन प्रकार की भाषा मिलती है, उनके आरंभिक उपन्यासों में संस्कृतनिष्ठ, समास-बहुला और अलंकृत भाषा का व्यवहार हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलमान-पात्रों अथवा मुसलमानों से बातें करते हुए हिन्दू पात्रों की भाषा प्रायः क्लिष्ट उर्दू हो गई है।... उनके कई समकालीनों की तरह कहीं-कहीं उर्दू ढंग के वाक्य-विन्यास भी इनकी भाषा में मिलते है। प्रेम के प्रसग आने पर इनके बीच के उपन्यासों में भाषा उर्दू की ओर प्रायः झुक जाती है। कहीं-कहीं अंग्रेजी की तरह के भी वाक्य मिलते हैं।....गोस्वामी जी की प्रतिनिधि भाषा की जब हम अन्तरंग परीक्षा करते हैं, तो कहीं-कहीं इनकी रूप-वर्णन क्षमता का बहुत सुन्दर रूप सामने आता है।....यह उल्लेखनीय है कि अपने समकालीनों मे यह दोष इनमे सब से कम है और उन्होंने उपन्यासों की वर्णन शैली का निश्चित रूप से पूर्वापेक्षा अधिक मनोरंजक और कथानुरूप बनाया है। इन्होंने सम्वादों को अधिक स्वाभाविक बनाया और कुल मिला कर हिन्दी की औपन्यासिक भाषा को शिष्ट व्यावहारिक भाषा के अधिक से अधिक निकट लाने का उद्योग किया है।"[1]

"तारा" नामक उपन्यास में गोस्वामी जी जहाँनारा से बात करते हुए तारा द्वारा भी उर्दू भाषा का प्रयोग करवाते हैं,—"मैं इस बात से पूरी आगाही रखती हूँ और अब अपने तईं भी मुसीबत में फंसी हुई समझती हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि बड़े राजों-महाराजों का भी छुटकारा बादशाह की मर्जी के मुआफिक डोला दिए बगैर नहीं होता तो फिर मेरे पिता बादशाह-सलामत ही के जेर साए है और मैं यह भी बखूबी जानती हूँ कि बादशाह की अदूल-हुक्मी करना उनकी ताकत के बाहर है।"[2]

इस उपन्यास में जहाँनारा की भाषा भी इसी कोटि की है—

"जहाँनारा—खूब। यह सुनकर मुझे निहायत खुशी हासिल हुई। सच है, गौहर सोने ही से जीनत पाता है। बीबी, तारा। सचमुच तुम बड़ी ही किस्मतवर हो कि हिन्दुस्तान के ऐसे नामी इज्जतदार, कट्टर हिन्दू और बहादुर घराने की रानी होगी।"[3]

1. विजयशकर मल्ल : आलोचना, उपन्यास अक, अक्तूबर सन् 1954 विशेपांक, पृष्ठ 75-76.
2. 'तारा,' पहला भाग, पृष्ठ 15.
3. वही, पृष्ठ 23.

'रजिया बेगम' नामक ऐतिहासिक उपन्यास के 'इश्क का आगाज' नामक परिच्छेद में बाँदी तथा वजीर-आज़म की भाषा उनके स्तर एवं पद के अनुरूप है— "एक बाँदी ने शाहानः आदाब बजा लाकर अर्ज किया कि,—"जहाँ पनाह। वजीर आज़म दरे दौलत पर हाजिर है और हुजूर की कदम बोसी हासिल किया चाहता है।" मुर्शिद,—"जी हाँ, जहाँपनाह। वह आज अलस्सुब्ह आया है, और जो कुछ इर्शाद हो, बसरो चश्म बजा लाने के वास्ते तैयार है।"[1] यह भाषा पात्रों के स्तर एवं पद के अनुकूल होने के साथ-साथ पात्रों द्वारा उनके युग की विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा उनके चरित्र के नियोजित होने को भी प्रमाणित करती हैं।

इस प्रकार अधिकांश लेखकों ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर भारतीय मध्ययुगों के चित्रण को अधिक वैज्ञानिक एवं बुद्धिगम्य रूप में प्रस्तुत किया है।

(ii) अलंकृत एवं काव्यात्मक भाषा—सामान्यतः विवेच्य लेखक ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन एवं चित्रण तथा अपने सनातन हिन्दू-धर्म परक जीवन दर्शन के प्रतिपादन में ही व्यस्त रहे हैं। इस पर भी कहीं-कहीं वे अलंकृत भाषा का प्रयोग मानवीय भावों एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रस्तुतिकरण करने के लिए करते हैं।

गोस्वामी जी अपने ऐतिहासिक रोमांस "मल्लिकादेवी" के छठे परिच्छेद "सखी संग" में अत्यंत अलंकृत भाषा में प्रकृति-चित्रण करते हैं—"संध्या होने में अधिक विलम्ब नहीं था, भगवान भास्कर पश्चिमाकाश मे स्थित होकर अपनी कमनीय किरण माला समेट कर विश्रामार्थ शयन सदन में पधारने का उद्योग कर रहे थे और प्रकाश लोभी पक्षिकुल इधर-उधर से गगन मण्डल में उड़ उड़ कर अपनी अपनी आर्तध्वनि से सूर्य देव को अस्त होने से वारण करने लगे थे, किन्तु दैनिक परिश्रम से वे इतने थक गए थे कि आश्रित और आर्त जीवों का आश्वासन किए बिना ही अस्तगामी हुए। उनके ऐसे निष्ठुर और अयोग्य व्यवहार से भग्न मनोरथ होकर पक्षिगण निज निज नीड़ों की ओर धावित हुए।"[2]

इसी प्रकार "कनक कुसुम" में पेशवा बाजीराव जब निजाम के निमंत्रण पर कुछ सवारों के साथ निजाम के साथ संधि करने के लिए जाते हैं और दो हजार सवारों द्वारा घेर लिए जाते हैं, तो मुसलमान सेनापति हसनखाँ द्वारा हथियार डालने को कहे जाने पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—

"मैं नहीं जानता था कि निजाम इतना बड़ा ईमानदार और सच्चा आदमी है। खैर कुछ पर्वा नहीं, तुम तलवार पकड़ो।"[3] यहाँ पर भाषा की लक्षणा शक्ति का प्रयोग अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया गया है।

1. 'रजिया बेगम' पहला भाग, पृष्ठ 31-32.
2. 'मल्लिका देवी,' दूसरा भाग, पृष्ठ 35.
3. 'कनक कुसुम,' पृष्ठ 6.

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह ने अपने "वीर चूड़ामणि" नामक ऐतिहासिक उपन्यास में अलंकृत भाषा के माध्यम से प्रकृति का मानवीकरण किया है—"पर्वत-श्रेणी और अनन्त वन निविड़ अन्धकार से आच्छादित हो रहे हैं। पर्वत, वन, मैदान तराई, दरीचे, आकाश और वृक्षों में शब्द मात्र नहीं, मानो-जगत्, शीघ्र ही प्रचण्ड पतन आता हुआ जान, भय से व्याकुल हो गया है।"[1]

बाबू लाल जी सिंह ने "वीर बाला" में प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण किया है,—'ऐसे प्राकृतिक आनन्ददायक समय में राजस्थान के रूप नगरीय राजभवनों में एक लावण्यमती षोड़शवर्षीया बालिका विषण्ण बदन करतल आश्रित कपोलों को अजस्र अश्रुधारा से भिगोती पृथ्वी सिंचन कर रही है'[2]। इसी उपन्यास में युद्ध की विभीषिका का वर्णन अलकृत भाषा में किया गया है—'एक बार हरहराती हुई दोनों ओर की सेना जब आपस मे टकराती है, तो सैकड़ों मुण्ड वेल की तरह पृथ्वी को चूम लेते हैं। योद्धा बड़े आवेश के साथ मुर्दों पर खड़े होकर शत्रु के निदान के हेतु अग्रसर होने लगे। नररक्त से वसुंधरा लाल हो गई, भास्कर की बालरश्मि उस पर पड़ कर स्वर्णरेखा की भाँति चमक रही है।'[3]

इस प्रकार लगभग सभी लेखकों ने अपनी कृतियों में अलंकृत एवं काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

(iii) **उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा प्रयोग**—विवेच्य लेखकों की भाषा में उर्दू, संस्कृत तथा अग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग लेखकों की युगीन परिस्थितियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुरूप ही किया गया है। भारतीय मध्ययुगों के पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में अतिवादी मुसलमान तथा हिन्दू पात्रों के माध्यम से उर्दू, अरबी मिश्रित उर्दू तथा संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग विपुल मात्रा में किया गया है। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द भी अनायास ही प्रयोग में लाए गए हैं जबकि यह एक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक त्रुटि है।

(क) **उर्दू**—गोस्वामीजी के 'तारा' तथा 'रजिया वेगम' नामक उपन्यासों, तथा 'लखनऊ की कब्र' एवं 'लालकुंवर नामक' ऐतिहासिक रोमांसों में उर्दू भाषा का प्रयोग खुल कर किया गया है जबकि 'लवंगलता,' 'हृदय हारिणी,' 'गुलबहार' एव 'मल्लिका देवी' आदि ऐतिहासिक रोमांसों में भाषा का स्वरूप अधिकांशतः संस्कृत-परक हो जाता है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का मत उल्लेखनीय है—'एक और बात जरा खटकती है—वह है, उनका भाषा के साथ मजाक। कुछ दिन पीछे इन्हें उर्दू का शौक हुआ। उर्दू भी ऐसी वैसी नहीं उर्दू-ए-मुअल्ला। उर्दू जबान और शेरो सुखन की वेढंगी नकल से जो असल से कभी-कभी साफ अलग हो जाती है,

1. 'वीर चूड़ामणि,' अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह, पृष्ठ 1-2.
2. 'वीर बाला,' पृष्ठ 1–2.
3. वही, पृष्ठ 86.

उनके बहुत से उपन्यासों का साहित्यिक गौरव घट गया है। गलत या गलत मानी में लाये हुए शब्द भाषा को शिष्टता के दरजे से गिरा देते हैं। खैरियत यह हुई कि अपने सब उपन्यासों को आपने यह मंगनी का लिबास नहीं पहनाया। 'मल्लिका देवी या बंग-सरोजनी' में संस्कृत प्रायः समास-बहुला भाषा काम में लायी गई है।[1]"

'तारा' के पहले भाग में दारा के सम्बन्ध में कथन उर्दू भाषा के प्रयोग का एक उत्तम उदाहरण है,—'दारा—उसी परीजमाल नाजनी की कि जिसके तीरे मिगजा का निशाना मेरा तायके दिल एक मुद्दत से बन रहा है।'[2]

इसी प्रकार 'लखनऊ की कब्र' में उर्दू भाषा का प्रयोग व्यावहारिक पद्धति से किया गया है—'अल्लाह आलम ? यह नाज, यह नखरे, यह गुस्सा, यह सितम, यह कयामत, यह बेरुखी, खिजलाहट और मचलाहट को दूर करो और इत्मीनान रखो कि मैं अब न तो गैरहाज़िर ही रहूंगा और न तुमको यों चुपचाप कहीं चले जाने ही दूंगा। चाहे जिस तरह हो, दिन रात में एक मर्तबा तुम से जरूर मिल लिया करूंगा और तुम्हे रंजीदा न होने दूंगा।'[3]

(ख) **संस्कृत**—उर्दू के साथ-साथ विवेच्य लेखकों ने अपनी ऐतिहासिक कृतियों में संस्कृत भाषा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

पं. किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मल्लिकादेवी', 'लवंगता' तथा 'हृदय हारिणी' नामक ऐतिहासिक रोमांसों में संस्कृत भाषा का विपुल मात्रा में प्रयोग किया है—

"सरला—अज्ञात कुलशीला के संग राजकुल का सम्बन्ध सराहनीय नहीं होगा।

नरेन्द्र—न हो। चाहे इस सम्बन्ध से त्रैलोक्य हमसे विमुख हो जाय, किन्तु सरला। मल्लिका के संग सघन कानन में भी हम स्वर्गीय सुख का अनुभव करेंगे और मल्लिका बिना इन्द्र पद भी हमें भार ही विदित होगा। तुम निश्चय जानो, मल्लिका की प्राप्ति की आशा से हम अभी तक जीवन धारण कर रहे हैं।"[4]

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह ने 'वीर चूड़ामणि' में चूड़ामणि द्वारा अपनी प्रेमिका को लिखे गए पत्र में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है—

"हृदय मन्दिर की एक मात्र अधिष्ठात्री देवी।

आजकल मैं यवनों के युद्ध में लीन हूँ, इसलिए क्षमा करना। आशा है कि मैं कुछ ही दिनों में मुख चन्द्र को देख नयन-चकोरों को आनन्द दूँगा। परन्तु युद्ध में वीर-गति को पहुँचे तो शोक नहीं करना पुनः दूसरे लोक में संयोग होगा। पत्र लिख कर विदा माँगता हूँ। यदि विजय भाग्यवश प्राप्त हुई तो फिर मिलूंगा।

प्रेमंधी चूड़ा"।[5]

1. रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ 552–553.
2. 'तारा' भाग पहला, पृष्ठ 8.
3. 'लखनऊ की कब्र,' पाँचवाँ भाग, पृष्ठ 105.
4. 'मल्लिका देवी व बंग सरोजिनी,' पृष्ठ 123.
5. 'वीर चूड़ामणि,' पृष्ठ 37.

इसी प्रकार बाबू लाल जी सिंह ने 'वीर बाला' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में युद्ध-क्षेत्र का वर्णन संस्कृत-परक भाषा में किया है—'उस विस्तीर्ण मैदान की समस्त धरती मुसलमानी और राजपूत योद्धाओं से भर गई। अनेक तरह के पताकें हवा में फहराने लगे, नाना भांति के रणवाद्य युद्ध-क्षेत्र में गुंजारकर वीरों को उभारने लगे, दोनों ओर के वीर अपने-अपने स्थान पर डटे हुए इस उत्सव मे लीन हुए। हरावल में खड़े राजपूत योद्धा बड़ी सावधानी और फुर्ती से असिचालन करते हुए अपने को शत्रुप्रहार से बचाते हैं।"[1]

गोस्वामी जी के 'मल्लिका देवी' में यवन एवं हिन्दू पात्रों के माध्यम से उर्दू तथा सस्कृतनिष्ठ भाषा का एक साथ प्रयोग उल्लेखनीय है—यवन ने चिल्ला कर कहा,—'देख, काफिर। तुझे अभी जहन्नुम रसीद करता हूँ। दोजखी कुत्ते जरा ठहर जा।'

महाराज—'चुप रह, दुर्वृत्त, नरघातक, पिशाच! तेरी मृत्यु सन्निकट है।'

यवन—'देख बुतपरस्त काफिर। अपने किये का नतीजा तू अभी पाता है।'[2]

इस प्रकार विवेच्य लेखको ने अपनी ऐतिहासिक कृतियों में उर्दू तथा सस्कृत भाषाओं के अन्यान्य प्रयोग किए है।

(ग) अंग्रेजी—उर्दू तथा सस्कृत के साथ-साथ विवेच्य ऐतिहासिक रोमांसों एव ऐतिहासिक उपन्यासो मे अंग्रेजी के शब्दो का भी प्रयोग किया है। उदाहरण-स्वरूप बाबू लाल जी सिंह ने 'वीर बाला' में अंग्रेजी 'चार्ज' शब्द का प्रयोग किया है—'सूर्य नारायण सहस्रों वीरों के साथ संसार से पयान कर गए दिवस कृत्य रणशायी योद्धाओं की आत्माओं के संग संसार से अलग हुआ। रात्रि ने चार्ज लेकर दुनिया पर अपना प्रभाव फैलाया, अंधेरा बढ़ने लगा। बादशाह दिन भर के कठिन परिश्रम से भी अपना मनोरथ सफल न कर सके और सीसोदिया लोग तनिक भी स्थान से पीछे न हटे।'[3]

किशोरीलाल गोस्वामी 'लाल कुंवर' नामक ऐतिहासिक रोमांस में 'ईद में मुहर्रम' नामक परिच्छेद में, पाठकों को महल में ईद में मुहर्रम का 'सीन' दिखाते हैं।'[4]

इस प्रकार के प्रयोग अस्वाभाविक मे प्रतीत होते हैं। यह एक कलात्मक त्रुटि है।

(iv) ग्रामीण भाषा प्रयोग—भारतीय मध्य युगों का चित्रण करते समय विवेच्य लेखक कई बार ग्रामीण एवं स्थानीय भाषाओं का भी प्रयोग करते है।

1. 'वीरबाला,' पृष्ठ 78.
2. 'मल्लिका देवी,' पहला भाग, पृष्ठ 35-36.
3. 'वीरबाला,' पृष्ठ 82.
4. लालकुंवर, पृष्ठ 35.

पं. रामजीवन नागर ने 'जगदेव परमार' में सिपाहियों की कायरता का वर्णन करते हुए स्थानीय भाषाओं का सजीव चित्रण किया है—

'एक पुरविया—भैया का कहि। हमहूं अवही दुई महिना में तब महरिया के लाए हन। जो हम मरिजैवे तो वह विचारि केहकेर जीय का रोई, पर करनु का? राजा केर अन्न जल लेत 2 वरिस हुइगे अव जो न जाई तोहू तो लोग बुरा कही।[1]

मुंशी देवी प्रसाद ने 'रूठी रानी' में स्थानीय शब्दों, लोक गीतों एवं लोक तत्वों का वहुतायत से प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप—'दिन ढल गया, वाजारों में छिड़काव हो गया। लोग वारात देखने के चाव में घरों से उमड़े चले आते हैं। जोशी ने दरवार में जा कर रावल से कहा—'सामेले (स्वागत) का मुहूर्त्त निकट है आप सवारी की आज्ञा दें।'[2] इसी प्रकार कई लोक गीतों का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण—

व्रज देसां, चन्दन दवां मेरु पहाड़ां मौड।
गरुड़ खगा लंका गढा, राजकुला राठौड॥
दारूड़ो दाखारो....
दारू पीवो रण चढ़ो, राता राखौ नैन
वैरी थारा जलमरे सुख पावैला सैन॥[3]

इस प्रकार ग्रामीण एवं स्थानीय भाषाओं के प्रयोग के माध्यम से विवेच्य लेखकों ने जहाँ एक ओर मध्य युगों के चित्रण को अधिक बुद्धिगम्य एवं स्वाभाविक वना दिया है वहीं दूसरी ओर इस प्रकार की भाषा के प्रयोग से कृतियों में आँचलिकता का पुट आ गया है।

(v) **वाक्यांशपरक भाषा प्रयोग**—प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास एवं ऐतिहासिक रोमांस लेखकों द्वारा अपनी भाषा मे मुहावरों, लोकोक्तियों तथा भाषा के स्थानीय स्वरूपों का प्रयोग किया गया है। यद्यपि, सामान्यतः इस काल-खण्ड के लेखकों की भाषा किसी निश्चित स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाई थी फिर भी वाक्यांश परक भाषा प्रयोग विवेच्य लेखकों की भाषा-शैली को अधिक समृद्ध तथा कलात्मक वनाने मे सहायक सिद्ध हुए हैं। इन लेखकों की भाषा में इस प्रकार के कुछ प्रयोगों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

क्या पत्थर पर दूव जमाना चाहती है,[4] मेरे लिए आपने कुछ भी नहीं उठा रक्खा,[5] उत्तर को सुन कर वादशाह आग वबूला हो गया,[6] पहरे वाला सवार की

1. 'जगदेव परमार,' पृष्ठ 83.
2. 'रूठी रानी,' पृष्ठ 6.
3. वही, पृष्ठ 10.
4. 'राजपूतरमणी,' वाबू युगलकिशोर नारायणसिंह, पृष्ठ 23.
5. वही, पृष्ठ 29.
6. वही, पृष्ठ 62.

इस सखावत पर वाग-बाग हो गया,[1] नवाब आध घण्टे तक खुशी के समुद्र में गोते खाता रहा,[2] भालों की मार के मारे यवन सिपाहियों के छक्के छूट गए,[3] दिन भर का भूला हुआ सायंकाल मिल जाए, तो भूला नहीं कहलाता,[4] राजपूत वीरों का सामना करना जरा टेढ़ी खीर है,[5] वीरता दिखा कर इनके दाहिने हाथ हो गए थे,[6] उपस्थित गणों के हृदय में चूहे तो कूद रहे हैं,[7] बाल-बाँका नहीं हुआ होगा ।[8] पाँव उखड़े हुए थे,[9] वह तो राजा के मुँह के बाल हो गया,[10] नौ-दो-ग्यारह हो जाऊँगी ।[11] कलेजा मुँह को आता है ।[12] रानी को बेटी के विधवा होने की आशंका से दुःख तो बहुत हुआ पर पति की बात मान कर वज्र की छाती करके चुप हो रही थी ।[13] गुरु-गुरु विद्या और सिर-सिर बुद्धि,[14] हाथों-हाथ ले गए,[15] उल्टा हीं अपनी जान को जोखूं में पाया,[16] उनके सरदार भी अपनी सब सटपट भूल गए,[17] पट्टी पढ़ी ही न थी,[18] निन्नानवें के फेर में पड़ गए,[19] मैं अपनी मर्यादा छोड़ देती तो सौतें मुझ पर हँसती और कहतीं कि बस इतना ही पानी था ।[20] आज्ञा जी ने कड़ी बिगाड़ दी, पानी फेर दिया,[21] बनी बनाई बात दो कौड़ी की हो जाएगी,[22] लाखों की पुतली जानता हूँ,[23] दूसरे का मुँह जोहना पड़ता है ।[24] चित्त घटने की भी तो जगह

1. 'रानी दुर्गावती,' श्यामलाल गुप्त, पृष्ठ 3.
2. वही, पृष्ठ 11.
3. वही, पृष्ठ 16.
4. 'प्रणपालन,' बाबू सिद्धनाथ सिंह, पृष्ठ 37.
5. 'वीर चूड़ामणि,' अघोरी कृष्ण प्रकाश सिंह, पृष्ठ 23.
6. वही, पृष्ठ 57.
7. 'काश्मीर पतन,' जयरामदास गुप्त, पृष्ठ 93.
8. 'पूना में हलचल.' गंगाप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 47.
9. वही, पृष्ठ 55.
10. वही. पृष्ठ 70.
11. वही, पृष्ठ 77.
12. वही, पृष्ठ 78.
13. 'लौरानी,' मुन्शी देवीप्रसाद जी, पृष्ठ 3.
14. वही, पृष्ठ 5.
15. वही, पृष्ठ 7.
16. वही, पृष्ठ 8.
17. वही, पृष्ठ 8.
18. वही, पृष्ठ 16.
19. वही, पृष्ठ 32.
20. वही, पृष्ठ 36.
21. 'लौ रानी,' मुन्शी देवीप्रसादजी, पृष्ठ 37.
22. वही, पृष्ठ 42.
23. 'सौतेली माँ या अन्तिम युवराज,' जयरामलाल रस्तोगी, पृष्ठ 6.
24. वही, पृष्ठ 6.

नहीं है,[1] कुछ दाल में काला है,[2] उसका माथा ठनका,[3] होनहार विरवान के होत चीकने पात,[4] रानी की जलती हुई अग्नि पर घी पड़ गया,[5] अब पछतायें क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत,[6] खुशी के मारे फूल गया,[7] सुनते ही बघेली आपे से बाहर हो गई,[8] आनन्द के-मारे फूले नही समाते,[9] छक्के छूट गए,[10] रानी के शब्द कटे पर नोन के समान,[11] सुनते ही राजा की आँखे खुल गई।[12] वह उसी में चौकड़ी भरा करता था,[13] तारा का बाल भी बाँका न होगा,[14] आग-बबूला होना,[15] हजार मुँह से सराहने लगीं,[16] रंभा की सारी अक्ल हवा हो गई,[17] मुँह की खाई,[18] अपना मुँह काला करेगी,[19] कोई बात उठा न रक्खी,[20] हाथ मलेगीं,[21] सोना के ऐसे दाँत खट्टे किए,[22] नाकों दम आ गया,[23] छक्के छूट गए,[24] आग-बबूला,[25] कलेजा मुँह को आने लगा,[26] आँखों से भी नदियाँ उमड़ने लगी,[27] शहजादे का दिल बाग-बाग हो

1. 'सौतेली माँ' पृष्ठ 62.
2. 'नूरजहाँ,' गंगाप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 63.
3. वही, पृष्ठ 88.
4. 'जगदेव परमार,' रामजीवन नागर, पृष्ठ 3.
5. वही, पृष्ठ 8.
6. वही, पृष्ठ 28.
7. वही, पृष्ठ 38.
8. वही, पृष्ठ 41.
9. वही, पृष्ठ 50.
10. वही, पृष्ठ 92.
11. वही, पृष्ठ 130.
12. वही, पृष्ठ 145.
13. 'तारा,' भाग 1, किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 89.
14. वही, भाग 2, पृष्ठ 36.
15. वही, पृष्ठ 67.
16. वही, तीसरा भाग, पृष्ठ 43.
17. 'तारा,' भाग तीसरा, पृष्ठ 49.
18. वही, पृष्ठ 69.
19. 'रजिया,' किशोरी लाल गोस्वामी, पृष्ठ 118.
20. 'रजिया बेगम,' किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 8.
21. वही, भाग 2, पृष्ठ 59.
22. 'कनक कुसुम,' किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 11.
23. वही, पृष्ठ 26.
24. 'लवंगलता,' किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 17.
25. वही, पृष्ठ 53.
26. 'हृदय हारिणी,' किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 43.
27. वही, पृष्ठ 46.

गया,[1] चूड़ियाँ नही पहनीं,[2] किसी से चार आँखे तो नहीं हुईं,[3] लट्टू हो जाना,[4] महाराज इत्ता आग भभूका नही हो गए,[5] आँख न उठाने पावेगा,[6] यह सुनते ही वह काठ हो गए,[7] फूले अंगों न समाई,[8] पीर में पलंग क्यों बनता है,[9] पैर उखड़ गए।[10]

इस प्रकार के प्रयोग कलात्मक रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा प्रेमचन्दपूर्व इतिहास आश्रित कथा-पुस्तको की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।

(vi) **शैली**—सामान्यत: प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी उपन्यासों में से कतिपय अपवादों को छोड़कर अधिकतर उपन्यासों मे कथावाचकों जैसी शैली को अपनाया गया है। यहाँ लेखक प्रत्येक विन्दु पर पाठक के साथ सीधा सम्पर्क रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसे समझाते भी हैं। एक किस्सागो के समान वे सारी कहानी कहते हैं। कई वार यह भी अनुभव होता है कि महान् ऐतिहासिक पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली है जिन्हे वह आवश्यकतानुसार नचाता है।

कथावाचकों जैसी शैली—प० किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त, अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह, वावूलाल जी सिंह आदि अधिकांश विवेच्य लेखकों ने अपने उपन्यासों मे कथावाचकों जैसी शैली का प्रयोग किया है।

उदाहरण स्वरूप गोस्वामी जी 'तारा' के दूसरे भाग में सलावत व रंभा की वातचीत के वीच स्वय पाठको को स्थिति से परिचित करवाते है—'पाठकों को समझना चाहिए कि यद्यपि रम्भा यह वात वखूवो जानती थी कि गुशलन मेरी ही शरारत से दारा के जरिए अव्वार खाँ के हाथ से मारी गई, पर उसने सलावत को भुलावे में डालने के लिए ही इस ढंग से यह वात कही थी।"[11] लगभग यही स्थिति हृदयहारिणी में भी उभरी है—'आप हमको 'कवि' कह कर ताना न मारिए। क्योंकि यदि हम कवि होते तो फिर इतना रोना ही काहे का था। सो हम न तो कवि हैं और न ही काव्य-विशारद। तो क्या हैं? एक महा नीरस, अल्हड़ जड़ोन्मत्त पिशाचवत्।'[12]

1. 'लाल कुंवर,' किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 6.
2. 'ताजमहल या फतहपुरी वेगम,' वावू जयरामलाल रस्तोगी, पृष्ठ 3.
3. वही, पृष्ठ 20.
4. 'वीर वीरांगना,' जयराम दास गुप्त, पृष्ठ 13.
5. वही, पृष्ठ 17.
6. वही, पृष्ठ 32.
7. वही, पृष्ठ 86.
8. 'जुझार तेजा,' महता लज्जाराम शर्मा, पृष्ठ 20.
9. वही, पृष्ठ 49.
10. वही, पृष्ठ 50.
11. 'तारा,' दूसरा भाग, किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 27.
12. 'हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी,' पृष्ठ 74.

अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह अपने 'वीर चूड़ामणि' में कहते हैं, "पाठक ! कलेजा थाम कर रण का भयानक चित्र देखें। मेवाड़ी सेना का हर हर महादेव और एकलिंग की जय का शब्द दशों-दिशाओं में गूँज उठा।"[1] इसी प्रकार वे अन्तःपुर का चित्रण भी एक कथावाचक के समान करते हैं—

"पाठक ! जरा अन्तःपुरी में तो चलें, देखें क्या होता है ? एक भारी कमरे में जहाँ सफेद संगमरमर की जमीन और दीवार है, जिसमें विविध प्रकार के लता, पत्र, पशु, पक्षी और मनुष्यों की मूर्तियाँ खुदी हैं, खूब मोटा गलीचा बिछा है।"[2]

बाबू सिद्धनाथ सिंह अपने 'प्रण पालन' नामक उपन्यास के अन्त में कहते हैं,—"प्रिय पाठक गण! मैं अपने इस क्षुद्र निबन्ध को यहीं पर समाप्त करता हूँ।"[3]

जयराम दास गुप्त ने 'काश्मीर पतन' नामक उपन्यास में 'विकट परामर्श' नामक परिच्छेद के आरम्भ में लिखा है—"पाठकगण ! प्रसिद्ध डिल के पश्चिमी किनारे से लगभग एक मील की दूरी पर चश्माशाही की इमारत स्थित है, जिसकी बनावट निशातबाग से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।"[4]

बाबू युगलकिशोर नारायण सिंह ने अपने 'राजपूत रमणी' में भी इसी प्रकार की कथावाचकों जैसी शैली का प्रयोग किया है। चौथे परिच्छेद के आरम्भ में वे लिखते हैं—"यद्यपि चैत्र का मास वसंत ऋतु होने के कारण सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है, तो भी राजपूताने में दोपहर के समय सख्त गर्मी पड़ती है जिससे प्रतीत होता है कि मानो जेठ की लूक चल रही हो। इसी वक्त मैं अपने पाठकों को रूपनगर में ले चलता हूँ।"[5] पाँचवें परिच्छेद में वे कहते हैं—"औरंगजेब को रूपनगर के रास्ते में छोड़ कर अपने पाठकों को हम पुनः मेवाड़ ले चलेंगे। इस बार हम सीधे मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में पहुँचेंगे।"[6]

श्यामलाल गुप्त ने भी अपने 'रानी दुर्गावती' नामक उपन्यास में इसी शैली का प्रयोग करते हुए कहा है—"पाठको ! आपको यह जानने की अवश्य लालसा होगी कि दुर्गावती कौन है और अकबर बादशाह से उसका क्या सम्बन्ध है ?"[7]

इस प्रकार लगभग सभी विवेच्य कृतियों में लेखकों ने कथावाचक जैसी शैली को अपनाया है। यह हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों की मुख्य शैली है।

सौन्दर्यपरक भाषा-शैली का भी कई उपन्यासों में प्रयोग किया गया है, जिसका अध्ययन 'अलंकृत भाषा' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है।

1. 'वीर चूड़ामणि,' पृष्ठ 17.
2. वही, पृष्ठ 72-73.
3. 'प्रणपालन,' पृष्ठ 54.
4. 'काश्मीर पतन,' पृष्ठ 44.
5. 'राजपूत रमणी,' पृष्ठ 21.
6. वही, पृष्ठ 33.
7. 'रानी दुर्गावती,' पृष्ठ 6.

उपसंहार

अंततः हमारे इस संपूर्ण अध्ययन के उपरान्त एक महाप्रश्न उभरता है—"इस युग मे इतिहास चेतना का स्वरूप क्या था ?"

दूसरा केन्द्रीय प्रश्न है—"लेखकों का युग तथा उनके दृष्टिकोण क्या थे ?"

इन दोनों ध्रुवांतों को स्पष्ट करके ही, आगे भी हम इतिहास-विषयक कलात्मक धारणाओं को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों के अनेक रूपेण अध्ययन के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि विवेच्य लेखकों द्वारा उनके युग में उपलब्ध अंग्रेज इतिहासकारों एवं पुरातत्वविदों द्वारा उपलब्ध आधुनिकतम् जानकारी तथा ज्ञान का प्रयोग किया गया था तथापि उनकी मूल इतिहास चेतना मध्ययुगीन एवं आदर्शोन्मुखी हिन्दू मूल्यों वाली है। उनकी यह भारतीय इतिहास-चेतना कालचक्र, नियतिचक्र, कर्मचक्र एवं पुरुषार्थचक्र के चार चक्रों तथा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चतुर्वर्ग मे जीवन एवं इतिहास की अर्थवत्ता द्वारा अपना स्वरूप प्राप्त करती है। यहाँ काल के अनुक्रमांकित स्वरूप (Chronological Form) के अन्तर्गत आरम्भ, प्रयत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति तथा फलागम की पांच स्थितियों को भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार की भारतीय इतिहास-धारणाओं को विवेच्य ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसो मे प्रयुक्त किया गया है।

निष्कर्ष रूप मे इस इतिहास-चेतना के त्रिकोण का विन्यास चार चक्र, चतुर्वर्ग तथा पंचावस्थाएँ करती हैं।

विवेच्य कृतियों में **नायक-पूजा की धारणा** एक ही महान् व्यक्ति द्वारा ऐतिहासिक **घटनाओं के नियोजित किए जाने की धारणा** से जुड़ कर उभरी है। वे लेखकगण मानव की स्वच्छन्द इच्छा के इतिहास-सिद्धान्त में विश्वास करते थे, परन्तु स्वेच्छा (फ्रीविल) की यह धारणा यदाकदा नियतिवाद अथवा निश्चयवाद की इतिहास-धारणा की पूरक के रूप में उभर कर भी आई है।

इस प्रकार इन ऐतिहासिक उपन्यासों तथा ऐतिहासिक रोमांसों में आधुनिक तथा प्राचीन भारतीय इतिहास-धारणाओं का सम्मिलन उपलब्ध होता है।

साम्प्रदायिकता तथा हिन्दू राष्ट्रीयता की धारणा द्वारा अनुप्रेरित होकर इन लेखकों ने भारतीय मध्ययुगों का पुनः प्रस्तुतिकरण एवं पुनः निर्माण करते समय उनकी पुनर्व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। इसके अन्तर्गत वे प्रत्येक बुराई के मूल में मुसलमानों को देखते हैं। बहुधा मुसलमान शासकों को (ऐतिहासिक उपन्यासों में) ऐतिहासिक आततायी तथा (ऐतिहासिक रोमांसों में) अतिदानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दूसरा केन्द्रीय प्रश्न लेखकों के युग तथा उनके दृष्टिकोण का रहा है।

प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक कथाकारों का युग सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा साम्प्रदायिकता का युग था। सांस्कृतिक एवं सामाजिक धरातलों पर भारत के स्वर्णिम अतीत की पुनः स्थापना के पक्षपाती होने पर भी विवेच्य लेखक अंग्रेज विरोधी नहीं थे। उनकी मूल चेतना मुसलमान-विरोध पर आधारित थी। इसी ने उनके समस्त जीवन-दर्शन को गहराई तक प्रभावित किया जो उनके उपन्यासों मे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के रूप में उभर कर आया है।

परवर्ती लेखकों पर प्रभाव—उपर्युक्त दो केन्द्रीय ध्रुव रहे हैं। इसके बाद इनमें कालानुरूप परिवर्तन होता गया। सामान्यतः अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी के इन आरम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों को कोई विशेष महत्त्व प्रदान नहीं किया है। हमारा मत है कि पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र, व्रजनन्दन सहाय, मिश्र बंधुओं, अखौरी कृष्ण प्रकाशसिंह तथा रामजीवन नागर आदि ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करके उस पृष्ठभूमि का निर्माण किया जिस पर उनके परवर्ती लेखकों ने प्रौढ़तर ऐतिहासिक उपन्यासों एवं रोमांसों की रचना की।

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष वह महत्त्वपूर्ण इतिहास-विचार है जिसके बिना भारतीय मध्ययुगों का पुनः प्रस्तुतिकरण अथवा पुर्ननिर्माण नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि प्रेमचन्दपूर्व की इतिहास-कथाकृतियों की इस प्रवृत्ति का परवर्ती कलाकारों ने भी अपनी कृतियों में प्रयोग किया है।

जनता से हटकर अन्तःपुरों तथा राजसभाओं का चित्रण करने की प्रवृत्ति को परवर्ती लेखकों ने आंशिक रूप में ही अपनाया है। यही स्थिति इतिहास से रोमांस की ओर जाने की प्रवृत्ति की भी है। काल की धार्मिक-धारणा तथा हिन्दू राष्ट्रीयता की धारणा भी परवर्ती लेखकों द्वारा मूल रूढ़ि में ग्रहण नहीं की गई।

हिन्दी के परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी. राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव तथा यशपाल आदि उल्लेखनीय हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा ने गहन इतिहास-खोजों तथा प्रौढ भौगोलिक अध्ययन के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ऐतिहासिक रोमांसों का प्रणयन किया है। उनका मूल प्रेरणा-स्रोत अंग्रेज-विरोधी था जबकि किशोरीलाल गोस्वामी अंग्रेज भक्ति का रवैया अपनाते हैं। इसी प्रकार गोस्वामी जी जातीयता तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रबल पोषक थे जबकि वर्माजी ने इन बंधनों को तोड़ने का भी प्रयास किया है। वर्माजी ने अपनी कृतियों में लोक तत्त्वों का जो प्रयोग प्रस्तुत किया है, उसे मुंशी देवीप्रसाद की 'रूठीरानी' तथा चन्द्रशेखर पाठक के 'भीमसिंह' में प्रयुक्त लोक तत्त्वों की पद्धति के विकसित रूप में देखा जा सकता है।

सामान्यत. सभी विवेच्य लेखक तथा विशेषतः पडित किशोरीलाल गोस्वामी जहाँ सौन्दर्य तथा नखशिख वर्णन मे अधिक रुचि प्रदर्शित करते है वही आचार्य द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' मे संस्कृति के विशद चित्रण प्रस्तुत करते है। तथापि पडित बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा 'पानीपत' मे वर्णित भारतीय सस्कृति तथा हिन्दू धर्म की विशद व्याख्याएँ आचार्य द्विवेदी की सास्कृतिक व्याख्याओं के पूर्ववर्ती होने का आभास देती है।

राहुल साकृत्यायन, यशपाल तथा रागेय राघव द्वारा अपने ऐतिहासिक उपन्यासो मे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इतिहास की पुनर्व्याख्या किया जाना प्रेमचन्द-पूर्व काल के ऐतिहासिक उपन्यासो से एकदम कट जाता है क्योकि उस कालखण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने अतीत का अध्ययन करते समय आर्थिक शक्तियो द्वारा सामाजिक सम्बन्धो के प्रभावित होने को दृष्टिगत रखते हुए अतीत का चित्रण नही किया।

इसी उपक्रम मे सामान्यतः इस कालखण्ड की ऐतिहासिक कथाकृतियो की लगभग उपेक्षा ही की गई है अथवा उनका आशिक स्वरूप ही उभारा गया है। अत' हमारा विश्वास है कि प्रेमचन्दपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासो एवं ऐतिहासिक रोमासो को अधिक वैज्ञानिक पद्धति से सर्वांगीण प्रकाशित करने का हमारा यह प्रयास अब एक सम्पूर्ण सस्कृति को भी अधिकाधिक प्रकाशित कर सकेगा। अस्तु।

परिशिष्ट

चुनी हुई पुस्तकों की सूची

क सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	
(क)	मूल उपन्यास		
1.	हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी	किशोरीलाल गोस्वामी	1890
2.	लवंगलता वा आदर्श बाला	,,	,,
3.	गुलबहार वा आदर्श भ्रातृ-स्नेह	,,	1902
4.	तारा व क्षत्रकुल कमलिनी	,,	1902 हित-चितक प्रेस, काशी
5.	कनक कुसुम वा मस्तानी	,,	1904, वृन्दावन
6.	हीराबाई वा बेहयायी का बोरका	,,	1904, बनारस
7.	सुलताना रजिया बेगम वा रंग महल मे हलाहल	,,	1904 ,,
8.	मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी	,,	1905, काशी
9.	लखनऊ की कब्र वा शाही महल सरा	,,	1906, काशी
10	सोना और सुगन्ध वा पन्ना बाई	,,	1909, वृन्दावन
11.	लालकुवर वा शाही रंगमहल	,,	1909, इलाहबाद
12.	नूरजहाँ वा संसार सुन्दरी	गंगाप्रसाद गुप्त	1902, काशी
13.	पूना मे हलचल वा वनवासी कुमार	,,	1903, काशी
14.	वीरपत्नी	,,	,, ,,
15.	कुंवरसिंह सेनापति	,,	,, ,,
16.	वीर जयमल वा कृष्णकाता	,,	,, ,,
17.	हम्मीर	,,	,, ,,
18.	काश्मीर पतन	जयरामदास गुप्त	1907, काशी
19.	किशोरी वा वीर बाला	,,	,, ,,
20.	मायारानी	,,	1908, काशी
21.	नवाबी परिस्तान वा वाजिद अलीशाह	,,	,, ,,
22.	कलावती	,,	1909, ,,
23.	प्रभात कुमारी	,,	,, ,,
24.	वीर वीरांगना वा आदर्श ललना	,,	,, ,,
25.	रानी पन्ना वा राजललना	,,	1910, ,,
26.	वीर नारायण	हरिचरणसिह चौहान	1895, मथुरा

27.	जया	बाबू कार्त्तिकप्रसाद खत्री	1897, काशी
28.	अनारकली	बलदेवप्रसाद मिश्र	1900, मुरादाबाद
29.	बारहवीं सदी का वीर जगदेव परमार	रामजीवन नागर	1912, बम्बई
30	पृथ्वीराज चौहान	जयन्तीप्रसाद उपाध्याय	1901, मुरादाबाद
31	कोटा रानी	ब्रजबिहारी सिंह	1902, बम्बई
32.	पानीपत	पं० बलदेवप्रसाद मिश्र	1902, कलकत्ता
33	पृथ्वीराज चौहान	"	" "
34	वीर बाला	बाबूलाल जी सिंह	1903, बम्बई
35	नूरजहाँ वा जहाँगीर बेगम	पं० मथुराप्रसाद	1905, काशी
36.	पद्मिनी	गिरिजानन्दन तिवारी	1905, "
37.	सौतेली माँ या अन्तिम युवराज	बाबू जयरामलाल रस्तोगी	1906, काशी
38.	रूठी रानी	मुंशीदेवी प्रसाद	1909, कलकत्ता
39	ताजमहल या फतहपुरी बेगम	बाबू जयरामलाल रस्तोगी	1907 भागलपुर
40	महाराणा प्रतापसिंह की वीरता	हरिदास माणक	1907, बनारस
41.	रणवीर	बाबू चुन्नीलाल खत्री	1909, काशी
42.	सौन्दर्य कुसुम वा महाराष्ट्र का उदय	ठा० बलभद्रसिंह	1909, काशी
43.	वीरांगना	पं० रामनरेश त्रिपाठी	1911, फतहपुर
44.	जयश्री वा वीर बालिका	ठा० बलभद्रसिंह	1911, काशी
45.	सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी	"	1911, कलकत्ता
46.	महारानी पद्मिनी	बसन्त लाल शर्मा	1912, आगरा
47.	यमुना बाई	स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती	1912, अलीगढ़
48.	मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता	माणिक बन्धु	1913, काशी
49.	महाराष्ट्र वीर	बाबू रामप्रताप गुप्त	1913, कलकत्ता
50.	जुझार तेजा	मेहता लज्जाराम शर्मा	1914, नागरी प्रचारिणी सभा
51.	रजिया बेगम	बाबू ब्रजनन्दन सहाय	1915, हिन्दी साहित्य पुस्तक
52.	प्रण पालन	सिद्धनाथ सिंह	1915, काशी
53.	वीर चूड़ामणि	अखौरी कृष्णप्रकाश	1915, पटना
54	राजपूत रमणी	बाबू युगलकिशोर नारायणसिंह	1916, काशी
55.	लालचीन	ब्रजनन्दन सहाय	1916, काशी

56.	वीरमणि	मिश्र बन्धु	1917, काशी
57.	रानी दुर्गावती	बाबू श्यामलाल गुप्त	1917, ,,

(ख) आलोचनात्मक ग्रन्थ

1	इतिहास दर्शन	डॉ० बुद्धप्रकाश	
2.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	ए. बी. कीथ	डॉ० मंगलदेव का अनुवाद
3.	मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियां	डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव	1968, वाराणसी
4.	हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास	डॉ० कमलकुमारी जौहरी	1965, कानपुर
5.	रामकृष्ण परमहंस	रोमा रोलां	1968, इलाहाबाद
6.	बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ० सत्येन्द्रप्रकाश	1961, लखनऊ
7.	आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	2013, वि०
8.	नया साहित्य, नए प्रश्न	,,	
9.	ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप	डॉ० गोविन्दजी	इलाहाबाद
10.	हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव	वाराणसी
11.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	श्रीकृष्णलाल	1952, प्रयाग
12.	आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विचार	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	दिल्ली
13.	उपन्यास कला	विनोदशंकर व्यास	1950, बनारस
14.	काव्य के रूप	गुलाबराय	आगरा
15.	कुछ विचार	प्रेमचन्द	1949, बनारस
16.	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	हजारीप्रसाद द्विवेदी	1952, पटना
17.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	काशी
18.	हिन्दी उपन्यास और साहित्य	व्रजरत्नदास	2013, बनारस
19.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवनसिंह	2012 ,,
20.	हिन्दी कथा साहित्य	गंगाप्रसाद पाण्डेय	2008, इलाहाबाद
21.	हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों के उद्भव का विकास	बलवन्तकोतमिरे	1958, ,,
22.	साहित्य समीक्षा	सीताराम चतुर्वेदी	2010, काशी
23.	साहित्यालोचन	श्यामसुन्दरदास	प्रयाग
24.	प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन	नन्ददुलारे वाजपेयी	

25.	भारतेन्दु युग	रामविलास शर्मा	1951, आगरा
26.	पूर्व मध्यकालीन भारत	रघुवीरसिह	1988, प्रयाग
27.	साहित्य का मर्म	हजारीप्रसाद द्विवेदी	
28.	सस्कृत साहित्य मे रोमाटिक प्रवृत्तियाँ		
29.	राजस्थान का इतिहास	कर्नल जेम्स टॉड (अ० केशवकुमार)	इलाहाबाद
30.	हिन्दी साहित्य कोष	धीरेन्द्र वर्मा	वाराणसी स० 2020

(ग) पत्रिकाएँ

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
2. साहित्य सन्देश का विशेषांक, वृन्दावनलाल वर्मा।
3. आलोचना का उपन्यास विशेषांक।

चुनी हुई पुस्तकों की सूची (अंग्रेजी माध्यम में)

(क) इतिहास एवं इतिहास दर्शन सम्बन्धी सहायक ग्रन्थ

1. *Mans Meyerhoff* : The Philosophy of History in Our Time
2. *V. V. Joshi* : The Problem of History and Historiography, 1947, Allahabad.
3. *E. H. Carr* : What is History
4. *A. L. Rouse* : The Use of History, London.
5 *Patrick Gardiner (Ed.)* : Theories of History, London.
6. *Jane Ellen Harrison* : Ancient Art and Ritual, Oxford University Press, London
7. *C. H. Philips (Ed)* : Historians of India, Pakistan and Ceylon, London.
8. *Marx* : Critique of Political Economy.
9. *Collingwood* : The Idea of History.
10. *M. Winternitz* : A History of Indian Literature.
11. *B. Croce* : History as the Story of Liberty, 1941.
12. *Acton* : Home and Foreign Review, 1863.
13 *H. P R. Finberg (Ed.)* : Approaches to History.
14. *J. S. Grewal* : The Medieval Indian State and some British Historians, Ph.D Thesis of London University.
15. *Hegel* : Lectures on the Philosophy of History, 1884.
16. *A J. Toynbee* : A Study of History, Part I.
17. *Pathak* : Ancient Historians of India.
18. The Cambridge History of India
19. *F. E. Pargitor* : Ancient Indian Historical Tradition, London, 1922.
20. *Dr. Tara Chand* : History of Freedom Movement in India, Vol. II, 1967.
21. *West Geoffery* : Life of Annie Besant, London, 1929.
22. *Romila Thapar* ; Communalism and Ancient Indian History.
23. *K. K Dutta* : Renaissance, Nationalism and Social changes in Modern India, Calcutta, 1965
24. *Vincent A. Smith* : The Oxford Students History of India.

(ख) कथा साहित्य संबंधी आलोचनात्मक और सहायक-ग्रन्थ -

25. *David Daiches* : Literary Essays, London, 1956.
26. *Abercrombee* : Romanticism.
27. *R A. Scott James* : Making of Literature
28. *Clara Reve* : Introduction to the Progress of Romance.
29. *Karl Backson and Arther Canz* : A Readers Guide to Literary Terms, London, 1961.
30. *S. Diana Neil* : A Short History of English Novel, 1951, London.

31, *Ben Rau Redman* : A Treatise on Novel, 1930, New York.
32. *W. H Hudson* : An Introduction to the Study of Literature, London.
33. *E. M. Forster* : Aspects of Novel, London.
34. *Ernest A. Baker* : The History of English Novel, 1950, New York
35. *Wilbur L. Cross* : The Development of the English Novel, 1953, New York.
36. *Percy Lubbonk* : The Craft of Fiction, 1921, London
37. *Ben Ray Rermad* : The Modern English Novel, 1930, New York.
38 *J. W. Beach* : The Twentieth Century Novels
39 *Cross* : English Novel
40. *Stoddard* : Evolution of English Novels.
41. *J. Muller* : Modern Fiction.
42. *A. W Mendilow* : Time and Novel.
43. *George Lucaks* : The Historical Novel.
44. *P Penzoldt* : Supernatural in Fiction.
45. *Alex Comfert* : Novel and Our Time